THE
VIDYABHAWAN RASHTRABHASHA GRANTHAMALA
73
****

MAHĀKAVI BHĀSA : A STUDY

[A Comprehensive criticism of the Dramas of Bhāsa]

BY

BALADEVA UPĀDHYĀYA
Professor and Head of the Department of Purānetihāsa
Varanaseya Sanskrit University, Varanasi.

THE
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI-1
1964

वक्तव्य

महाकवि भास का स्थान संस्कृत-नाटक-साहित्य में नितान्त महनीय तथा उदात्त है। ईसा के ४ शतक पूर्व जब नाट्य-साहित्य तथा नाट्य-सिद्धान्त का पूर्ण विकास न हो पाया था, भास ने अपने नाटकों की रचना की। उस धूमिल अतीत में इस सफलता के साथ नाटकों की रचना करना महती सफलता है। भास के नाटक सभी दृष्टियों से अनूठे हैं। कथानकों का क्षेत्र इतना व्यापक है कि कदाचित् ही किसी दूसरे नाटककार ने इतने विषयों पर नाटक लिखा हो। रामायण, महाभारत, पुराण, लोककथा, सभी से भास ने विषय सगृहीत कर इन नाटकों की रचना की है तथा प्रसिद्ध कथाओं में उचित परिष्कार एवं परिमार्जन भी किया है। पात्रों की दृष्टि से भी भास के नाटकों का अपना विशिष्ट महत्त्व है। जितने प्रकार के पात्र भास के नाटकों में मिलते हैं उतने संस्कृत के किसी अन्य नाटक में नहीं।

भास का कविरूप भी इन नाटकों में स्पष्टता के साथ निखरा है। नाना सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों की पकड़ तथा उनकी सफल अभिव्यक्ति भास की अपनी विशेषता है। प्रकृति चित्रण, चरित्राङ्कन इत्यादि सभी दृष्टियों से इन नाटकों का महत्त्व है। इन्हीं सब कारणों से भास का प्रभाव परवर्ती नाटककारों पर पड़ा और उन्होंने मुक्तकण्ठ से भास की प्रशंसा की।

प्रस्तुत ग्रंथ में भास के नाटकों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। भास के नाटकों की उत्कृष्टता तथा हिन्दी में भास के सम्बन्ध में किसी उपयुक्त पुस्तक के अभाव के कारण यह आवश्यक था कि भास के नाटकों का सर्वाङ्गीण समीक्षण तथा परिचय प्रस्तुत किया जाय। इस ग्रन्थ में भास के नाटकों का परिचय, समीक्षण, तत्कालीन देश-काल की स्थिति आदि का प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। भास के समय आदि का भी प्रामाणिक निर्णय किया गया है तथा इस सम्बन्ध में उपलब्ध विभिन्न मत-मतान्तरों की तटस्थ एवं पूर्वाग्रह से मुक्त समीक्षा की गई है।

इस ग्रन्थ के प्रणयन में मेरे स्नेह-भाजन शिष्य डा० गंगासागर राय, एम० ए०, पी-एच० डी० (सर्व भारतीय काशिराजन्यास, दुर्ग रामनगर) ने विशेष सहायता की है। इसके लिये उन्हें विपुल आशीर्वाद देता हूँ।

चौखम्बा संस्कृत सीरीज तथा चौखम्बा विद्याभवन (वाराणसी) के संचालक बन्धुओं—श्री मोहनदास गुप्त तथा श्री विट्ठलदास गुप्त—ने इसके प्रकाशन में जो तत्परता दिखाई है उसके लिये वे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है इस रूप में यह पुस्तक विद्यार्थियों तथा विद्वानों को समान रूप से ग्राह्य तथा उपादेय होगी।

नई कालनी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी
श्रीरामनवमी, २०२१ वि०
२० अप्रैल १९६४ ई०

बलदेव उपाध्याय

विषय-सूची

महाकवि भास

प्रथम परिच्छेद

विषय-प्रवेश

संस्कृत नाटकों के विकास के इतिहास में भास वह जाज्वल्यमान मणि हैं जिनकी कीर्ति-कौमुदी की प्रसृति काल के दुर्दम्य प्रभाव से अस्पष्ट रही अथच सुदूर दक्षिण से लेकर ध्रुव उत्तर तक एवं प्राची से लेकर प्रतीची तक सम्पूर्ण भरतखण्ड में चमकती रही। नाटक को पञ्चम वेद होने का जो गौरव भरत ने प्रदान किया तथा कालिदास ने जो उसे भिन्नरुचि जनों का एकत्र समाराधन कहा, इसकी सम्यक् परिपुष्टि भास के नाटकों से होती है। नाटक कवित्व का चरम परिपाक है—'नाटकान्तं कवित्वम्'। उसमें तीनों लोकों के भावों का अनुवर्तन होता है। जब हम इस दृष्टि से देखते हैं तो भास की महत्ता और बढ़ जाती है। उस सुदूर अतीत में जब लौकिक संस्कृत अभी अपनी दिशा का निर्माण कर रही थी, भास ने तेरह नाटकों की रचना की और केवल रचना ही न की अपितु सफलता भी प्राप्त की। यह नाट्य-साहित्य के इतिहास में चिरस्मरणीय बात है।

भास-नाटकचक्र की प्रशस्ति

बीसवीं सदी के आरम्भ तक भास नाटकचक्र के बारे में केवल यत्र तत्र प्रशस्ति-वाक्य ही सुनने को मिलते थे। भास के नाटकों का स्वरूप लोगों को अज्ञात था। केवल दक्षिणभारत की कुछ हस्तप्रतियों में ही भास-नाटकचक्र सीमित था जिनका किसी को पता न था। सर्वप्रथम महामहोपाध्याय डा० गणपति शास्त्री भास के नाटकों को प्रकाश में लाए। पर, इस प्रकाशन से पूर्व संस्कृत के आचार्यों तथा कवियों ने भास तथा भास के नाटकों की बहुशः प्रशंसा की थी। इन प्रशस्तियों से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही भास के नाटक अपना विशिष्ट स्थान रखते थे और मान्य कवियों

की दृष्टि में सम्मानित थे। इन प्रशस्तियों तथा उल्लेखों में से कुछ का निर्देश किया जाता है—

(१) सरस्वती के वरदपुत्र महाकवि कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में सूत्रधार के मुख से प्रश्न कराया है कि प्रथित यशवाले भास, सौमिल्ल, कविपुत्र आदि कवियों की निर्मितियों का अतिक्रमण कर कालिदास की कृति का इतना बहुमान क्यों है ?[1]

(२) हर्ष के सभापण्डित बाणभट्ट ने भास के नाटकों की प्रशंसा करते हुए कहा है कि ये नाटक सूत्रधार से आरम्भ किये जाते हैं, बहुत भूमिका वाले होते हैं, पताका से युक्त होते हैं तथा देवस्थानों की भाँति प्रसिद्ध होते हैं।[2] यहाँ यह स्मरणीय है कि संस्कृत के नाटक सामान्यतया नान्दी से प्रारम्भ होते हैं। पर, भास के नाटकों में नान्दी का सर्वथा अभाव रहता है और ये सूत्रधार से प्रारम्भ होते हैं। यह विलक्षणता इन्हें संस्कृत के अन्य नाटकों से पृथक् करती है।

(३) वाक्पतिराज ने अपने प्राकृत महाकाव्य 'गउडवहो' में भास को 'ज्वलणमित्ते'—ज्वलनमित्र (अग्नि का मित्र) कहा है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि वासवदत्ता के दाह की मिथ्या खबर फैलाकर भास को नाटकीय वस्तु विकास का उपर्युक्त अवसर प्राप्त हुआ है। अतएव अग्निदाह का प्रयोग करने वाले भास को 'ज्वलनमित्र' संज्ञा प्राप्त हुई है।[3]

(४) जयदेव ने भास को कविताकामिनी का 'हास' बताया है। इस उल्लेख से भास की हास्य रस के वर्णन में कुशलता व्यञ्जित होती है। भास के उपलब्ध नाटकों में हास्य के प्रसङ्ग बड़ी सफलता से प्रस्तुत किये गये हैं।

---

१. प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः—मालविकाग्निमित्र पृ० २।

२. सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ।—बाण हर्षचरित ।

३. भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे तहावि रहुवारे ।
सोबन्धवे अ बन्धम्मि हारिअन्दे अ आणन्दो ॥—गउडवहो, ८००।

हास्य के उद्धत तथा सुकुमार दोनों रूपों की सघटना बड़ी सफलता के साथ की गई है। उद्धत हास्य के लिये 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' के विदूषक की श्लिष्ट भाषा तथा सुकुमार हास्य के लिये वासवदत्ता के औदरिक विदूषक का वर्णन दर्शनीय है, कालिदास में जहाँ हास्य का केवल सुकुमार रूप है, वहाँ भास के नाटकों में दोनों रूपों का सजीव चित्रण है। अतः जयदेव का कथन पूर्णतः यथार्थ है—अर्थवाद-मात्र नहीं।[1]

(५) राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में भास-नाटकचक्र की अग्नि-परीक्षा तथा 'स्वप्नवासवदत्ता' के उस अग्निपरीक्षा में न जलने का उल्लेख किया है।[2]

(६) दण्डी ने 'अवन्तिसुन्दरी कथा' में भास के काव्य-गुणों का वर्णन किया है। उनके अनुसार भास के नाटकों में मुख एवं प्रतिमुख सधियाँ स्पष्ट होती हैं तथा अनेक वृत्तियों के द्वारा इन्होंने अपने काव्य में विभिन्न भावदशाओं की अभिव्यञ्जना की है।[3]

(७) नाट्यदर्पण (लेखक, रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र, १२ वीं सदी) में भास के स्वप्न नाटक का स्पष्टतः उल्लेख किया गया है।[4]

(८) शारदातनय (१२ वीं सदी) ने 'भावप्रकाशन' में प्रशान्त नाटक के प्रसङ्ग में 'स्वप्नवासवदत्ता' के कथानक का निर्देश किया है।

---

१. यस्याश्चोरश्चिकुरनिकुरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
हर्षो हर्षःहृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः
केषां नैषा भवतु कविताकामिनी कौतुकाय ॥—जयदेव, प्रसन्नराघव ॥

२. भासनाटकचक्रेऽस्मिञ्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥—राजशेखरः काव्यमीमांसा।

३. सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः।—अवन्तिसुन्दरी।

४. यथा भासकृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिकाशिलातलमवलोक्य वत्सराजः...
—नाट्यदर्पण ॥

(९) आचार्य अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की टीका में भास के स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है।[1]

(१०) भोजदेव ने 'शृंगारप्रकाश' मे स्वप्नवासवदत्ता का उल्लेख किया है।[2]

(११) 'अमरकोशटीकासर्वस्व' में सर्वानन्द ने उदयन तथा वासवदत्ता के विवाह का वर्णन किया है।

(१२) जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' की एक टीका में कहा गया है कि भास तथा व्यास में यह विवाद उठा कि कौन बडा है। दोनों ने अपनी एक एक सर्वोत्तम पुस्तक अग्नि में डाल दी। व्यास की पुस्तक तो अग्नि में जल गयी, पर भास का विष्णुधर्म अग्नि से न जल सका। इस कथन का साम्य राजशेखर के वचन से स्पष्ट है *यद्यपि राजशेखर ने व्यास के साथ विवाद का उल्लेख नहीं* किया है। विष्णुधर्म अब तक अनुपलब्ध है।

इन उल्लेखों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भास के नाटकों का अत्यधिक प्रचार था। कवियों तथा आलोचकों मे भास के नाटक सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे। पर, काल के करालचक्र से ये नाटक भी अछूते न रहे। अन्त में केवल सूक्तिवचन से इनका पता लगने लगा।

भास-नाटकचक्र का उद्धार

भास के नाटकों का प्रकाशन सस्कृत साहित्य के इतिहास में एक विशिष्ट बात है। महामहोपाध्याय प० गणपति शास्त्री के द्वारा इन नाटकों के प्रकाशन से पूर्व ये नाटक *प्रेक्षकों के दृष्टिपथ से ओझल हो गये थे।* यहाँ *यह प्रश्न भी* उठाया जा सकता है कि जब भास के नाटक प्राचीम युग में इतने प्रसिद्ध थे कि कालिदास जैसे सवोत्कृष्ट कवि से उनका उल्लेख किये बिना न रहा गया तो वे फिर लुप्त कैसे हो गये ? यह-प्रश्न बडा पेचीदा है और इसका कोई मान्य

---

१. क्वचित्क्रीडा। यथा वासवदत्तायाम्।

—नाट्यशास्त्रपर अभिनवगुप्त की टीका।

२. वासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्था द्रष्टु राजा समुद्रगृहक गत. ।—शृङ्गारप्रकाश।

समाधान नहीं। वैसे वैदिक ग्रंथ और शास्त्रें जिनका कि पठन-पाठन कुल-परम्परा में अनिवार्य था लुप्त हो गये तो फिर लोकानुरंजन के साधक इन नाटकों का प्रचार से परे होना कोई अतर्कित बात नहीं। सुमिल्ल आदि के नाटक आज भी कराल काल के गर्त में विलीन ही हैं। तथापि विद्वानों ने इसका उत्तर देने का प्रयास किया है। मुख्यतया ये कारण दो हैं—

(१) देश में मुसलिम शासन के प्रसार के साथ ही साथ प्राचीन ग्रंथों पर विपत्ति के बादल घिरने लगे। यह स्वाभाविक है कि देश की समृद्धि तथा शौर्य के गीत गानेवाले, राजसिंह को पृथ्वीपालन का आदेश देनेवाले तथा वैदिक धर्म की प्रशस्ति करनेवाले भास के नाटकों पर मुसलमानों की कुदृष्टि पड़ी हो। मुसलमानों का व्यापक प्रचार-प्रसार उत्तरी भारतवर्ष पर ही विशेष था। इसके अतिरिक्त देशी सरदारों तथा यहाँ रहनेवाले मुसलमानों के लिये देवनागरी लिपि का पाठ भी सरल था। फलतः उन्होंने देवनागरी लिपि में लिखित तथा उत्तरी भारत में प्रचलित भास के नाटकों को नष्ट करने का प्रयास किया। यह सम्भावना इस बात से भी पुष्ट होती है कि उत्तरी भारत तथा देव-नागरी लिपि में लिखित भास-नाटकों की प्रतियाँ अनुपलब्ध हैं। प्रो० वी० राघ-वन् ने जो हस्तलेखों की खोज की उसमें भी देवनागरी में भास के नाटकों का अभाव है। इसके अतिरिक्त, दक्षिणी केरल देश में मुसलमानों का व्यापक प्रसार न था और ग्रन्थ तथा मलयालम की लिपियाँ भी सम्भवतः उनके लिए सुगम न थीं। अतः वहाँ भास के नाटकों के हस्तलेख सुरक्षित रहे।

(२) विदेशियों से बारम्बार पदाक्रान्त होने पर अब यहाँ के लोगों का जीवन नैराश्य की ओर उन्मुख था। वीरतापूर्ण नाटकों को सुनने की अपेक्षा अब वे धर्म तथा दर्शन पर झुक गये थे। अतः भास के ये नाटक प्रचलन से उठ गये।[१]

किमप्यस्तु। ये केवल सम्भावना-मात्र हैं।

सन् १६०६ ई० में महामहोपाध्याय पं० गणपति शास्त्री को पद्मनाभपुरम् के समीपवर्ती मनलिक्करमठम् में स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण,

---

१. द्रष्टव्य, ए. एस. पी. अय्यर कृत 'भास', पृ० १३–१५।

पञ्चरात्र, चारुदत्त, दूतघटोत्कच, अविमारक, बालचरित, मध्यमव्यायोग, कर्णभार तथा ऊरुभङ्ग के हस्तलेख मिले। इसके अतिरिक्त, दूतवाक्य की भी ताड़पत्र पर एक हस्तप्रति मिली जो खण्डित थी। ये हस्तलेख मलयालम लिपि में थे। गणपति शास्त्री ने इस विषय में आगे भी अनुसंधान जारी रखा और कैलासपुरम्के एक ज्योतिषी के पास से अभिषेक नाटक तथा प्रतिमा नाटक की हस्तप्रतियाँ प्राप्त कीं। ट्रिवेण्ड्रम राजप्रासाद पुस्तकागार में भी इन दोनों नाटकों की हस्तप्रतियाँ मिलीं जो इन प्रतियों के समान थीं। मैसूर के पण्डित अनन्ताचार्य ने केरल से प्राप्त स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण की दो प्रतियाँ भी पण्डित गणपति शास्त्री को दीं। कृष्णतन्त्री से भी गणपति शास्त्री ने हस्तलेख प्राप्त किये। अत्यधिक प्रयत्न के विपरीत भी गणपति शास्त्री को चारुदत्त की कोई पूर्ण हस्तप्रति नहीं मिली। चारुदत्त नाटक सहसा समाप्त हो जाता है और प्रतीत होता है कि यह कर्णभार का अग्रिम अंश है क्योंकि कर्णभार भी अपूर्ण ही प्रतीत होता है।

गणपति शास्त्री की उपलब्धि से तीन साल पूर्व ही गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी मद्रास के लिये वहाँ के लेखक श्री सम्पतकुमार चक्रवर्ती ने ३ जनवरी १९०६ ई० को पुस्तकालय के लिये स्वप्नवासवदत्तम् की देवनागरी लिपि में एक प्रति नकल की थी। उसके एक महीने के बाद ६-२-१९०६ को श्री चक्रवर्ती ने देवनागरी लिपि में पुस्तकालय के लिए प्रतिज्ञायौगन्धरायण की भी एक प्रति नकल की।

पं० गणपति शास्त्री ने १९१२ ई० में भास के इन तेरह नाटकों को प्रकाशित किया।

भास-नाटकचक्र का एककर्तृत्व

यह प्रश्न आरम्भ से ही जोरों से उठाया गया था कि क्या ये ग्रन्थ भास के द्वारा ही लिखे गये और यदि भास इनके लेखक हैं भी तो क्या सभी नाटकों के हैं अथवा कुछेक के ही। पर, इन नाटकों के सूक्ष्म अन्वीक्षण से यह स्पष्ट लक्षित हो जाता है कि इन सभी नाटकों के रचयिता एक ही व्यक्ति थे। इस मत की पुष्टि में कुछ प्रमाणों को यहाँ उपन्यस्त किया जाता है—

(१) इन समस्त नाटकों में (केवल चारुदत्त को छोड़कर) नान्दी के अनन्तर सूत्रधार मंगलपाठ से इनका आरम्भ करता है ।[1]

(२) अंकों के मध्य में लघुविस्तारी प्रवेशकों तथा विष्कम्भकों का प्रयोग किया गया है। इनका उपयोग दर्शकों को अंकों के मध्य में घटित घटनाओं की सूचना देने के लिए किया गया है।

(३) इन नाटकों में 'प्रस्तावना' के स्थान पर सर्वत्र 'स्थापना' का प्रयोग किया गया है।

(४) सभी नाटकों में, जिनमें कि भरतवाक्य है (चारुदत्त तथा दूतघटोत्कच में भरतवाक्य नहीं है) यह कामना कि राजा जिसे कि राजसिंह कहा गया है तथा जो हिमालय से विन्ध्य तथा पूर्व सागर से पश्चिम सागर तक शासन करता है, सम्पूर्ण पृथ्वी की विजय करे; सभी वर्णों के धर्म की रक्षा हो तथा गौ एवं भले मनुष्यों की रक्षा हो ।[2]

(५) सामान्यतया भरत प्रतिपादित नाट्य-नियमों का इन नाटकों में पालन नहीं हुआ है। मृत्यु तथा लड़ाई झगड़े, रङ्गमञ्च पर ही प्रदर्शित किये गये हैं तथा अभिषेक, पूजा, शपथ या अश्रु प्रक्षालन के लिये रङ्गमञ्च पर जल लाया गया है। जैसे—'प्रतिमा' में दशरथ की, 'अभिषेक' में बालि की तथा 'ऊरुभङ्ग' में दुर्योधन की मृत्यु रङ्गमञ्च पर ही दर्शायी गयी है। चाणूर, मुष्टिक और कंस का वध भी प्रेक्षकों को रङ्गमञ्च पर ही दिखायी पड़ता है। बालचरित में कृष्ण और अरिष्ट के भयकर युद्ध का वर्णन है। स्वप्ननाटक में क्रीडा और शयन भी दिखाये गये हैं अथच दूर से उच्च स्वर में पुकारने का वर्णन मध्यमव्यायोग तथा पञ्चरात्र में है।

---

१. (अ) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः । सूत्रधारः—उदयनवेन्दु-वर्णा...' स स्वप्ननाटक—

(ब) नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः । सूत्रधारः—पातु वासवदत्तायो... प्रतिज्ञायौ० । इत्यादि ।

२. इमा सागरपर्यन्ता हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्

महीमेकातपत्राङ्का राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ स्वप्न० ६-१९; तथा अन्य नाटकों के भरतवाक्य ।

(६) विशिष्ट अर्थों में शब्दो का प्रयोग—भास के नाटको में कुछ शब्दों का प्रयोग अपने प्रचलित अर्थों से भिन्नार्थ में हुआ है। उदाहरणार्थ—आर्यपुत्र शब्द का प्रयोग अनेकशः ऐसे अर्थों में हुआ है जो भरत के नाट्यशास्त्र में अविहित हैं।

(७) इन सभी नाटकों में 'आकाशभाषित' प्रायशः मिलता है। 'आकाशभाषित' के अन्तर्गत रङ्गमञ्च पर पात्र ऐसे व्यक्ति से बोलता अथवा उत्तर देता है जो रङ्गमञ्च पर नहीं है अथवा अप्रकृत ध्वनियों को सुनता है।

(८) कञ्चुकी और प्रतिहारी के नामों की कई नाटकों में पुनरावृत्ति हुई है। उदाहरणार्थ—कचुकी का नाम 'प्रतिज्ञा' नाटक में भी बादरायण है और दूतवाक्य में भी। इसी प्रकार प्रतिहारी का नाम स्वप्न, प्रतिज्ञा, अभिषेक तथा प्रतिमा में विजया है।

(६) प्रायेण सभी नाटकों मे 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'प्रस्तावना' शब्द का प्रयोग एकमात्र 'कर्णभार' में किया गया है।

(१०) नाट्य निर्देश की न्यूनता सभी नाटकों में समानभावेन प्राप्य है। जो नाट्यनिर्देश है भी उनमें एकाधिक निर्देश एक साथ पाये जाते है। उदाहरणार्थ—'निष्क्रम्य पुन. प्रविश्य' यहाँ निष्क्रमण तथा प्रवेश सहभावेन निर्दिष्ट है।

(११) इन सभी नाटकों के नामों का उल्लेख नाटक के अन्त में किया गया है अन्यत्र नहीं। इन रूपकों मे किसी में भी ग्रन्थ के प्रणेता का नाम नहीं मिलता।

(१२) इन नाटकों में यद्यपि विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है पर इन छन्दों के प्रयोग में साम्य है।

(१३) कई नाटकों में ऐसी प्रभावशाली पद्धति का प्रयोग हुआ है कि किसी नवागन्तुक के द्वारा अप्रत्याशित उत्तर की प्राप्ति होती है। उदाहरणार्थ, जब महासेन और अङ्गारवती विमर्श कर रहे हैं कि कौन राजा वासवदत्ता के लिये उपयुक्त है उसी समय कञ्चुकी सहसा आकर कहता है—'वत्सराज'। अभिप्राय यह कि उनके प्रश्न का आकस्मिक उत्तर मिल गया यद्यपि कञ्चुकी

कहने यह आया था कि 'वत्सराज बन्दी बना लिया गया।' इसी प्रकार अभिषेक नाटक में जब रावण सीता से कहता है कि 'इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण को मार डाला। अब तुम्हें कौन मुक्त करेगा?' उसी समय एक राक्षस आकर कहता है 'राम' यद्यपि वह कहना यह चाहता है कि 'राम ने इन्द्रजित् को मार डाला।'

(१४) इन नाटकों में समान शब्दों तथा दृश्यों की अवतारणा की गई है। किसी विशिष्ट व्यक्ति के आगमन की तुलना तारागों के मध्य चन्द्रमा के उदय से की गई है। बालि, दुर्योधन तथा दशरथ सभी मृत्यु के बाद पवित्र नदी का दर्शन करते हैं तथा उनके लिये देव विमान आता है।

(१५) कई नाटकों में समान वाक्यों की उपलब्धि होती है। उदाहरणार्थ—जन-सम्मर्द के बढ़ जाने पर मार्ग साफ करने के लिये—'उस्सरह उस्सरह अय्या! उस्सरह।' (हटिये, हटिये श्रीमानो!) का प्रयोग कई स्थानों पर है। कई विषयों का वर्णन भी समानरूप से अनेक नाटकों में मिलता है। जैसे, सूर्यास्त, राज्यागमन, युद्ध और युद्धक्षेत्र आदि का। इनकी वर्णन-पद्धति में समानता सुतरां दर्शनीय है।

(१६) एक ही पात्र के द्वारा या अन्य पात्रों के द्वारा पद्यों के खण्डित प्रयोग होते हैं।

(१७) तेरह नाटकों में से पाँच नाटकों में आद्य श्लोकों में मुद्रालंकार का प्रयोग है। इसमें देवता की स्तुति के साथ-साथ पात्रों का नाम निर्देश तथा कथानक की ओर सङ्केत किया गया है।

(१८) इन नाटकों में पाणिनीय व्याकरण का कठोरता से प्रयोग नहीं हुआ फलतः कई स्थानों पर अपाणिनीय प्रयोग दिखायी पड़ते हैं।

(१९) समान नाटकीय परिस्थितियों की अवतारणा इन नाटकों की विशेषता है। अभिषेक तथा प्रतिमा नाटकों में सीता रावण की प्रार्थना को अस्वीकार कर देती हैं तथा उसे शाप देती हैं। इसी प्रकार चारुदत्त में वसन्तसेना भी शकार के अनुनय को अस्वीकृत कर उसे शाप देती है। बाल चरित तथा पञ्चरात्र में जब सैनिकों से उनके राजा को नमस्कार करने के लिये कहा जाता है तो वे उपेक्षापूर्वक पूछते हैं कि 'यह किसका राजा है?' प्रतिज्ञा

नाटक में महासेन तब तक वत्सराज के बन्दी होने को नहीं मानता जब तक बादरायण यह नहीं कहता कि 'क्या उसने कभी पहले महासेन से झूठ कहा है?' इसी प्रकार चारुदत्त में कंस तब तक यह नहीं मानता कि देवकी को पुत्री हुई है जब तक कञ्चुकी इसी प्रकार का प्रश्न नहीं करता। अविमारक तथा प्रतिज्ञा में राजा तथा रानी के बीच उपयुक्त वर के लिये समान विमर्श है।

(२०) इन रूपकों की भाषा तथा शैली में व्यापक समानता है।

(२१) किसी घटना की सूचना देने के लिये 'निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय' इत्यादि वचन का प्रयोग पञ्चरात्र, कर्णभार, दूतघटोत्कच आदि में समानरूपेण किया गया है।

(२२) प्रायेण इन नाटकों में युद्ध की सूचना भटों, ब्राह्मणों आदि के द्वारा दिलायी गई है।

(२३) भावों की समानता इन नाटकों की एक महती विशेषता है। नारद को कलहप्रिय तथा स्वरतन्त्री का साधक बताया गया है[1]; अर्जुन को वीरता का वर्णन दूतघटोत्कच तथा ऊरुभंग में समानरूपेण किया गया है; राजाओं के मृत्यु के उपरान्त भी यशःशरीर से जीवित रहने का वर्णन समानरूप से किया गया है, लक्ष्मी के साहसियों के पास रहने का विधान भी समानरूपेण किया गया है।

(२४) इन सभी नाटकों में समान सामाजिक परिस्थितियों की अवतारणा की गई है।[2]

इन साम्यों के आधार पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन नाटकों का रचयिता कोई एक ही व्यक्ति था। पर, इन नाटकों के प्रणेता भास ही थे अथवा नहीं इस विषय में प्रारम्भ से ही विवाद बना रहा है। डाक्टर ए० डी०

---

१. तन्त्रीषु च स्वरगणान् कलहांश्च लोके।—अविमारक ४।२
तन्त्रीश्च वैराणि च घट्टयामि।—बाल० १।४

२. इन नाटकों की समानता का डा० पुसालकर ने अपने ग्रन्थ 'भास : ए स्टडी' में बड़ी कुशलता के साथ प्रतिपादन किया है। इस सन्दर्भ में ए० एस० पी० अय्यर का भास ग्रन्थ भी उपादेय है।

पुसालकर तथा प्रो० ए० बी० कीथ इन्हें भासकृत बताते हैं। इसके ठीक विपरीत पिशरोती, कुन्हनराजा, देवधर तथा विन्टरनित्ज इन्हें भासकृत नहीं मानते। मध्यमार्ग डा० सुकथनकर आदि का है जो कुछ नाटकों को तो भासकृत मानते हैं पर कुछ को भास के नाम के साथ पीछे से जोड़ा गया मानते हैं।

केरलीय चाक्यारों की रचना ?—कुछ आलोचकों ने इन नाटकों को केरलीय रङ्गमञ्च के अभिनेता चाक्यारों की सृष्टि मानी है। उनका कहना है यदि यह नाटक-चक्र भास-प्रणीत होता तो इनकी प्रस्तावना या स्थापना में भास का नाम अवश्य होता। इसके अतिरिक्त यदि ये भास-कृत होते तो केरल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी इनकी हस्तप्रतियाँ अवश्य मिलतीं। रीति-ग्रंथों में जो 'स्वप्नवासवदत्ता' के उदाहरण आये हैं उनका भी वर्तमान नाटक में अभाव है। महामहोपाध्याय कुप्पुस्वामी शास्त्री का कहना है कि स्वप्नवासवदत्ता तथा प्रतिज्ञा नाटकों में 'विवाह' के लिये 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है। यह शब्द आज भी इसी अर्थ में केरल के चाक्यारों में प्रयुक्त होता है। इस बात से चाक्यार-उद्भव की पुष्टि होती है।

पर ये बातें युक्तिसगत नहीं प्रतीत होतीं। इन नाटकों में भास का नाम न होने से इनकी नवीनता कथमपि सिद्ध नहीं होती। यह तो निर्विवाद है कि कालिदास आदि की अपेक्षा भास प्राचीन हैं। यह सम्भव हो सकता है कि उनके समय में नाटककार का नाम न देने की प्रथा रही हो। इसके विपरीत यदि ये अर्वाचीन चाक्यारों की सृष्टि होते तो इनकी प्रामाणिकता बताने के लिये सचेष्ट होकर कर्ता का नाम इनमें दिया होता। केरल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में अनुपलब्धि भी इनके भास-कृत होने में विप्रतिपत्ति को जन्म नहीं देती। यह बहुत सम्भव है कि किसी कवि की कृति किसी देशविशेष में प्रचलित हो और अन्य प्रांतों में उसका व्यापक प्रचार-प्रसार न हो। यह भी सम्भव है कि उत्तरी भारत की राजनीतिक अस्थिरता भी उत्तरी भारत में उनकी हस्तप्रतियों के अभाव का कारण हो। प्राचीन ग्रंथों में प्राप्त उद्धरणोंके अभावका जहाँ तक प्रश्न है, हो सकता है वे अंश लेखक के प्रमादवश छूट गये हों। इतना तो निश्चित ही है कि भास के नाटक जन-समुदाय से दूर हो गये थे

फिर कुछ अंशों का छूटना असम्भव नहीं? इसके अतिरिक्त जिन नाटकों के ये अंश उद्धृत हैं उन उन नाटकों में उन्हें पिरो देने का उचित अवकाश है। रही बात विवाह अर्थ में 'सम्बन्ध' शब्द के प्रचार की तो मिताक्षरा पद्धति में यह शब्द इस अर्थ में अब भी दिखायी पडता है।

इसके अतिरिक्त चाक्यारों में इतनी काव्य-प्रतिभा इतना नाट्य कौशल तथा इतनी समृद्ध भाषा नहीं कि वे ऐसे उच्चकोटि के नाटकों का प्रणयन कर सकें। यदि चाक्यारों में इस प्रकार की कर्तृत्व शक्ति होती तो क्या वे दूसरे नाटक चक्रों की रचना नहीं करते? क्या उनकी कर्तृत्व शक्ति इन्हीं तेरह नाटकों के बाद कुण्ठित हो गयी? उन्होंने एक भी इस प्रकार की रचना क्यों नहीं की? वस्तुस्थिति यह है कि इन नाटकों की सृष्टि चाक्यारों ने नहीं की। यह हो सकता है कि इनमें उन्होंने अपनी आवश्यकतानुसार कुछ काट छाँट की हो।

इन नाटकों की रचना पल्लव-दरबार में नहीं हुई—यह भी कहा जाता है कि पल्लव द्वितीय नरसिंह वर्मन या तेनमारन के किसी सभापण्डित-ने इन नाटकों की रचना की। इसका आधार यह है कि इन दो नरपतियों ने अपनी उपाधि राजसिंह रखी थी। इन नाटकों में 'राजसिंह. प्रशास्तु नः' की उपस्थिति ने इस कल्पना को जन्म दिया है। इसकी पुष्टि में यह भी तर्क दिया जाता है कि इन नाटकों में ऐसे संस्कृत शब्द हैं जो दक्षिण में उद्भूत हुए हैं अथवा दाक्षिणात्य अर्थ रखते हैं। यह तर्क इतिहास से सिद्ध नहीं होता क्योंकि इन राजाओं की सभा में एतादृश विदग्ध कवि का उल्लेख कहीं नहीं है। और यदि इनकी रचना मानी भी जाय तो इसका कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि यह तथाकथित सभापण्डित अपना नाम क्यों गुप्त रखता जब कि विक्रम प्रथम सदी के लगभग से ही नाटककार अपना नाम नाटक में रखते आये थे—कालिदास, अश्वघोष, भवभूति आदि औदीच्य तथा शक्तिभद्र, महेन्द्रवर्मन आदि दाक्षिणात्य नाटककारों के नाम इसके प्रमाण हैं। इसके अतिरिक्त किसी दाक्षिणात्य नगर या व्यक्ति का अनुल्लेख तथा औदीच्य व्यक्तियों, जनपदों, नगरों आदि का वर्णन इसमें किंचित् भी सन्देह

के लिये अवकाश नहीं छोड़ता कि ये नाटक पल्लव या पाण्ड्य राजाओं के दरबार में निर्मित नहीं हुये।

इस प्रकार यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि चाक्यारों की रचना या पल्लव-दरबार में इनकी निर्मिति की सम्भावनायें आधार नहीं रखतीं। अब प्रश्न यह है कि क्या इन नाटकों के प्रणेता भास ही हैं? इस विषय में बड़ी विसंमितियाँ हैं। इन विसंवादी सिद्धान्तों को हम तीन वर्गों में रख सकते हैं —

(१) वे विद्वान् जो इन नाटकों को भासकृत नहीं मानते। उनके अनुसार किसी परवर्ती लेखक (चाक्यार, पल्लवनरेश का सभापण्डित या किसी अन्य कवि) ने इन्हें गढ़ा है तथा इनका प्रामाण्य और प्राचीनता सिद्ध करने के लिये इन्हें भास के नाम के साथ संयुक्त कर दिया है। जैसा कि पहले दर्शाया गया है अपने मत के समर्थन में ये विद्वान् कहते हैं कि भास के जो उदाहरण लक्षण ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं उनका वर्तमान भास-नाटकों में अभाव है। इसके अतिरिक्त इन नाटकों की प्रस्तावना में भास का नाम नहीं मिलता तथा केरल से अन्यत्र इनकी हस्तप्रतियाँ भी नहीं मिलती। पर, ये सारे तर्क लचर हैं तथा इनके आधार पर हम किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुच सकते। जो उदाहरण वर्तमान भासीय नाटकों में नहीं मिलते उनके समावेश का इन नाटकों के परिवेश में पूरा स्थान है। इसके अतिरिक्त प्राचीन कवियों ने भास के नाटकों की जो विशेषतायें बतायी हैं वे इन नाटकों में पूर्णतः उपलब्ध हैं।

(२) इसके ठीक विपरीत सिद्धान्त उन लोगों का पड़ता है जो इन नाटकों को पूर्णरूपेण भास की कृति मानते हैं।[1]

(३) तृतीय सिद्धान्त उन विद्वानों का है जिनके अनुसार इन नाटकों के कतिपय अंश तो भास रचित अवश्य हैं पर अपने समग्ररूप में ये भास की कृति नहीं। महामहोपाध्याय प० रामावतार शर्मा इसी मत के समर्थक हैं।[2] उनकी सम्मति में कुछ नाटकों के कतिपय अंश भासरचित तो अवश्य

---

१. इनके विवेचन के लिये द्रष्टव्य, Thomas—Plays of Bhāsa, J. R. A. S., 1922 P. 79.

२. द्र० 'शारदा' संस्कृत-पत्रिका वर्ष १, सं० १।

है पर समग्र नाटकों की रचना भास ने नहीं की। किसी केरलीय कवि ने भास के भागांशों की पूर्ति कर दी। डाक्टर बार्नेट भी इन नाटकों के प्रणेता को प्रसिद्ध भास मानने के लिये तैयार नहीं।[1] इधर परवर्ती समीक्षणों परीक्षणों से भी यही बात प्रकाश में आयी है कि ये समग्र अंश में भास की रचना नहीं। पं० रामावतार शर्मा जी का मत ही उपयुक्त प्रतीत होने लगा है कि भास के उपलब्धांशों को पूरा कर किसी केरलीय कवि ने इन नाटकों को प्रस्तुत किया।

परस्पर विसंवादी सिद्धान्तों और मान्यताओं के बीच यही बात अधिक उपयुक्त प्रतीत हो रही है कि ये नाटक अंशतः भास रचित हैं। इसी मत में उन विद्वानों की रायों का भी समावेश हो जाता है जो कहते हैं कि ये नाटक भास के नाटकों के संक्षिप्त रूप हैं। इनके कथन की सार्थकता इतने तक ही है कि इन नाटकों के कुछ अंश भास प्रणीत हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति यह कहते हैं कि ये नाटक भास प्रणीत बिलकुल नहीं हैं उनकी बात प्रामाण्य-कोटि में नहीं ली जा सकती।

---

१. द्र० Bulletin of school of oriental studies एवं J. R. A. S., 1919 P. 233 तथा 1921, P. 587.

द्वितीय परिच्छेद

भास के नाटक

'ट्रिवेण्ड्रम प्लेज' के आविष्कर्ता महामहोपाध्याय प० टी० गणपति शास्त्री ने भास के तेरह नाटकों को प्रकाशित किया। बाद में १६४१ ई० में राजवैद्य कालिदास शास्त्री ने 'यज्ञफल' नाम का एक अन्य नाटक प्रकाशित किया और इसे भासकृत बताया। यह नाटक देवनागरी की दो हस्तप्रतियों पर आधृत था। यह रामायण के बालकाण्ड पर आधृत है तथा प्रतिमा एवं अभिषेक नाटकों से साम्य रखता है। इसमें तप तथा वैदिक-यज्ञ की प्रशस्ति है। दशरथ को यज्ञ से पुत्र उत्पन्न होते हैं; विश्वामित्र यज्ञ के द्वारा ब्रह्मर्षि बनते हैं और राम का सीता से परिणय यज्ञ के द्वारा होता है जिसके आधार पर इस नाटक का नामकरण यज्ञफल हुआ। चूँकि प्रारम्भ से ही ट्रिवेण्ड्रम-नाटकों के भास प्रणीत होने के विषय में घोर विवाद उठ खड़ा हुआ था अतः उस विवाद में इस नाटक के प्रकाशन ने आहुति का काम दिया। लोगों ने इसे जाली बताया और इस कथन को बल इस नाटक की हस्तप्रति के देवनागरी में होने से मिला। परन्तु, डाक्टर पुसालकर ने इसे भास की रचना बताया और कहा कि यह उनकी प्रौढ़ावस्था की रचना है। डाक्टर पुसालकर ने इसकी प्रामाणिकता तेरह ट्रिवेण्ड्रम-नाटकों की भाषा, नाट्यशैली तथा भावों की समानता के आधार पर सिद्ध की। उन्होंने उत्तरी भारत में प्राप्त इस हस्तप्रति के आधार पर यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया कि अन्य तेरह नाटक भी भास-प्रणीत ही हैं।

किन्तु, १६४२ में ही जयपुर के प० गोपालदत्त शास्त्री भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना में पधारे और डा० सुकथनकर तथा डा० पी. के. गोडे से कहा कि यज्ञफल की रचना उन्होंने स्वयं की हैं तथा प्रयत्न-पूर्वक उसमें भास की शैली का अनुकरण किया है। उन्होंने यह भी कहा कि यज्ञफल पर उन्होंने तीन टीकायें की हैं जिनसे उनके वास्तविक प्रणेता होने

का पता लग जाय। यह विषय राजवैद्य कालिदास शास्त्री को सौंपा गया और उन्होंने इसे भास कृत बताया। उन्होंने कहा कि गोपालदत्त शास्त्री ने कपटपूर्वक इसे अपना सिद्ध किया और तीन टीकायें रख दी। डा० आर. एन. दाण्डेकर ने इस विषय की छानबीन की और प्रथम कुञ्जी को निस्सार बताया। उन्होंने कहा कि चूँकि गोपालदत्त शास्त्री को प्रकाशन का कार्य सौंपा गया था अत उन्होंने आमुख में इसे अपना बता दिया। उन्होंने यह भी दर्शाया कि हस्तप्रति के मर्मज्ञ डा० गोडे ने १६७० वाली प्रति को सही बताया अतः वह प्रति प्रामाणिक है। यही अवस्था दूसरी कुञ्जी की भी है। पर, तीसरी कुञ्जी जिसमें कि 'भासानुकारी' लिखा है प्रामाणिक सिद्ध हुई। और यह १६७० की हस्तप्रति पर भी प्रामाणिक ही मिली। अतः दाण्डेकर ने कहा कि इस तथ्य को गोपालदत्त शास्त्री ने धोखा से अपने लिये प्रयुक्त किया अथवा १६७० से बहुत पहले किसी कवि ने भास के अनुकरण पर इस ग्रंथ को रचा था।

प्रोफेसर भाला ने इसकी पुनः विवेचना की (जर्नल आफ दि बाम्बे ब्रान्च आफ एसियाटिक सोसाइटी १६५४)। इन्होंने कहा कि यद्यपि 'यज्ञफल' अन्य भासीय नाटकों की नाईं ही प्रारम्भ तथा समाप्त होता है पर इसमें बहुत सी नवीन बातें हैं जो भास के समय में न थीं। राम धनुष-भङ्ग से पूर्व उद्यान में सीता से प्रेम दाढर्य के लिए मिलते हैं, राम को दुष्यन्त की ही भांति शंका है कि सीता कहीं ब्रह्मर्षि की पुत्री तो नहीं, विश्वामित्र नागर तथा ग्राम्य जीवन की तुलना करते हैं और ग्राम्य जीवन को श्रेष्ठ बताते है, आदि। इस प्रकार भास के आधार पर यह नवीन अनुकृति को सूचित करता है। अतः ज्यादा सम्भव यही प्रतीत होता है कि यज्ञफल भासीय नाटकों के अनुकरण पर किसी अन्य परवर्ती नाटककार द्वारा गढा गया जो इसका कर्तृत्व न तो भास के मत्थे मढ़ता है और न स्वयं अपने को इसका प्रणेता बताता है।

इस नाटक में सात अंक हैं। प्रथम में दशरथ के चार पुत्रों का जन्मोत्सव मनाया जाता है। सुमन्त्र नाना उपहारों को बाटते हैं। दशरथ सभी बन्दियों की मुक्ति का आदेश देते हैं, पर उस समय कोई जेल में नहीं था। उन्हें विवाह के समय कैकयी को दिये गये वरदान का स्मरण हो आता है जिसमें

उन्होंने उसके पुत्र को राजा बनाने की प्रतिज्ञा की थी। द्वितीय अङ्क में दशरथ अन्तःपुर के उद्यान में सुमन्त्र तथा रानियों से एकान्त में यह विमर्श करते हैं कि किसे राजा बनाया जाय। कञ्चुकी से सभी को बाहर रोकने लिये कह दिया जाता है। दशरथ राम को राजा बनाने की अपनी इच्छा प्रकट करते हैं और सभी रानियाँ इसका अनुमोदन करती हैं। जब कैकेयी से उसके पुत्र को राजा बनाने की बात कही जाती है तो वह कहती है कि केवल राम ही राज्यपद के उपयुक्त हैं। अन्त में सभी रानियाँ अपने-अपने अन्तःपुरों में सायकाल अपने अपने पुत्रों से यह बात बताने का निश्चय कर चली जाती हैं।

तृतीय अङ्क में रावण राम का जिनकी शक्ति को वह सुन चुका है, अनिष्ट करने के लिये अयोध्या जाता है। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर राम की रक्षा के लिये गन्धर्वों को भेजते हैं। विश्वामित्र भी अतिबल नामक शिष्य की खोज में आते हैं। वे भी अदृश्य हैं पर रावण उन्हें देख लेता है। विश्वामित्र जृम्भकास्त्र की शिक्षा के लिये राम को अधिक उपयुक्त समझते हैं। वसिष्ठ चारों शिष्यों के साथ आते हैं। बाण छोड़ते हुये शिष्यों को विश्वामित्र तथा रावण दोनों देखते है और वे राम का बाण पकड़ लेते हैं इस पर राम आग्नेय अस्त्र छोड़ने को कहते हैं जिसे सुनते ही रावण पलायन कर जाता है। अन्य भाई राम को आग्नेयास्त्र-सधान से विमुख करते हैं। मन्थरादि दासियाँ पुष्पावचय के लिये प्रवेश करती हैं पर वृक्षों पर बाण-सन्धान के चिह्न देख कर भाग जाती हैं। अनन्तर वसिष्ठ रावण तथा विश्वामित्र के आने की बात कहते हैं। वे राम से विश्वामित्र के प्रति श्रद्धा प्रकट करने को कहते हैं तथा बताते हैं कि कल विश्वामित्र दशरथ से राक्षसों के वध के लिये उन्हें भेजने की प्रार्थना करेंगे।

चतुर्थाङ्क में राजभवन के बन्दियों में उनके गायन के विषय में विवाद है। वे विश्वामित्र के ब्रह्मणत्व तथा क्षत्रियत्व के विषय में भी विवाद करते हैं। अनन्तर विश्वामित्र का प्रवेश होता है जिनका दशरथ सुमन्त्र के साथ स्वागत करते हैं। विश्वामित्र वसिष्ठ से राम के शिक्षणादि के विषय में प्रश्न करते हैं तथा रामके उत्तरों को सुनकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। विश्वामित्र दशरथ से राक्षसों द्वारा हो रहे उत्पातों से यज्ञ की रक्षा के लिये राम की

याचना करते हैं तथा राम को जृम्भकास्त्र सिखाने का वादा करते हैं। दशरथ उनकी बात मान लेते हैं।

पाचवें अङ्क के प्रवेशक में विश्वामित्र के शिष्यों में यह वितर्क चल रहा है कि क्यों उनके यज्ञ बाधित हो रहे हैं। यह कहा गया है कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हुये हैं अतः ब्राह्मणों ने रावण के नेतृत्व में राक्षसों को उत्तेजित किया है जो यज्ञ में बाधा दे रहे हैं। विश्वामित्र इस बात को जान गये हैं और इसी लिये क्षत्रिय-बालक राम को अपने समग्र अस्त्रों की शिक्षा देकर रक्षार्थ लाये हैं। राम मरीचि, सुबाहु आदि राक्षसों को मारते हैं। विश्वामित्र उनके बल तथा उत्साह की प्रशंसा करते हैं। प्रसगतः वे यह बताते हैं कि आगे धर्म की रक्षा के लिये राम की रावण से लड़ाई होगी। वे ग्राम्य तथा अरण्य-जीवन की प्रशसा करते हैं तथा नागर जीवन के दोषों को दर्शाकर उसकी निन्दा करते हैं। वे दोनों राजकुमारों को असाधारण फल की प्राप्ति की बात कहकर जनक-यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये मिथिला ले जाते हैं।

षष्ठ अक में जनक द्वारा विश्वामित्र की परिचर्या के लिये नियुक्त परिचारक सीता तथा राम के उद्यान में मिलने तथा प्रथम दर्शन में ही प्रेमासक्त होने की चर्चा करते हैं। राम तथा सीता पुनर्मिलन के लिये प्रयत्नशील होते हैं तथा जनक एव विश्वामित्र इसमें सहायता करते हैं। राम सीता से पुनः मिलते हैं तथा सीता की परिचारिका से यह सुनते हैं कि जनक ने सीता को उस व्यक्ति को सौंपने की प्रतिज्ञा की है जो शिव-धनुष् को नमित कर दे। जनक का यहाँ सहसा प्रवेश होता है और राम हट जाते हैं। जनक विश्वामित्र की इस बात पर कि राम धनुष झुका देंगे धनुष-झुकाने के लिए दिन नियत करते हैं।

सप्तम अंक में राम तथा सीता का परिणय दर्शाया गया है। परिणय के अवसर पर जनक, दशरथ आदि उपस्थित रहते हैं। धनुष-भङ्ग-जन्य भयकर-ध्वनि सुन कर परशुराम का सहसा प्रवेश होता है और राम पर वे रोष प्रकट करते हैं। जनक, विश्वामित्र, वसिष्ठ आदि उन्हें शान्त करते हैं। अन्त में, वे राम को महाविष्णु स्वीकार करते हैं तथा उन्हें अपना धनुष देते हैं एवं स्वयं वन में तप करने के लिए चले जाते हैं।

यज्ञफल नाटक भास रचित है अथवा नहीं इस विषय पर वाद-प्रतिवादों का ऊपर निर्देश कर दिया गया है। मेरे विचार में यह भास प्रणीत नहीं है। किसी परवर्ती कवि ने भास के अनुकरण पर इस नाटक की रचना की है और इस तथ्य की सूचना उसने 'भासानुकारी' कह कर दी है। नाटक की शैली वही है जो भास के अन्य नाटकों की। भाषा में भी पर्याप्त साम्य है। विषयों की एकता तथा नाट्य पद्धति में भी अन्य भासीय नाटकों से साम्य सुतरा दर्शनीय है। अस्तु, अब इस नाटक का संक्षिप्त निर्देश करने के अनन्तर भास के नाटकों का विवेचन किया जायेगा।

भास के नाटकों के कालक्रम के विषय में किंचित् मतवैभिन्य दृग्गोचर होता है। डाक्टर ए० डी० पुसालकर ने नाटकों का क्रम इस प्रकार माना है।

दूतवाक्य, कर्णभार, दूतघटोत्कच, उरुभङ्ग, मध्यमव्यायोग, पंचरात्र, अभिषेक नाटक, बालचरित, अविमारक, प्रतिमा, प्रतिज्ञा, स्वप्नवासवदत्तम् तथा चारुदत्त। इस सूची का अन्तिम नाटक अपूर्ण है और सम्भवतः भास की मृत्यु के कारण अधूरा छूट गया था।

डाक्टर पुसालकर ने यह क्रम नाटकों की शैली, पद्धति, संवाद, पद्य आदि के विवेचन के आधार पर स्थिर किया है।

विषय शैली, मौलिकता आदि के आधार पर श्री ए० एस० पी० अय्यर ने नाटकों का क्रम यह स्वीकार किया है :—

दूतघटोत्कच, कर्णभार, मध्यमव्यायोग, उरुभंग, दूतवाक्य, पंचरात्र, बालचरित, अभिषेक, प्रतिज्ञा, अविमारक, प्रतिमा स्वप्नवासवदत्तम् एवं चारुदत्त।

१—दूतवाक्य

प्रस्तुत नाटक का आधार एक महाभारतीय आख्यान है। इस आख्यान के अनुसार उत्तरा-अभिमन्यु के परिणय के अनन्तर पूरा प्रयास हुआ कि कौरव-पाण्डवों में समझौता हो जाय और पाण्डवों को अपना प्राप्य प्राप्त हो जाय। पर यह उद्योग कृतकार्य न हो सका। अन्ततः धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण के माथे ही यह भार सौंपा कि आप ही सन्धि-सम्पन्न करा दें और हम लोगों का हिस्सा दिला दें। युधिष्ठिर के आग्रह को शिरोधार्य कर भगवान् जनार्दन हस्तिनापुर में दौत्यकर्म के लिये जाते हैं।

नाटक का प्रारम्भ हस्तिनापुर के राजप्रासाद में होता है। कञ्चुकी घोषणा करता है कि आज महाराज सुयोधन समागत राजाओं के साथ मन्त्रणा करेंगे। इसी समय रङ्गमञ्च पर दुर्योधन का आगमन होता है। वह श्यामवर्ण का युवक, श्वेत चद्दर धारण किये हुये, छत्र-चामर से सुशोभित तथा अङ्गराग से युक्त है। नानामणिजटित आभरणों से वह अलंकृत है तथा उसकी शोभा नक्षत्रों के मध्य में अवस्थित पूर्ण चन्द्र जैसी है। वह पाण्डव सेना के दमन की श्लाघा करता है। कञ्चुकीय आकर निवेदन करता है कि राजमण्डल उपस्थित हो गया। गुरुजनों एवं समागत राजाओं के साथ दुर्योधन मन्त्रणागृह में प्रवेश करता है। सभा में बैठते ही कञ्चुकी का प्रवेश होता है जो यह कहता है कि पाण्डव सेना से दूत आया है। दूत बनकर स्वयं पुरुषोत्तम नारायण पधारे हैं। कृष्ण को पुरुषोत्तम सुनकर दुर्योधन खीझ जाता है और कञ्चुकीय को डाँटने लगता है। तदनन्तर कञ्चुकीय के अनुनय करने पर स्वस्थ होता है।

केशव का दूत रूप में आगमन सुनकर दुर्योधन राजाओं से कहता है कि 'कोई भी व्यक्ति कृष्ण के प्रवेश समय अपने आसन से खड़ा न हो। हमें कृष्ण की पूजा नहीं करनी है, अपितु उन्हें बन्दी बना लेने में ही भलाई है। कृष्ण के बन्धन में आते सारे पाण्डव स्वतः ही बद्ध और निःश्रीक हो जायेंगे। जो व्यक्ति कृष्ण के आने पर अपने आसन से खड़ा होगा उसे द्वादश सुवर्ण-भार का दण्ड होगा।' सभी से ऐसा कहकर दुयोधन द्रौपदी के चीरहरण के समय का चित्र मँगाता है और उसी चित्र को देखने में तल्लीन हो जाता है। चित्र देखते हुये वह भीम, अर्जुनादि की तत्कालीन भावभङ्गियों पर व्यंग्य भी कसने लगता है।

इसी समय कञ्चुकीय कृष्ण को वहाँ उपस्थित करता है। कृष्ण सोचते हैं—'युधिष्ठिर की आज्ञा तथा अर्जुन की अकृत्रिम मित्रता से मैंने यह अनुचित दौत्यकर्म स्वीकार किया है। इस दुराग्रही तथा अल्पज्ञ दुर्योधन के पास दौत्यकर्म सर्वथा अनुचित है। अर्जुन के बाणरूपी वायु से प्रदीप्त भीम की क्रोधाग्नि से ये कौरव तो मरे हुये ही हैं।' साथ ही साथ वे दुयोधन-कृत समागत राजाओं के स्वागत को देखकर प्रसन्न भी हो रहे हैं। वे सोचते हैं कि दुर्योधन कटुभाषी, गुणद्वेषी, शठ तथा स्वजनों के प्रति निर्दय है अतः वह किसी प्रकार सन्धि नहीं करेगा।

कृष्ण के सभा में प्रवेश करते ही सभी राजा विचलित होकर खड़े हो जाते हैं। दुर्योधन उन्हें दण्ड की स्मृति दिलाता है पर, स्वयं ही कृष्ण-प्रभाव से धर्षित होकर आसन से गिर जाता है। श्रीकृष्ण सभी राजाओं को बैठने की आज्ञा देकर स्वयं भी बैठ जाते हैं। उस समय उन्हें दुर्योधन के हाथ में द्रौपदी केश-कर्षण का चित्र दिखाई पड़ता है। उसे देखते ही वे बोल उठते हैं—'अहा! आश्चर्य है। यह दुर्योधन स्वजनों की अवमानना कर मौर्ख्यवशात् उसमें ही अपना पराक्रम देखता है। संसार में एतादृश क्षुद्र अन्य कौन होगा जो अपना ही दोष परिषद् के सामने प्रस्तुत करे। अब भी तो इस चित्र-फलक को हटाओ।'

कृष्ण के कहने से दुर्योधन वह चित्रपट हटाता है। फिर दुर्योधन केशव से पूछता है—'दूत! धर्म-पुत्र युधिष्ठिर, वायु-पुत्र भीम, इन्द्र-पुत्र मेरा भाई अर्जुन तथा अश्विनीकुमार के पुत्र नकुल-सहदेव भृत्यों के साथ सकुशल तो हैं।

'गान्धारीपुत्र दुर्योधन के उपयुक्त ही यह प्रश्न है। सभी अच्छी तरह हैं। वे तुम्हारे राज्य के विषय में प्रश्न पूछते हुये निवेदन करते हैं कि उन्होंने तेरह वर्षों तक महान् दुःख झेलकर वनवास किया। प्रतिश्रुत समय अब समाप्त हो गया। अब धर्मानुमोदित उनके पिता का दाय उन्हें लौटा दो।' कृष्ण ने कहा।

दुर्योधन ने कहा—'क्या दायाद्य माँगते हैं? मेरे चाचा पाण्डु तो वन में आखेट के समय मुनि के शाप को प्राप्त हुये थे और तभी से स्त्री प्रसङ्ग से विरत रहे। तो फिर दूसरे से उत्पन्न पुत्रों का दायाद्य कैसा।'

कृष्ण ने कहा—'तुम्हारे दादा विचित्रवीर्य अति विषयी होने के कारण क्षयग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त हुये। फिर व्यास ने अम्बिका में तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र को उत्पन्न किया। उनका 'पितृ-दाय' में भाग कहाँ से आया? अथवा इन विवादों से क्या लाभ! आप क्रोध का त्याग कर युधिष्ठिर के कहे अनुसार काम कीजिये।'

दुर्योधन ने कहा—'कृष्ण! राज्य का उपभोग तो बल से होता है। उसकी न तो याचना की जाती है और न दीनों को दिया ही जाता है। यदि उन्हें राज्याकांक्षा हो तो पौरुष दिखावें या शान्ति से मुनियों के आश्रम में प्रवेश करें।'

इसके बाद कृष्ण और दुर्योधन में उत्तर-प्रत्युत्तर बढ़ जाता है। जब कृष्ण बान्धवों के प्रति दुर्योधन से स्नेहालु होने के लिये कहते हैं तो दुर्योधन कहता है कि यह स्नेह आपने कंस के प्रति क्यों नहीं दिखाया। अन्त में दुर्योधन कहता है कि देवात्मजों और मनुष्यों में बन्धुत्व स्थापित नहीं हो सकता। दुर्योधन के उत्तर को सुन कर कृष्ण उसे परुषाक्षरों से भयभीत करने का प्रयास करते हैं। एक ओर तो वे कहते हैं अर्जुन अतुल पराक्रमी है। उन्होंने किरात-वेशधारी शंकर को युद्ध से तृप्त किया, निवातकवचों का वध किया और विराटनगर में भीष्मादि को परास्त किया; दूसरी ओर दुर्योधन के लिये कहते हैं कि तुझे चित्रसेन ने जब बाँध लिया था तो अर्जुन ने ही तुझे छुड़ाया। यदि पाण्डवों को उनका दाय नहीं दोगे तो वे जबर्दस्ती छीन लेंगे।

कृष्ण के परुषाक्षरों से विदग्ध दुर्योधन उन्हें नीच कहकर उनसे बोलना छोड़ देता है। इस पर श्रीकृष्ण वहाँ से चलने को उद्यत होते हैं। उनको जाता देख दुर्योधन वहाँ एकत्रित लोगों से कृष्ण को बाँधने के लिये कहता है। पर, कोई उद्यत नहीं होता। जब कोई तैयार नहीं होता तो वह स्वयं बाँधने के लिये उठ खड़ा होता है। इस पर भगवान् श्रीकृष्ण विश्वरूप प्रकट करते हैं। इस पर भी जब दुर्योधन शान्त नहीं होता तो भगवान् सभी को जृम्भित कर देते हैं। कृष्ण अब क्रुद्ध हो जाते हैं और सुदर्शन चक्र का आवाहन करते हैं। सुदर्शन आता है और भगवान् उससे दुर्योधन-वध की बात कहते हैं। इस पर सुदर्शन चक्र कहता है कि 'प्रभो! आप तो धराभार को उतारने के लिये आये हैं। यदि आज ही इसे मार दीजियेगा तो सभी नृनिम युद्ध से विरत हो जायेंगे और आपका कार्य सिद्ध नहीं होगा।' उसकी बात सुनकर श्रीकृष्ण शान्त हो जाते हैं। इसी समय श्रीकृष्ण की गदा, शार्ङ्ग धनुष आदि अस्त्र भी आते हैं पर, सभी को सुदर्शन चक्र लौटा देता है।

इसके बाद श्रीकृष्ण भी पाण्डव शिविर में जाने के लिये तैयार होते हैं। इसी समय धृतराष्ट्र वहाँ आते हैं और अनुनय विनय कर भगवान् को मनाते हैं। फिर भगवान् की आज्ञा से वे लौट जाते हैं। इसके बाद भरतवाक्य है। और यह नाटक समाप्त हो जाता है।

नाटक की समीक्षा

नाटक का नामकरण बड़ा सटीक हुआ है। भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों का दूत बनकर कौरव-शिविर में गये हैं। और उन्हीं के वचनों की इसमें प्रधानता है। उनकी नययुक्त वाणी कभी तो साम-शब्दों से दुर्योधन को शान्त करती है और कभी परुषाक्षरों से उसे दग्ध करती है। सारा नाटक दूतवेषधारी श्रीकृष्ण के वचनों से अनुप्राणित है। अतः नाटक का 'दूतवाक्य' नाम सार्थक है। इस नाटक का प्रधान रस वीर है। सारा नाटक वीर-रस-भरे वचनों से व्याप्त है। श्रीकृष्ण के अस्त्रों की सहसा उद्भावना तथा विराट रूप प्रदर्शन में अद्भुत का चमत्कार है। प्रधानतः आरभटी वृत्ति की योजना है। विद्वानों का यह कथन तो सत्य है कि यह महाभारतीय कथा का ही एकांकी रूप है पर इसमें भी इनकार नहीं किया जा सकता कि यहाँ मूल कथा में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया गया है। इस नाटक में दुर्योधन बड़े तर्क-युक्त प्रश्नों से श्रीकृष्ण को परास्त करना चाहता है यद्यपि श्रीकृष्ण और भी अधिक तर्काश्रित वाणी से उसे परास्त करते हैं। नाटकीय दृष्टि से यह 'व्यायोग' की कोटि में समाविष्ट किया जा सकता है। व्यायोग की घटना ऐतिहासिक होती है, नायक गर्वीला होता है तथा स्त्री से असम्बद्ध एवं युद्ध आदि होते हैं। ये सभी लक्षण 'दूत वाक्यम्' में घटित होते हैं। प्रो० विन्टरनित्स का विचार है कि यह नाटक किसी बृहत्तर महाभारतीय नाटक का लघुरूप है। पर, इस तर्क के साधक किसी प्रमाण की अनुपलब्धि से इसे प्रामाण्य कोटि में नहीं लिया जा सकता।

राजनीतिक सिद्धान्तों का तो यह नाटक आकर है। 'दायाद्य' के विषय में दुर्योधन की यह उक्ति कितनी सटीक है—

वने पितृव्यो मृगया प्रसङ्गतः कृतापराधो मुनिशापमाप्तवान्।
तदा प्रभृत्येव स दारनिस्पृहः परात्मजानां पितृतां कथं व्रजेत्॥२१॥

अर्थात् वन में मृगया खेलते समय में मेरे चाचा पाण्डु को शाप मिल गया और तभी से वे स्त्री से विरक्त हो गये। फिर दूसरे के पुत्रों के साथ दायाद्य कैसे ?

इसका ठीक उत्तर श्रीकृष्ण इस प्रकार देते हैं—

विचित्रवीर्यो विषयी विपत्तिं क्षयेण प्राप्त पुनरम्बिकायाम् ।
व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एष लभेत राज्यं जनकः कथं ते ॥ २२ ॥

दुर्योधन का निम्न वचन महान् राजनीतिक सिद्धान्त की उद्घोषणा कर रहा है। यह 'वीरभोग्या वसुन्धरा' का प्रतिपादक है। राज्य शासन अशक्तों का काम् नहीं यह तो महान् बलशालियों से सिद्ध होता है।

राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते ।
तल्लोके न तु याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते ॥
काङ्क्षा चेन्नृपतित्वमाप्तुमचिरात् कुर्वन्तु ते साहसं ।
स्वैरं वा प्रविशन्तु शान्तमतिभिर्जुष्टं शमायाश्रमम् ॥ २४ ॥

अर्थात् राज्य तो राजपुत्रों के द्वारा शत्रुओं के जीत कर मिलता है, मागने से नहीं मिलता और न तो मागने वाले को दिया ही जाता है। यदि पाण्डवों को राज्य प्राप्ति की इच्छा हो तो पराक्रम दिखावें अन्यथा शान्ति के लिये आश्रम में चले जायँ।

२—कर्णभार

कर्णभार नाटक म सूत्रधार सर्वप्रथम रङ्गमञ्च पर दिखाई पड़ता है। उसी समय उसे नेपथ्य से शब्द सुनाई पड़ता है कि 'कर्ण से निवेदन कीजिये।' इसके अनन्तर भट आता है जो कर्ण से यह निवेदन करना चाहता है कि अपराजेय पाण्डवों की सेना अर्जुन को आगे कर बढ़ रही है और उनके सैनिक सिंहनाद कर रहे हैं। उनके युद्ध आह्वान को सुनकर नागकेतु दुर्योधन भी युद्ध के लिये प्रस्थान कर चुका है। उसी समय बलशाली कर्ण उसे दिखाई पड़ता है। वह अत्यन्त उद्दात्त तेज से मण्डित है तथा पराक्रम युक्त वचन कह रहा है। किन्तु, उसके मन में उद्विग्नता भी है।

कर्ण अपने सारथि शल्य से अर्जुन के सामने रथ ले चलने को कहता है। फिर वह मन में सोचता है कि 'युद्ध-समय में यह क्लीवता का भाव मेरे मन में कहाँ से आ गया। मेरा पराक्रम तो क्रुद्ध यमराज-जैसा है। भयङ्कर समराङ्गण में दोनों तरफ अस्त्र शस्त्र का प्रहार कर सैनिकों को मै काटता था। कष्ट की बात है कि पहले तो मै कुन्ती से उत्पन्न हुआ पर मेरी बाद में

'राधेय' संज्ञा हो गयी। युधिष्ठिरादि तो मेरे कनीयस् बन्धु ही हैं। चिर-प्रतीक्षित युद्ध का दिन आ गया। पर, मेरे अस्त्र व्यर्थ सिद्ध हो रहे हैं।

इस प्रकार सोचते हुए कर्ण मद्रराज शल्य से अपनी अस्त्र प्राप्ति का वृत्तान्त वर्णित करता है। वह शल्य से कहता है—'पहले मैं जामदग्न्य परशुराम के पास अस्त्र-लाभ की आकांक्षा से गया। क्षत्रियान्तक भगवान् परशुराम दिव्यवर्चस् से देदीप्यमान् थे। उन्हें प्रणाम कर मैं चुपचाप खड़ा हो गया। मुझे खड़ा देख परशुराम जी ने कहा—'तुम कौन हो और किस प्रयोजन से यहाँ आये हो।' मैंने कहा कि सम्पूर्ण अस्त्रों की शिक्षा प्राप्त करने मैं आपके पास आया हूँ। इस पर उन्होंने कहा कि—'मैं केवल ब्राह्मणों को उपदेश करता हूँ क्षत्रियों को नहीं।' तब मैंने कह दिया कि मैं क्षत्रिय नहीं हूँ और उन्होंने उपदेश देना प्रारम्भ किया। कुछ समय बीतने पर गुरुजी के समित्कुशाहरण के लिये जाने पर मैं भी उनके साथ चला गया। गुरुजी परिभ्रमण से श्रान्त हो गये थे और मेरी गोद में शिर रखकर सो गये। दैव दुर्विपाक से वज्रमुख[1] नामक कीड़ा मेरी दोनों जाँघों को कुरेदने लगा। उस असह्य वेदना को मैंने धैर्यपूर्वक इसलिये सह लिया कि गुरुदेव की निद्रा भङ्ग न हो। जाँघों में कीड़े के काटने से रुधिर निकलने लगा और उस रुधिर के स्पर्श से परशुराम जी जाग उठे। जागते ही वे क्रोध से लाल हो गये और मुझे क्षत्रिय समझ कर शाप दे दिये कि 'जा समय पड़ने पर तेरे शस्त्र काम न आयेंगे।' अब उनके अस्त्रों की मैं परीक्षा करूँगा।' कर्ण इस प्रकार सारथि शल्य से अस्त्र-प्राप्ति का वृत्तान्त बताकर अस्त्रों का परीक्षण करता है पर अस्त्र अपना प्रभाव नहीं दिखाते। इसके अतिरिक्त घोड़े भी पुन: पुनः स्खलित होते दिखाई पड़े। हाथी भी दैन्य को सूचित करने लगे।

शल्य इस विपन्नावस्था को देखकर पश्चात्ताप करते हैं। उन्हें कर्ण यह कह कर समझाता है कि 'जीतने पर तो यश मिलेगा और मरने पर स्वर्ग। ये दोनों ही संसार में प्रशंसित हैं।[2] इस प्रकार युद्ध का किसी भी प्रकार वैफल्य

---

१. महाभारत में इस कीड़े का नाम अलर्क है।

२. तुलना कीजिये—हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।। गीता, २.३७

नहीं। कठिन युद्धस्थल में प्रविष्ट होकर यशस्वी युधिष्ठिर को मैं बाँध लूँगा और अर्जुन को शर वर्षा से गिरा दूगा।' ऐसा कह कर कर्ण शल्य के साथ रथारूढ होता है और शल्य युद्धभूमि में रथ को प्रेरित करते हैं।

इसी समय नेपथ्य से शब्द सुनायी पडता है—'ऐ कर्ण! मैं बहुत बडी भिक्षा माँग रहा हूँ।' इस शब्द को सुनकर कर्ण चौक कर कहता है कि 'यह कोई सामान्य ब्राह्मण नहीं। इसके शब्द को सुनकर मेरे चलते हुए घोडे भी कान ऊँचा कर खडे हो गये।' ऐसा कहकर वह ब्राह्मण को बुलाता है। उसके समीप आने पर वह प्रणाम कर कहता है कि 'आपके दर्शन से आज मैं कृतकृत्य हो गया।' उसके प्रणाम को सुनकर विप्रवेशधारी इन्द्र ठिठक जाते हैं कि इसे कौन सा आशीर्वाद दिया जाय। यदि दीर्घायुष् का आशीर्वचन कहता हूँ दीर्घ आयुवाला हो जायेगा और यदि कुछ नहीं कहता हूँ तो मुझे मूर्ख समझेगा।' फिर सोचकर कहते हैं कि 'हिमालय और सागर के समान तेरा यश स्थिर हो।' यह सुनकर कर्ण कहता है कि 'भगवन् क्या आप दीर्घायुष् होने का वरदान नहीं देते अथवा यही उपयुक्त वरदान है क्योंकि धर्म तो साध्य है, लक्ष्मी सर्प जिह्वा के समान चञ्चल है, अत: प्रजापालक नरेश मृत्यु के अनन्तर यश से ही जीवित रहता है।' अब आप अपना प्रयोजन बताइये।'

इन्द्र ने कहा—'मैं बडी भिक्षा माँग रहा हूँ।'

कर्ण ने उत्तर दिया—'आपको मैं बडी भिक्षा दे रहा हूँ। यदि आपको अभीष्ट हो तो स्वर्णमण्डित शृङ्गवाली एक सहस्र गायें आपको देता हूँ जो स्वस्थ और जवान हैं। दुग्धधार का वे क्षरण करती हैं तथा तृस बछडों से सयुक्त हैं।'

इन्द्र ने कहा—'कर्ण! सहस्र गायों से तो किञ्चित् काल तक दूध पिऊँगा। मैं इन्हें नहीं चाहता।'

कर्ण ने कहा—ब्राह्मणदेव! तो फिर मै आपको काम्बोजज्जातीय सहस्रों अश्वों को देता हूँ। ये अश्व सूर्य के घोडों के समान, राजलक्ष्मी के साधन तथा समस्त राजाओं में मान्य है।'

ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र के इनकार करने पर कर्ण ने पुनः कहा—'यदि यह आपको पसन्द नहीं तो मैं यह हाथियों का झुण्ड आपको देता हूँ।'

किन्तु इन्द्र ने इसे भी इनकार कर दिया। तदनन्तर कर्ण ने अमित स्वर्ण, सम्पूर्ण पृथिवी, अग्निष्टोम यज्ञ का फल और अन्ततोगत्वा अपना शिर दे देने को कहा, पर इन्द्र ने सभी को इनकार कर दिया। उन्हें कुछ स्वीकार करता न देख कर्ण ने कहा—'ब्राह्मणदेव! यह कवच मेरे जन्म के साथ ही रक्षा के लिये उत्पन्न हुआ, यह सहस्रों देव-दानवों से भी अभेद्य है। यदि आपको अभीष्ट हो तो कुण्डलों के साथ इन्हें ही आपको दे दूँ।'

कर्ण की बात सुनकर इन्द्र प्रसन्न हो गये और चट कह दिया, 'दे दो।' जब कर्ण देने को उद्यत हुआ तो शल्य रोकने लगे। इस पर कर्ण ने कहा—'शल्य! समय के साथ सीखी हुई विद्यायें भूल जाती हैं, गहरी जड़वाले भी वृक्ष गिर जाते हैं तथा समयानुसार जलाशय का जल भी सूख जाता है किन्तु दान की हुई वस्तु तथा आहुति दिया हुआ कभी नष्ट नहीं होता। इसलिये हे ब्राह्मण! इसे लो।' ऐसा कह कर वह शरीर से काट कर कवच-कुण्डल ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र को दे देता है। इन्द्र उसे लेकर चले जाते हैं।

इन्द्र के चले जाने पर शल्य कहते हैं कि 'हे कर्ण! इन्द्र ने तुम्हें ठग लिया।' इस पर कर्ण कहता है वस्तुतः वह नहीं अपितु इन्द्र ही ठगे गये। क्योंकि अनेक यज्ञों से तृप्त इन्द्र आज मेरे द्वारा उपकृत हुये। इसके बाद ब्राह्मणवेश-धारण कर एक देवदूत आता है। वह कहता है कि कवच-कुण्डल लेने पर इन्द्र को पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने यह विमला नामक अमोघ शक्ति दी है। इसके द्वारा आप पाण्डवों म से एक जिस किसी को चाहे मार सकते हैं। इस पर कर्ण कहता है कि वह दिये हुये दान का प्रतिग्रहण नहीं करता। देवदूत कहता है कि इसे आप ब्राह्मण का वचन समझकर ले लीजिये। ब्राह्मणाज्ञा समझकर कर्ण उसे ले लेता है और देवदूत कहता है कि जब इसे आप स्मरण कीजियेगा आपके पास चली आयेगी। फिर देवदूत चला जाता है।

कर्ण और शल्य रथारूढ़ होते हैं। उन्हें प्रलयकालीन ध्वनि के समान गम्भीर घोषकारी कृष्ण की शंखध्वनि सुनाई पड़ती है और दोनों अर्जुन के रथ की ओर प्रस्थान करते हैं। भरतवाक्यके साथ यह नाटक समाप्त होता है।

नाटक का आधार—इस नाटक का आधार महाभारत की कथा है।

महाभारत (आदिपर्व, ६७।१४४–४७) में इन्द्र को कवच कुण्डल काट कर देने का वृत्तान्त है जिससे इसकी सज्ञा वैकर्तन हुई। इसीका उपबृंहित रूप आगे (वनपर्व ३००–३०२, १०) भी मिलता है। शान्तिपर्व (अध्याय ३) में परशुरामजी से शाप प्राप्ति का वृत्तान्त वर्णित है। इन्हीं कथाओं के आधार पर इस नाटक की रूप रेखा निर्मित हुई है।

महाभारत से अन्तर—महाभारत में विभिन्न स्थलों पर बिखरी कथाओं को इस नाटक में सकलित किया गया है। पर, इस सकलन में मूल आधार से पर्याप्त पार्थक्य आ गया है। इन पार्थक्यों का निदर्शन इस प्रकार है :—

महाभारत में इन्द्र द्वारा भिक्षुक रूप में कवच कुण्डल की याचना वन पर्व में ही प्रदर्शित है जब कि पाण्डव वनवास कर रहे थे। वहाँ कर्ण को सूर्य स्वप्न में समझाते हैं कि इन्द्र तुमसे कवच कुण्डल मागेंगे उन्हें न देना। इसके अलावे, वहाँ कर्ण भी इसके लिये निश्चय कर बैठा है कि शक्ति पाने के बाद ही वह अपना कवच-कुण्डल देगा। कर्ण वहाँ शक्ति भी स्वय ही माँगता है। पर, इस नाटक में स्थिति भिन्न है। प्रथमतः तो यहाँ इस घटना की सघटना ही युद्धभूमि में की गई है। सम्भवतः इसका आशय यह रहा हो कि युद्ध में कवच कुण्डल की महती आवश्यकता होती है और इस अवसर पर कोई भी व्यक्ति सब कुछ दे सकता है पर कवच-कुण्डल नहीं। यह कवच-कुण्डल भी साधारण नहीं अपितु सहजात है। दूसरा अन्तर यह है कि जहाँ महाभारत में कर्ण शक्ति की स्वय याचना करता है वहाँ इस नाटक में वह कहने पर भी नहीं मागना चाहता। यह इस नाटक की महान् सफलता और चरित्र का चरम निष्कर्ष है। आदर्श दानवीर कर्ण के लिये इस प्रकार का होना ही चाहिये। इस प्रकार नाटककार ने कर्ण के चरित्र को उच्च-भूमि पर खड़ा कर दिया है।

महाभारत के शल्य तथा इस नाटक के शल्य में भी पर्याप्त अन्तर है। दोनों स्थानों पर शल्य_कर्ण के सारथि हैं। पर, जहाँ महाभारत में वे कटु-भाषी, उत्साह विनाशी तथा वाचाट हैं वहाँ इस नाटक में सयमी, उदारमना तथा स्वामी (रथी) के हितेच्छु हैं। कर्ण जब कवच देता है तो वे उसे मना करते हैं। इस प्रकार शल्य का रूप यहाँ अधिक मानवीय गुणों से युक्त है।

वे बार-बार कटूक्तियाँ सुनाकर कर्ण को खिन्न नहीं करते और न तो उसके उत्साह को ही भङ्ग करते हैं। ये सभी विशेषतायें नाटककार की अपनी हैं और इस रूप में यह नाटक अधिक निखरा है।

नाटक का नाम—यह प्रश्न भी विचारणीय है कि इस नाटक का नाम कर्णभार क्यों पड़ा? जहाँ तक इस नाम के नाटक में दर्शन का प्रश्न है यह नाटक में कहीं प्रयुक्त नहीं हुआ है और न तो प्रत्यक्षतः इसका कोई अर्थ ही घटित होता दिखायी पड़ता है। कर्णभार शीर्षक की व्याख्या कई प्रकार से की गई है। प्रो० ए० डी० पुसालकर की सम्मति में कानों के भारभूत कुण्डलों का दानकर यहाँ कर्ण की अद्भुत दानशीलता वर्णित की गई है। अतः कानों के भारभूत कुण्डलों के दान को केन्द्र मानकर इस नाटक की रचना करने से इस नाटक का नाम कर्णभार है। इस प्रसङ्ग में उन्होंने यह भी कहा है कि जब कर्ण ने कुण्डलों को वाचिक रूप से दान कर दिया उसके बाद वे भारभूत हो गये। वाचिक दान और क्रियात्मक दान के मध्य में उनके भारभूत होने से इस नाटक का नाम कर्णभार हुआ।[1] पर यह व्यवस्था पूर्ण नहीं। वस्तुतः प्रधान देय वस्तु कुण्डल न होकर कवच ही था और कवच का इस शीर्षक की व्याख्या में कोई समावेश नहीं। प्रोफेसर देवधर ने इसीलिये इस व्याख्या को अधूरी करार दिया है। डाक्टर विन्तरनित्स ने कर्णभार की व्याख्या कर्ण के कठिन कार्य से की है। डाक्टर मैक्स लिण्डेन्यू भार का अर्थ कवच लेते हैं।[2]

डाक्टर भट्ट की धारणा है कि कर्ण की चिन्ता ही भारस्वरूप हो गई है। इसी बात को ध्यान में रखकर इस नाटक का नाम कर्णभार रखा गया। भार का अर्थ उत्तरदायित्व भी लगाया जाता है। चूंकि इसमें कौरव-सेना की रक्षा का कर्ण पर भार या उत्तरदायित्व है अतः इस अर्थ में भी इस शीर्षक को घटाने का प्रयास किया गया है। कुछ लोगों की राय में कर्ण द्वारा प्राप्त युद्ध कौशल उसके लिये भारभूत हो गया था अतः इस नाटक का नाम कर्णभार

1. द्र०, ए. डी. पुसालकर 'भास-ए स्टडी' पृ० १८८
2. द्र० कर्णभार की प्रो० देवधर कृत भूमिका पृ० ३

पड़ा। युद्ध-कौशल की व्यर्थता के तीन कारण थे—१. परशुराम का शाप, २. कुन्ती को अर्जुन के अतिरिक्त अन्य पाण्डवों को न मारने का वरदान और ३ इन्द्र को कवच-कुण्डल का दान।[1] चाहे जो भी बात स्वीकार की जाय इतना निश्चयेन कहा जा सकता है कि इस नाटक का शीर्षक बहुत स्पष्ट नहीं है।

चरित्र चित्रण—इस नाटक में दो पात्रों का चरित्र प्रमुखता प्राप्त कर सका है। एक है इस नाटक के नायक कर्ण और दूसरे है छद्म ब्राह्मणवेशधारी देवराज इन्द्र। कर्ण के चरित्र में कई प्रकार के तत्वों का सम्मिश्रण दिखायी पडता है। एक ओर तो वह महान् शूर-वीर पराक्रमी है तो दूसरी ओर मानव-सुलभ कमजोरियाँ भी उसे घेरे हुये हैं। प्रारम्भ में ही वह चिन्तातुर दिखायी पडता है। घोडों के स्खलनादि को देख कर उसका मन आतंकित दिखायी पडता है। इसी प्रसङ्ग में वह शल्य से परशुराम के यहाँ से शस्त्र प्राप्ति तथा शाप का वृत्तान्त कह सुनाता है। शस्त्रों के वैफल्य की उसे आशङ्का होती है और परीक्षण द्वारा इस आशङ्का की पुष्टि हो जाती है। बीच बीच में उसमें उत्साह का भी सञ्चार होता रहता है और वह रथ प्रेरित करने को कहता है।

कर्ण के चरित्र की सबसे बडी विशेषता जो यहाँ निखरी है वह है उसकी *अपूर्व ब्राह्मण निष्ठा तथा महती दानशीलता।* वह ब्राह्मणों के लिये सर्वस्व दान करने के लिये कृतोद्यम दिखायी पडता है और जब इन्द्र गौ, सुवर्ण आदि लेना अस्वीकार करते हैं तो अपना सिर देने की बात कहता है। उसका विश्वास है कि मरने पर भी यश ही स्थिर रहता है—

हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते।—१७

जब शल्य उसे कवच कुण्डल देने से मना करते हैं तो वह कहता है कि ससार में सब कुछ तो विनाशी है पर यश और दान ही स्थिर रहने वाले हैं—

हुत च दत्त च तथैव तिष्ठति।—२२

कर्ण के चरित्रकी दूसरी बडी विशेषता है कि वह दान से किसी प्रतिफल की आशा नहीं रखता। इसीलिये जब देवदूत इन्द्रशक्ति देता है तो उसे वह

---

१. द्र० ए० एस पी० अय्यर, 'भास', पृ० ६०

लेना अस्वीकार कर देता है। वह यह नहीं चाहता कि उसे दिये हुये दान के बदले कोई कुछ दे। किंतु जब ब्राह्मणवेशधारी देवदूत ब्राह्मण का वचन मानकर उसे लेने को कहता है तो कर्ण उसे स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार कर्ण महान् उदारमना, यशस्वी और दानी के रूप में चित्रित किया गया है।

इन्द्र के चरित्र में कोई विशेषता लक्षित नहीं होती। हां, उनका स्वार्थी रूप अवश्य प्रस्फुटित होता है। वे अपने स्वार्थ के प्रति एकनिष्ठ हैं। कर्ण के द्वारा बहुत-सी वस्तुओं का नाम सुनकर भी वे ध्यान नहीं देते और ज्यों ही कवच-कुण्डल का नाम सुनते हैं, उसे स्वीकार कर लेते हैं। किन्तु, इसके बाद उनका उदात्त चरित्र सामने आता है और अपने इस कृत्य का वे परिमार्जन करना चाहते हैं। इसीलिये वे देवदूत से दिव्य अमोघ शक्ति कर्ण के लिए भेजते हैं। इन्द्र के चरित्र की विशेषता उनका प्राकृत बोलना भी है। उत्तम-पात्र नाटकों में प्राकृत नहीं बोलते।

शल्य का चरित्र कोई विशेष उभार पर नहीं आया है। जितना वर्णित है उस रूप में वे सयमी, नम्र तथा कर्ण के हितैषी प्रतीत होते हैं।

प्राप्ते निदाघसमये घनराशिरुद्धः सूर्यः स्वभावरुचिमानिव भाति कर्णः॥४॥

परशुरामजी का वर्णन साक्षात् उनके वेश को सामने रख देता है—

विद्युल्लताकपिलतुङ्गजटाकलाप-
भुग्रप्रभावलयिनं परशुं दधानम्।
क्षत्रान्तकं मुनिवरं भृगुवंशकेतुं
गत्वा प्रणम्य निकटे निभृतः स्थितोऽस्मि ॥९॥

ससार की असारता तथा धर्म एव दान की महत्ता निम्न पद्यों में स्पष्ट की गई है। नाटककार कर्ण के द्वारा गम्भीर तथ्य का उद्घाटन करा रहा है—

धर्मो हि यत्नैः पुरुषेण साध्यो भुजङ्गजिह्वाचपला नृपश्रियः।
तस्मात्प्रजापालनमात्रबुद्ध्या हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥१७॥

× × ×

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥२२॥

निम्न श्लोक युद्ध की सार्थकता को सूचित करता है—

हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ॥१३॥

इस पद्य पर श्रीमद्भगवद्गीता के निम्न श्लोक की छाया स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥—गीता २।३७

३—दूतघटोत्कच

इस नाटक का कथानक अभिमन्यु के मरण के उपरान्त की घटनाओं से सम्बन्ध रखता है। संशप्तकगणों के द्वारा अर्जुन के दूर हटा लिये जाने पर कौरवों ने छल कपट का आश्रय ले एकाकी बालक अभिमन्यु को निहत्था कर मार डाला। अभिमन्यु के मारे जाने का वृत्तान्त सुनाने के लिये भट धृतराष्ट्र के

पास जाता है और कहता है कि अपने पिता अर्जुन के समान पराक्रम प्रदर्शित करने वाले बालक अभिमन्यु को कौरव-वीरों ने मार डाला। इसे सुनकर धृतराष्ट्र स्तब्ध हो जाते हैं और कहते हैं कि किसने यह अमङ्गलकारी सन्देश सुनाया। वहीं बैठी महारानी गान्धारी कहती हैं कि—'महाराज! कुलनाश का समय उपस्थित हो गया।' वे दोनों परस्पर शोकाकुल होकर कह रहे हैं कि कुल के नष्ट होने का समय अब आ गया। वहीं उनकी पुत्री दुश्शला भी बैठी हुई है जो कहती है कि जिसने अभिमन्यु-पत्नी उत्तरा को विधवा बनाया उसने अपनी स्त्री को भी वैधव्य दे दिया अर्थात् वह भी शीघ्र ही सुरपुर का पथिक होगा। फिर धृतराष्ट्र दूत से पूछते हैं कि यह सवाद किसने सुनाया। भट उत्तर देता है कि 'मैं हूँ जयत्रात।'

धृतराष्ट्र ने पूछा—'जयत्रात! किसने अभिमन्यु को मारा। जीवन किसे अप्रिय है और किसने पाँचों पाण्डवरूपी अग्नि का अपने को ईंधन बनाया।'

जयत्रात ने कहा—'महाराज! बहुत से राजाओं ने मिलकर अभिमन्यु को मारा। पर, इसके निमित्त जयद्रथ थे।'

धृतराष्ट्र ने कहा—'यदि जयद्रथ निमित्त थे तो वे मारे गये।'

धृतराष्ट्र की बात को सुनकर समीप बैठी दुश्शला रोने लगती है। धृतराष्ट्र जब पूछते हैं कि 'कौन रो रहा है' तो उन्हें दुश्शला का पता चलता है। लोग समझाते हैं पर दुश्शला कहती है कि कृष्ण से वैर कर कौन व्यक्ति जी सकता है। उसकी बात सुनकर गान्धारी उसे समझाती है पर धृतराष्ट्र कहते हैं कि कृष्ण के संरक्षण में पले, बलराम को प्रसन्नता देनेवाले तथा देवतुल्य पराक्रमशाली पाण्डवों के प्रीति पात्र अभिमन्यु को मार कर कौन जी सकता है।

तदनन्तर जयत्रात धृतराष्ट्र को बताता है कि जब संशप्तकों के साथ अर्जुन दूर चले गये तो कौरवों ने मिलकर अभिमन्यु को मारा। युधिष्ठिर आदि पाण्डव मृतक को अर्जुन को दिखाने निमित्त ही रोक रखे हैं और उसका सत्कार नहीं करते। अब धृतराष्ट्र को कौरवों के विनाश का पक्का भरोसा हो जाता है। इसी बीच दु शासन और शकुनि के साथ वहाँ दुर्योधन प्रवेश करता है। दुर्योधन दु शासन से कहता है कि 'अभिमन्यु के वध से वैर बद्धमूल हो गया, हम लोगों को जय मिल गयी, शत्रु निरस्त कर दिये गये, कृष्ण का गर्व

गया और मुझे अभ्युदय मिल गया।' दुःशासन कहता है कि 'हम लोगों का भीष्मपातजन्य दुःख कम हो गया और पाण्डवों का दुःख बढ़ गया।' शकुनि भी उन्हीं की हाँ में हाँ मिलाता है।

फिर दुर्योधन कहता है कि चलकर पिता धृतराष्ट्र को अभिवादन किया जाय। उसके इस प्रस्ताव का शकुनि यह कह कर विरोध करता है कि 'धृतराष्ट्र को यह कुल विग्रह पसन्द नहीं। पाण्डव उन्हें प्रिय हैं अतः व हमारी गर्हणा करते हैं। अतः जब युद्ध में जय प्राप्त कर लेंगे तो चल कर उन्हें अभिवादन करेंगे।' पर दुर्योधन कहता है कि चाहे जो भी हो, पिता जी का अभिवादन करना चाहिये। व जाकर क्रमशः अपना नाम ले-लेकर प्रणाम करते हैं। उनके प्रणाम करने पर धृतराष्ट्र कोई आशीर्वाद नहीं देते। इस पर व पूछते हैं—'आप आशीर्वाद क्यों नहीं दे रहे हैं?'

धृतराष्ट्र ने कहा—'कृष्ण अर्जुन के प्रिय अभिमन्यु को मार कर आप लोग जीवन से पराङ्मुख हो गये हैं अतः अब आशीर्वाद क्या दूँ। सौ पुत्रों के बीच एक ही प्रिय पुत्री दुःशला हुई थी। वह अब तुम लोगों की कृपा से वैधव्य को प्राप्त हो गयी।'

दुर्योधन ने कहा—'पिता जी। अकेले जयद्रथ ने नहीं बहुतों ने रोक कर अभिमन्यु को मारा।' इस पर धृतराष्ट्र उन सबों की भर्त्सना करते हुये कहते हैं कि अकेले बालक को मिलकर मारते समय तुम लोगों के हाथ नहीं गिर गये। जिसका जवाब दुर्योधन यह कह कर देता है कि यदि छल से भीष्म को पाण्डवों ने गिराया तो उनका हाथ नहीं गिरा तो फिर हमारी आप भर्त्सना क्यों कर रहे हैं? धृतराष्ट्र कहते हैं कि यदि अकेले बालक अभिमन्यु ने इतना पराक्रम दिखाया तो पुनः मृत्यु से शोकार्त अर्जुन कितना पराक्रम दिखायेंगे?' इस पर दुर्योधन अवज्ञा से कहता है कि 'अर्जुन का पराक्रम कैसा है?'

धृतराष्ट्र ने कहा—'यदि अर्जुन के पराक्रम को नहीं जानते तो इन्द्र से जा कर पूछो जो निवात कवच दानवों के जीवनरूपी उपहार से अर्चित हुआ, शङ्कर से पूछो जो किरातरूप में अर्जुन के अस्त्रों द्वारा परितुष्ट किये गये, अग्नि से पूछो जो खाण्डव वन में सर्पों की आहुति से तृप्त हुये, उस चित्राङ्गद नामक यक्ष से पूछो जिसके द्वारा तुम निर्जित हुये और अर्जुन ने तुम्हारी रक्षा की।'

धृतराष्ट्र की बात सुन कर दुर्योधन कहता है कि कर्ण भी इससे कम प्रभावशाली और वीर्यवान् नहीं। धृतराष्ट्र कहते हैं कि इन्द्र ने उसका कवच ले लिया है वह अर्धरथी है, प्रमादी है, झूठ बोल कर अस्त्र सीखने से उसके अस्त्र विफल हो गये हैं, वह दयालु है अतः वह अर्जुन की समानता क्या कर सकता है?

इसी बीच शकुनि कहता है—'आप हमारी सदैव अवहेलना किया करते हैं।'

धृतराष्ट्र ने कहा—'द्यूत क्रीडा में दक्ष तूने जिस वैराग्नि का वपन किया है वह शिशु की आहुति देने पर भी शान्त नहीं होगी।'

इस वार्तालाप के समय ही सहसा घोर पटहादि के ताडन का शब्द सुनायी पड़ता है। दुर्योधन जयरात को उसका पता लगाने को भेजता है। वह आकर कहता है कि कृष्ण से बारम्बार प्रेरित होकर अर्जुन ने प्रतिज्ञा की है कि जिस कौरव पक्षीय ने मेरे पुत्र का वध किया है और जिसे देख कर जो राजा परितुष्ट हुये हैं उनका कल सूर्यास्त से पूर्व ही वध कर डालूँगा। और यदि ऐसा न कर सका तो चितारोहण कर प्राण दे दूँगा।

यह सुनकर दुर्योधन आदि प्रसन्न होते हैं कि कल अब अर्जुन चितारूढ हो जायेंगे क्योंकि द्रोण की मंत्रणा से ऐसा व्यूह रचा जायेगा कि अर्जुन जयद्रथ का पता न पा सकेंगे और चितारूढ हो जायगे। इस प्रकार अब निष्कण्टक राज्य प्राप्त हो जायेगा। उनकी बात सुन कर धृतराष्ट्र कहते हैं कि चाहे तुम लोग पृथ्वी में समा जाओ या आकाश में उड जाओ पर कृष्ण द्वारा निर्दिष्ट अर्जुन के बाण तुम लोगों को ढूँढ लेंगे।

इसी अवसर पर घटोत्कच वहाँ प्रवेश करता है। वह सभाभवन में प्रवेश करते ही कहता है—'श्रीकृष्ण की आज्ञा से मैं हिडिम्बा पुत्र घटोत्कच अपने हर्षों से शत्रु बन बैठे गुरुजनों को देखने आया हूँ।' उसकी बात सुन कर दुर्योधन उसे अपने पास बुला कर सन्देश पूछता है, पास जाकर घटोत्कच धृतराष्ट्र को प्रणाम करता है। धृतराष्ट्र उसके साथ समवेदना प्रकट करते हैं। घटोत्कच भगवान् श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाने को कहता है, जिसे सुनने के लिये धृतराष्ट्र आसन से उठ जाते हैं फिर घटोत्कच के कहने से बैठते हैं।

घटोत्कच ने कहा—'दादा जी ! भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि एक पुत्र अभिमन्यु के मरने से अर्जुन को जो महत् सन्ताप हुआ तो सौ पुत्रों के मारे जाने से आपको कितना कष्ट होगा अतः आप सम्पूर्ण सेना युद्ध से विरत कर दें।'

यह सुन कर धृतराष्ट्र के अतिरिक्त अन्य कौरव हँस पड़ते हैं। दुर्योधन कहता है कि कृष्ण को देवताओं के साथ मन्त्रणा करते-करते गर्व हो गया है इसीलिये वे एक अर्जुन से सभी क्षत्रियों का विनाश समझ रहे हैं। उसकी इस बात को सुनकर घटोत्कच कहता है कि आप लोगों को भी श्रीकृष्ण ने सन्देश दिया है उसे सुन लीजिये। इस पर दुश्शासन कहता है कि जिस राजा का शासन पृथ्वी के अन्य राजा मानते हैं उसी के सामने दूसरे का सन्देश सुनाने का तुम प्रयत्न करते हो।' इस पर घटोत्कच *श्रीकृष्ण का पराक्रम वर्णित करता* है। वह कहता है कि अब क्षत्रियों के विनाश से पृथ्वी हल्की हो जायेगी। वह शकुनि की भर्त्सना करता है तथा दुर्योधन से कहता है कि 'आप लोग तो राक्षसों से भी क्रूरतर हैं।' इस पर दुर्योधन से उसका विवाद बढ़ जाता है और धृतराष्ट्र के शान्त करने पर शमित होता है। चलते समय वह भगवान् श्रीकृष्ण का अन्तिम सन्देश इस प्रकार सुनाता है—

'धर्म का आचरण करो, स्वजनों की उपेक्षा न कर, जो कुछ तुम्हारे मन में अभीष्ट हो सभी इस पृथ्वी पर कर डालो, क्योंकि अर्जुनरूपधारी यमराज तुम्हारे पास सूर्य की किरणों के साथ अनुकूल उपदेश की नाईं आयगे।'

नाटक का नामकरण—इस नाटक का नामकरण हिडिम्बा-पुत्र घटोत्कच के दौत्यकर्म से सम्बद्ध है। घटोत्कच श्रीकृष्ण का दूत बन कर जाता है और कौरव सभा में सन्देश देता है। वस्तुतः इस नाटक में घटोत्कच का प्रवेश आधे नाटक के समाप्त हो जाने पर होता है। घटोत्कच का दौत्य ही इस नाटक में सबसे प्रधान वस्तु है और वही प्रदर्शित करना नाटककार को अभीष्ट भी है। अत नाटक का नामकरण दूतघटोत्कच किया गया है।

आधार—इस नाटक से सम्बद्ध कोई कथानक महाभारत मे उपलब्ध नहीं होता। वस्तुत: यह नाटककार की कल्पना पर आश्रित रूपक है। दूत घटोत्कच के दौत्य का महाभारत में निर्देश नहीं है।

चरित्र-चित्रण—इस नाटक का प्रधान पात्र घटोत्कच है। घटोत्कच में वीररस कूट-कूट कर भरा है। कभी भी वह अवमानना सहन करने के लिये प्रस्तुत नहीं। जब दुर्योधनादि पाण्डवों की तिरस्कृति करते हैं तो वह मुष्टि बाँध कर उनसे युद्ध के लिये प्रस्तुत हो जाता है। वीरता के साथ ही साथ घटोत्कच में शालीनता तथा शिष्टता भी समभावेन दिखायी पड़ती है। धृतराष्ट्र को वह नम्रता के साथ प्रणाम करता है। मर्यादा का भी उसे सदैव ध्यान है। जब वह धृतराष्ट्र को प्रणाम करने लगता है तो सहसा उसे याद आ जाता है और पहले युधिष्ठिरादि पाण्डवों का प्रणाम निवेदन करने के बाद अपना प्रणाम कहता है। वाक्पटुता भी घटोत्कच में पर्याप्तरूपेण दिखायी पड़ती है। जब दुर्योधन कहता है कि तुम्हीं राक्षस नहीं हम लोग भी राक्षस की नाईं व्यवहार कर सकते हैं तो घटोत्कच कहता है कि तुम लोग तो राक्षसों से भी निकृष्टतर हो; जैसा व्यवहार तुम लोगों ने किया है वैसा तो राक्षस भी नहीं करते। संक्षेप में यहाँ घटोत्कच का चरित्र बहुत ही उन्नत रूप में प्रदर्शित किया गया है। बहुत अंशों में उसके क्रूर राक्षसी स्वभाव का परिहार कर दिया गया है।

दुर्योधन, शकुनि तथा दुःशासन का चरित्र बहुत अंशों में समानकोटिक है—केवल मात्रा का अन्तर है। ये सभी अत्यन्त अभिमानी तथा क्रूर प्रतीत हो रहे हैं। निहत्थे बालक अभिमन्यु को मारकर ये प्रसन्न हो रहे हैं। इनके विपरीत धृतराष्ट्र गृहकलह से अत्यन्त दुःखी हैं। अभिमन्यु का मारा जाना उन्हें कथमपि अभीष्ट नहीं। इसीलिये वे कौरवों की बारम्बार भर्त्सना तथा पाण्डवों की प्रशंसा करते हैं। घटोत्कच भी जब कभी उत्तेजित होता है वे ही शान्त करते हैं। गान्धारी तथा उनकी पुत्री दुःशला का चरित्र कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता।

समीक्षण—नाटक वीर तथा करुण रस का सम्मिलन है। एक ओर अभिमन्यु की मृत्यु से करुण का वातावरण प्रस्तुत है तो दूसरी ओर घटोत्कच तथा दुर्योधनादि के विवाद में वीररस अपना अस्तित्व जताता है। डा० गणपति शास्त्री के अनुसार यह नाटक न सुखान्त है न दुखान्त।

यहाँ यह प्रश्न भी विचारणीय है कि यह नाटक रूपकों की किस श्रेणी

में आता है। डा० ए० बी० कीथ का अभिमत है कि यह नाटक व्यायोग है। इसके विपरीत पुसालकर महाशय इसे उत्सृष्टिकाङ्क मानते हैं। कीथ ने अपने समर्थन में अधिकांश अश मे युद्ध की योजना और तत्सम्बद्ध वार्ता को माना है। यह सुतरा सत्य है कि व्यायोग के चिह्न कुछ अशों में इस नाटक में घटित होते हैं। इस के विपरीत उत्सृष्टिकाङ्क के कुछ लक्षण भी इस नाटक में स्पष्ट दिखाई पडते हैं। उत्सृष्टिकाक का लक्षण है—'बुद्धि-प्रपचित प्रख्यात वृत्त, करुण रस, वाग्युद्ध तथा जय-पराजय, स्त्रियों से घिरा रहना' इत्यादि ये सभी बातें सइ नाटक मे यथावत् हैं। अतः यह उत्सृष्टिकाङ्क के लक्षणों को भी बहुत अशों में पूरा करता है। ऐसी स्थिति में, इसे किसी एक कोटि में रखना कठिन है।

डा० विन्तरनित्स ने इस नाटक के अतिम श्लोक के प्रति जो कि श्रीकृष्ण के सन्देश के रूप में है आशका प्रकट की है। उनका विचार है कि यह श्लोक सन्दर्भ से बाहर प्रतीत होता है। डा० पुसालकर भी इससे सहमति प्रकट करते प्रतीत होते हैं। चाहे जो भी हो श्लोक अपने स्थान पर नितान्त उचित है।

यह नाटक वास्तविकता के निकट प्रतीत होता है। मानव-हृदय की आशाकांक्षाओं एव कमजोरियों के चित्रण मे नाटककार अत्यन्त सफल है। जहाँ धृतराष्ट्र कौरवों की भर्त्सना करते हुये कहते हैं कि एकाकी बालक पर प्रहार करते हुये तुम लोगों के हाथ क्यों नही गिर गये? वहाँ दुर्योधन तुरत सटीक उत्तर देता है—'यदि वृद्ध भीष्म को छल से मारकर उनके हाथ नहीं गिरे तो हमारी भुजायें कैसे गिरेंगी?' उत्तर प्रत्युत्तर बडे मार्मिक हुये हैं। अर्जुन का पराक्रम वर्णित करते हुये धृतराष्ट्र का यह कथन नितान्त अनूठा है—

> शक्र पृच्छ पुरा निवातकवचप्राणापहारार्चितं
>
> पृच्छास्त्रै परितोषित बहुविधैः कैरातरूपं हरम्।
>
> पृच्छाग्निं भुजगाहुतिप्रणयिन यस्तर्पित खाण्डवे
>
> विद्यारक्षितमद्य येन च जितस्त्व पृच्छ चित्राङ्गदम् ॥२२॥

श्रीकृष्ण का सन्देश भी अत्यन्त उपयुक्त है। एक ओर वह शान्ति तथा नम्रता का प्रतीक है तो दूसरी ओर वीरता, पौरुष तथा स्वाभिमान से सयुक्त है—

धर्मं समाचर कुरु स्वजनव्यपेक्षां
यन्काङ्क्षितं मनसि सर्वमिहानुतिष्ठ।
ज्ञात्योपदेश इव पाण्डवरूपधारी
सूर्यांशुभिः सममुपैष्यति वः कृतान्तः ॥ ५२ ॥

इस नाटक में भरतवाक्य का अभाव है अतः कुछ लोग इसे अपूर्ण मानते हैं। सम्भव है आगे इसमें कुछ अंश रहा हो। वैसे यह नाटक अपने तात्पर्य में पूर्ण है।

४—मध्यम व्यायोग

कुरुजाङ्गल प्रदेश के यूपग्राम का निवासी माठरगोत्रीय अध्वर्यु केशवदास अपने मातुल यज्ञबन्धु से, जो उद्यामक ग्राम का निवासी तथा कौशिक गोत्री है, मिलने जा रहा है। यज्ञबन्धु के यहाँ पुत्र का उपनयन संस्कार होने वाला है उसी में वह सम्मिलित होने जा रहा है। उसके साथ उसके तीन पुत्र तथा उसकी स्त्री भी है। मार्ग में उसे वही जङ्गल पार करना पड़ता है जिसमें दुर्योधन से द्यूत में पराजित पाण्डवगण निवास कर रहे हैं। उनको इस जंगल में एक भयंकर राक्षस पीछा कर रहा है। उस राक्षस का केश-कलाप मध्याह्नकालिक सूर्यकिरणों की नाईं बिखरा हुआ है, आँखें पीली हैं तथा सूर्य-चन्द्र की भाँति चमकीली हैं, वक्षःस्थल विस्तृत है, वह पीला कौशेय वस्त्र धारण किये हुये है, उसके दाँत हाथी के बच्चे के दाँत के समान ईषद् निकले हुये हैं, हल के समान नाक है, हाथी के सूंड की नाईं भुजायें हैं, वह अग्नि के समान प्रोद्दासित है तथा त्रिपुरविनाशक रुद्र की भाँति क्रुद्ध है। वह राक्षस भीमपुत्र घटोत्कच है।

उस राक्षस को देखकर कनिष्ठ पुत्र कहता है कि यह तो साक्षात् मृत्यु की भाँति हम लोगों का अनुधावन कर रहा है। इसी समय घटोत्कच उन्हें ललकारते हुये कहता है—'ऐ भीरु ब्राह्मण ! मेरे आगे से तुम कहाँ भाग रहे हो ? तुममें अपने पुत्रों तथा स्त्री की रक्षा का सामर्थ्य नहीं। तुम मेरे सामने वैसे ही हो जैसे क्रुद्ध गरुड के सामने स्त्री-सहित डरा हुआ नाग हो।' घटोत्कच की बात सुनकर वृद्ध ब्राह्मण अपने पुत्रों तथा स्त्री से कहता है कि तुम लोग डरो

मत। इसकी वाणी तो विवेकशील प्रतीत हो रही है। घटोत्कच उसी समय अपने मन में सोचता है कि मैं यह भली भाँति जानता हूँ कि ब्राह्मण पृथ्वी पर अवध्य है पर माता के आज्ञावशात् यह अकरणीय कार्य भी शंका को छोड़ कर करना पड़ेगा।

उसी समय वृद्ध ब्राह्मण अपनी पत्नी से कहता है—'ब्राह्मणि, क्या तुम्हें स्मरण नहीं है कि उस जलक्लिन्न तपस्वी ने कहा था कि यह वन निरापद नहीं है अतः तुम लोगों को सावधानी से जाना चाहिये।' ब्राह्मणी कहती है कि 'इस समय आप कर्त्तव्यविमूढ़ क्यों हो रहे हैं किसी को पुकारिये।' ब्राह्मणी की बात सुनकर ब्राह्मण कहता है कि किसे पुकारूँ? यह वन तो निर्जन है पर्वतों से घिरा है तथा पशु-पक्षियों से व्याप्त है। फिर उसे स्मरण आता है कि पास ही पाण्डवों का आश्रम है। वे पाण्डव युद्धप्रिय, शरणागतवत्सल साहसी, दीनों पर दया करने वाले तथा भयानक प्राणियों को दण्ड देनेवाले हैं। पर, उन्हें परस्पर वार्तालाप से यह पता चलता है कि पाण्डव कहीं बाहर चले गये हैं। इस प्रकार किसी आसन्न सहायक को न देखकर वे घटोत्कच से ही पूछते हैं कि इस सकट से मोक्ष का कोई उपाय है या नहीं। इस पर घटोत्कच कहता है कि मोक्ष तो है पर उसके साथ शर्त है। मेरी माता की आज्ञा है कि इस अरण्य में यदि कोई मानव मिले तो उसे पकड़ कर मेरे पारण के लिये लाओ। यदि आप स्त्री और-दो बच्चों के साथ मोक्ष चाहते हैं तो योग्य-अयोग्य का विचार कर एक पुत्र को मेरे साथ कर दीजिये और इस प्रकार आपका कुटुम्ब बच जायेगा।

घटोत्कच की बात सुनकर ब्राह्मण क्रुद्ध हो जाता है और कहता है कि 'इन नीचतापूर्ण बातों से तू विरत हो जा। मेरा ही शरीर वार्धक्य जर्जर है और अब कृत-कृत्य भी हो गया है अतः पुत्रों की रक्षा के निमित्त इसे तो मैं अर्पण करता हूँ।' वृद्ध ब्राह्मण की बात सुनकर ब्राह्मणी ही चलने को कहती है और और इसी में वह अपने पातिव्रत्य धर्म की सार्थकता समझती है। पर घटोत्कच उसे यह कहकर निवारण कर देता है कि मेरी माता को स्त्री अभीष्ट नहीं है। जब घटोत्कच वृद्ध को लेकर चलने को प्रस्तुत होता है तो ज्येष्ठ पुत्र यह कहता है कि वह अपने प्राणों को देकर पिता के प्राण की रक्षा करना चाहता है।

मध्यम पुत्र भी उसकी बात सुनकर उसे रोकता है और कहता है कि आप कुटुम्ब में ज्येष्ठ तथा पितरों के प्रिय हैं। अतः मैं ही अपने शरीर को दूँगा। इसी प्रकार कनिष्ठ पुत्र भी कहता है और ये अहमहमिकापूर्वक जाने को प्रस्तुत होते हैं। पर उन दोनों छोटे भाइयों को बड़ा लड़का यह कहकर रोकना चाहता है कि आपद्ग्रस्त पिता की ज्येष्ठ पुत्र ही रक्षा करता है। पर, ज्येष्ठ की बात सुनकर वृद्ध ब्राह्मण कहता है कि ज्येष्ठ पुत्र मुझे सर्वाधिक प्रिय है अतः इसे मैं काल के गाल में नहीं प्रेषित कर सकता। वृद्ध की बात सुनकर वृद्धा कहती है कि कनिष्ठ पुत्र उसे प्राणों से बढ़कर प्रिय है अतः उसे भी यह नहीं जाने देगी। इस पर मध्यम पुत्र कहता है कि माता पिता का अनिष्ट किसे प्रिय होगा। यदि ये लोग दोनों पुत्रों को नहीं जाने देना चाहते तो मैं ही जाऊँगा। उसकी बात सुनकर घटोत्कच प्रसन्न हो जाता है। द्वितीय पुत्र क्रमेण माता, पिता तथा ज्येष्ठ भ्राता को प्रणाम करता है और वे उसे शुभाशीर्वाद देते हैं। चलते समय मध्यम पुत्र घटोत्कच से कहता है कि जरा तुम रुक जाओ जिसमें मैं समीपवर्ती जलाशय में जलपान कर लूँ। घटोत्कच उसे शीघ्र आने को कह जाने की अनुमति दे देता है। मध्यमपुत्र चला जाता है।

मध्यम पुत्र के लौटने में कुछ विलम्ब होता है। घटोत्कच उसे मध्यम कह कर जोर से पुकारता है। समीप ही भीमसेन कहीं खड़े हैं। वे उस शब्द को सुनते हैं और वितर्क करते हैं कि अर्जुन उन्हें ही मध्यम कह कर पुकारते हैं। इसी बीच घटोत्कच दुबारा पुकारता है और भीम उधर मुड़कर देखते हैं। घटोत्कच के बलशाली तथा सुपुष्ट शरीर को देखकर वे आश्चर्यान्वित हो जाते हैं। जब पुनः घटोत्कच मध्यम पुत्र को पुकारता है तो वे कहते हैं कि मैं आ गया। घटोत्कच भी भीम के दर्शनीय व्यक्तित्व को देखकर ठिठक जाता है। वह कहता है कि 'क्या आप भी मध्यम हैं, तो भीम कहते हैं कि 'मैं ही मध्यम हूँ।' भीम की बात सुनकर वृद्ध ब्राह्मण मन में सोचता है कि यह अवश्य ही मध्यम पाण्डव भीम हैं जो हम लोगों को मुक्त कराने के लिये ही भाग्यवशात् यहाँ आये हैं। इसी अन्तराल में ब्राह्मण का मध्यम पुत्र भी चला आता है और घटोत्कच उसे लेकर चल देता है। वृद्ध कातर दृष्टि से भीम की शरण में

जाता है और कहता है कि यह राक्षस हम लोगों को खाना चाहता है इससे आप रक्षा कीजिये। वह यह भी बताता है कि वह कौन है तथा कहाँ जा रहा है। उसकी बात सुनकर भीम उसे आश्वासन देते हैं। वे घटोत्कच को पुकार कर कहते हैं कि इस ब्राह्मण परिवाररूपी चन्द्र के लिये तुम क्यों राहु बने हो। ब्राह्मण अवध्य होते हैं अतः इसे छोड़ दो। भीम की बात सुनकर घटोत्कच छोड़ने से इनकार करता है और कहता है कि आप क्या मेरे साक्षात् पिता भी आकर कहें तो मैं इसे नहीं छोड़ सकता। मैं अपनी माता की आज्ञा की पूर्ति के लिये इसे ले जा रहा हूँ। भीम उसकी माता का नाम पूछते हैं और हिडिम्बा नाम सुनकर मन ही मन प्रसन्न होते हैं। पुत्र की मातृभक्ति से भी उन्हें महान् आह्लाद होता है। भीम मध्यम पुत्र को रोक देते हैं और कहते हैं कि तुम मत जाओ तेरे स्थान पर मैं जाऊँगा। इस पर जब घटोत्कच उनसे चलने के लिये कहता है तो वे कहते हैं कि 'यदि तुममें शक्ति हो तो मुझे ले चलो।'

इसके अनन्तर घटोत्कच वृक्ष, शैलादि से भीम पर प्रहार करता है। पर भीम निगृहीत नहीं होते। बाहुयुद्ध तथा मायायुद्ध से भी घटोत्कच उनका बाल बाका नहीं कर सका। अन्त में घटोत्कच उनकी प्रतिज्ञा की याद दिलाता है और भीम उसके साथ चलने लगते हैं। घटोत्कच भीमसेन को खड़ा कर अपनी माता हिडिम्बा को खुशखबरी सुनाने जाता है। हिडिम्बा उसके साथ अपने कल्पित आहार को देखने आती है और देखकर आश्चर्यचकित हो जाती है। वह 'आर्यपुत्र' कह कर भीमसेन का अभिवादन करती है। घटोत्कच भी अपने कृत्य पर लज्जित होता है और भीम को प्रणाम करता है। वह भीम से क्षमायाचना करता है। भीम भी उसे गले से लगा लेते हैं। वृद्ध ब्राह्मण के चरणों में भी घटोत्कच नतमस्तक होता है। अन्त में मङ्गलवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है—

> यथा नदीनां प्रभवः समुद्रः
> यथाहुतीना प्रभवो हुताशन।
> यथेन्द्रियाणां प्रभवं मनोऽपि
> तथा प्रभुर्नो भगवानुपेन्द्रः॥—श्लोक ५२

नाटक का आधार—महाभारत में हिडिम्ब-वध तथा हिडिम्बा से भीम का ब्याह वर्णित है। इसके अतिरिक्त हिडिम्बा पुत्र घटोत्कच का अस्तित्व भी वहाँ विद्यमान है (द्र० महाभारत के आदिपर्व के अन्तर्गत हिडिम्बवधपर्व अध्याय १५१–१५५, गीता प्रेस संस्करण)। पर, इस प्रकार ब्राह्मण का पीछा तथा भीम द्वारा ब्राह्मणों की मुक्ति महाभारत में अनुल्लिखित है। हाँ, यह महाभारत में अवश्य उल्लिखित है कि घटोत्कच यज्ञ तथा ब्राह्मणों का विद्वेषी है (द्रोणपर्व अ० १८१।२६–२७)। इस प्रकार यहाँ इस नाटक का आख्यान कल्पित है। भास सुपरिचित पात्रों को लेकर उन्हीं के आधार पर इस नाटक की रूप रेखा प्रस्तुत करते हैं।

नाटक का नामकरण—यह प्रश्न विचारणीय है कि नाटक का नाम मध्यमव्यायोग क्यों रखा गया है? इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है—मध्यम अर्थात् मध्यम पाण्डव भीम पर अथवा मध्यम ब्राह्मण पर आधृत व्यायोग नामक नाटक प्रकार। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि पाण्डवों में मध्यम तो अर्जुन हैं फिर भीम क्यों मध्यम कहे गये हैं? इसका उत्तर यह है कि भास पाण्डवों में भीम को मध्यम मानते हैं जिसका आधार यह है कि कुन्ती के तीन पुत्रों में भीम ही मध्यम हैं।

इसकी अन्य व्याख्या यह भी हो सकती है कि जिस नाटक में मध्यम पाण्डव भीम का हिडिम्बा से मिलन हुआ अथवा जिसमें दो मध्यमों (पाण्डव मध्यम भीम तथा मध्यम ब्राह्मण) का प्रयोग हुआ है (विशेषेण आयोग. संयोग या व्यायुज्यतेऽस्मिन्)।

चरित्राङ्कन—यद्यपि इस नाटक में भीम का व्यक्तित्व सर्वातिशायी प्रदर्शित किया गया है पर सारे नाटक का घटनाक्रम घटोत्कच पर केन्द्रित है। घटोत्कच के चरित्राङ्कन में विशेष सावधानी प्रदर्शित की गयी है। घटोत्कच राक्षस होते हुए भी मानवीय भावभूमि पर अधिष्ठित है। उसे यह पता है कि ब्राह्मण अवध्य होता है पर वह बेचारा करे क्या? माता की आज्ञा का पालन तो उसे करना ही है। इसलिये वह सोचता है—

जानामि सर्वत्र सदा च नाम द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम्।
अकार्यमेतच्च मयाऽद्य कार्यं मातुर्नियोगादपनीय शङ्काम्॥—श्लोक ९

घटोत्कच का शरीर अत्यन्त सुगठित तथा बलशाली है। उसकी आँखें चन्द्र सूर्य की भाँति तेजस्वी हैं, उसका वक्षःस्थल पीन तथा विस्तीर्ण है, केशराशि कनककपिशवर्ण की है तथा कौशेयवस्त्र धारण किये हुये है। जब मध्यम ब्राह्मण कुमार जल पीने के लिये बाहर जाने को कहता है तो वह बिना किसी हिचकिचाहट के वैसी आज्ञा दे देता है। इसमें उसका आत्मविश्वास तथा सहानुभूति लक्षित होती है। भीम के साथ उसकी बातचीत में भी उसका व्यक्तित्व मलिन नहीं होता अपितु वह निर्भीकता के साथ उनसे संघर्ष ठानता है। घटोत्कच में दृढ़ता के साथ साथ विनय भी उचित रूप में विद्यमान है। जब भीम को लेकर अपनी माता के पास पहुँचता है और वहाँ जाकर उसे पता लगता है कि ये उसके पिता हैं तो वह उनके चरणों में अवनत हो जाता है और अपने कृत्य के लिये क्षमा याचना करता है।

भीमसेन का चरित्र इस नाटक में अपेक्षाकृत सबसे उदात्त तथा महनीय प्रदर्शित किया गया है। यद्यपि उनका नाटक में सान्निध्य घटोत्कच और केशव दास से कम ही रहता है पर उनके आते ही सारा कथानक उन्हीं पर केन्द्रित हो जाता है। भीमसेन परदुःखकातर, आत्माभिमानी, निर्भीक तथा बलवान् योद्धा क्षत्रिय के रूप में अंकित किये गये हैं। वे आते ही ब्राह्मणों की बात सुनकर उन्हें अभयदान देते हैं और राक्षसी का आहार बनने को प्रस्तुत हो जाते हैं। अपने बलशालित्व का भी वे परिचय देते हैं और घटोत्कच से संघर्ष भी कर बैठते हैं। इस संघर्ष में वे विजयी होते हैं पर 'समित्' का ध्यान कर हिडिम्बा के पास चलने को प्रस्तुत हो जाते हैं। हिडिम्बा के पास जाने पर उनका असली कुटुम्बी रूप प्रकट हो जाता है। उनके वार्तालापों में प्रेम तथा सौहार्द की भावना लक्षित होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटककार भीम के चरित्राङ्कन में विशेष सचेष्ट है और भीम को नायक के पद पर प्रतिष्ठित करता है।

ब्राह्मण केशवदास तथा उनके परिवार का चरित्र एक विशेष प्रकार का है। वे संयमी तथा तपस्वी हैं। परस्पर एक दूसरे के लिये त्याग की भावना भी उत्कृष्ट रूप से वर्तमान है। परन्तु, खटकनेवाली बात एक यह है कि माता पिता

दोनों ज्येष्ठ-कनिष्ठ पुत्र के प्रति तो विशेष ममता रखते हैं। मध्यम पुत्र के प्रति उनमें वह ममता नहीं है इसीलिये उसे कालकवलित कराने के लिये वे उद्यत हो जाते हैं। इसमें नाटककार का वैदिक सभ्यता और धर्म के प्रति आग्रह का भाव प्रेरक प्रतीत होता है। इसी प्रकार ऐतरेय आरण्यक में शुन शेप को उसके माता-पिता वरुण-बलि बनाने के लिये उद्यत हो जाते हैं। इस प्रकार लेखक यहाँ वृद्ध ब्राह्मण और वृद्धा के साथ न्याय नहीं कर सका है।

हिडिम्बा के चरित्र में कोई उल्लेख्य वैशिष्ट्य नहीं दिखायी पड़ता। इसका कारण यह है कि उसके उभार का इसमें अवसर नहीं दिया गया है।

समीक्षण—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह रूपक 'व्यायोग' नामक नाटक प्रकार की कोटि में आता है। व्यायोग का इतिवृत्त प्रसिद्ध होता है, नायक धारोद्धत होता है, गर्भ तथा विमर्शाख्य सन्धियाँ नहीं होतीं, वीर, रौद्र आदि उद्दीप्त रस होते हैं, युद्ध स्त्री निमित्तक नहीं होता, एक दिन का चरित होता है तथा एक ही अङ्क होता है—

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः ख्यातोद्धतनराश्रयः।
हीनो गर्भविमर्शाभ्यां दीप्ताः स्युर्डिमवद्रसा॥
अस्त्रीनिमित्तसंग्रामो जामदग्न्यजये यथा।
एकाहाचरितैकाङ्को व्यायोगो बहुभिर्नरैः॥

—दशरूपक, ३.६०-६२

इस मानदण्ड से यह रूपक व्यायोग ही ठहरता है और इस रचना में नाटककार को पर्याप्त साफल्य मिला है। नाटकीय दृष्टि से यह नाटक उत्तम माना जायेगा क्योंकि रस-परिपाक तथा भावोन्मेष में नाटककार को पूरी सफलता मिली है। वार्तालापों में भी कहीं नीरसता नहीं आती और दर्शक का कुतूहल प्रतिक्षण वृद्धिंगत होता रहता है। इस कथनोपकथन में भाषा भी बड़ी सहायिका सिद्ध होती है। लम्बे समासान्त पदों का अभाव दर्शक के भावबोध में व्यवधान नहीं आने देता। भास की भाषा सरलता में बेजोड़ है। घटनाक्रम में सत्वरता प्रभावोत्पादन में चार चाँद लगा देती है।

भास का काव्य-कर्म भी इस नाटक में सफल रहा है। घटोत्कच का

उत्प्रेक्षा के आश्रय से ऐसा वर्णन है कि नाटक पढ़नेवाले के सामने में एक वरिष्ठ व्यक्ति खड़ा हो जाता है :—

> ग्रहयुगलनिभाक्षः पीनविस्तीर्णवक्षाः,
> कनककपिलकेशः पीतकौशेयवासाः ।
> तिमिरनिवहवर्णः पाण्डरोद्वृत्तदंष्ट्रो
> नव इव जलगर्भो लीयमानेन्दुलेखः ॥–इलोक ५

इसी प्रकार वृद्ध ब्राह्मण के परिवार का चित्रण भी बड़ा सजीव तथा आकर्षक है। उपमा की छटा भी यहाँ दर्शनीय है :—

> भ्रान्तैः सुतैः परिवृतस्तरुणैः सदारैः वृद्धो द्विजो निशिचरानुचरः स एषः ।
> व्याघ्रानुसारचकितो वृषभः सधेनुः सन्त्रस्तवत्सक इवाकुलतामुपैति ॥
> —श्लोक ३

भयभीत तरुणपुत्रों और पत्नी से युक्त वृद्ध ब्राह्मण का राक्षस पीछा कर रहा है। वह ब्राह्मण सिंह के द्वारा आक्रमण किये जाते हुए डरे हुए बछड़ों तथा गायवाले वृषभ की भाँति प्रतीत हो रहा है। वृद्ध ब्राह्मण का यह रूप दर्शक को बरबस करुण-रस में डुबो देता है।

५—पञ्चरात्र

यह तीन अङ्कों का नाटक है। यह महाभारत के विराट पर्व पर आधृत है। द्यूत में पराजित पाण्डव तेरह वर्षों के लिये वनवास तथा अज्ञातवास का संविद् कर राज्य से बाहर चले गये हैं। इस समय वे विराट के यहाँ छद्मवेश में अज्ञातवास कर रहे हैं। इसी समय कुरुराज दुर्योधन का यज्ञ प्रारम्भ होता है। यज्ञ वृहत् सम्भार के साथ होता है। ब्राह्मणोच्छिष्ट अन्न चतुर्दिक अवकीर्ण पड़े हुये हैं। यज्ञधूम की सुगन्धि से पुष्पों की सुगन्धि दब गई है। यज्ञ के सात्विक प्रभाव से परस्पर विरोधी स्वभाव के हिंस्र पशु भी वैर को विस्मृत कर दिये हैं। हुताशन सारे प्राणियों को तृप्त कर रहा है। बड़े-बड़े वृद्ध विद्वान् ब्राह्मण उस यज्ञ में सम्मिलित हुये हैं। पृथ्वी के सारे नृपतियों ने राजा को कर देकर सन्तुष्ट किया है। इस प्रकार यज्ञ की छटा निराली हो गयी है। यत्र तत्र बालक औद्धत्य तथा चापल्य भी प्रदर्शित कर रहे हैं।

यज्ञ पूर्ण समारोह के साथ समाप्त होता है। दुर्योधन अपने मित्र कर्ण से

मन्त्रणा कर गुरुजनों को प्रणाम करता है। भीष्म-द्रोण दुर्योधन को यज्ञ में सम्मिलित राजाओं से मिलाते हैं। इसी समय दुर्योधन को पता चलता है कि सम्पूर्ण राजा तो आ गये पर विराट का पता नहीं। शकुनि उसे बताता है कि विराट के यहाँ दूत भेजा जा चुका है रास्ते में आ रहा होगा। इसके अनन्तर दुर्योधन आचार्य द्रोण से दक्षिणा माँगने को कहता है क्योंकि वे उसके धर्म तथा धनुर्विद्या में गुरु हैं। द्रोणाचार्य दुर्योधन के बहुत आग्रह करने पर कहते हैं कि 'और किसी वस्तु की तो मुझे अपेक्षा नहीं पर यदि तुम्हें दक्षिणा देने की लालसा है तो यही दक्षिणा है कि बारह वर्षों से वन में इधर-उधर भटकने वाले पाण्डवों को उनका हिस्सा दे दो।' इसपर शकुनि तुरन्त उद्विग्न हो जाता है और कहता है कि ऐसा नहीं हो सकता। यह तो प्रत्यय उत्पन्न कर धर्म-वञ्चना की गयी। इस कथन से द्रोण रुष्ट हो जाते हैं पर भीष्म साम-वचनों से सबको शान्त करते हैं। दुर्योधन मामा शकुनि से मन्त्रणा करने की अनुमति माँगता है और मन्त्रणा के लिये अनुमति पाकर शकुनि से मन्त्रणा करता है। शकुनि उसे राज्य न देने की राय देता है। कर्ण कहता है कि जैसा आप उचित समझिये वैसा कीजिये। भ्रातृ भाग से मैं इनकार नहीं कर सकता। हम लोग तो समर में आपके सहायक हैं।' जब दुर्योधन गुरु को दक्षिणा देने की प्रतिज्ञा से निस्तार का उपाय पूछता है तो शकुनि उसे द्रोण के पास लाकर कहता है कि दुर्योधन कहते हैं कि यदि पाँच रातों के भीतर पाण्डवों का पता लग जाय तो यह उनका भाग देने को प्रस्तुत है।

पहले तो द्रोणाचार्य उसकी शर्त मानने को प्रस्तुत नहीं होते पर, इसी बीच विराट नगर से दूत लौट आता है और बताता है कि विराट के सम्बन्धी सौ कीचक भाइयों को किसी व्यक्ति ने बाहों से ही रात्रि में मार डाला अतः शोक-संविग्न होने से वे यज्ञ में सम्मिलित नहीं हुये। भीष्म जब इसे सुनते हैं तो उन्हें प्रत्यय हो जाता है कि भीमसेन ने ही मारा है। वे द्रोण से दुर्योधन की शर्त मान लेने को कहते हैं और कहते हैं कि 'मुझे पूरा विश्वास है कि भीम ने ही कीचकों को मारा है। मुझे अपने बच्चों के पराक्रम का पूरा पता है। द्रोण उसकी शर्त को मान लेते हैं और उस शर्त को सभी समागत राजाओं को सुना देते हैं।

भीष्म कौरवों से विराट के गोधन के हरण की सलाह देते हैं क्योंकि वह यज्ञ में सम्मिलित नहीं हुआ है और गुप्त शत्रुत्व भी चला आता है। इस प्रस्ताव को सभी मान लेते हैं। द्रोण जनान्तिक में इस अपहरण का विरोध करते हैं और कहते हैं कि विराट उनका प्रिय शिष्य है। भीष्म कहते हैं कि जब वहाँ आक्रमण होगा तो कृतज्ञतावशात् पाण्डव साहाय्य के लिये आवेंगे ही और गोधन के प्रति उनका और भी विशिष्ट प्रेम है। इस प्रकार मन्त्रणा करने के उपरान्त भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, शकुनि आदि कौरव सदल-बल विराट के गोधन पर आक्रमण करते हैं।

द्वितीय अङ्क विराट के गोधन की निवासभूमि से प्रारम्भ होता है। वृद्ध गोपालक अपने परिवार के तथा सम्बन्धी गोपालकों से वार्तालाप कर रहा है। इसी दिन विराट का जन्मदिवस भी है। गोपालक इसी आनन्द में नाच रहे हैं। इसी समय कौरव आकर गोधन का हरण करते हैं। गायें इधर उधर भागती हैं पर वे सभी को समेट कर ले चलते हैं। गोपालक दौड़कर विराट को इसकी सूचना देते हैं। भट जाकर विराट को गोधन हरण की सूचना देता है। महाराज विराट शीघ्र ही रणक्षेत्र में जाने लिए उद्यत होते हैं। इसी समय विराट भगवान् नामक ब्राह्मण को बुलाते हैं और उनसे सब वृत्तान्त यथावत् निवेदित करते हैं (वस्तुतः युधिष्ठिर ही भगवान् बने हैं) विराट रथ सजाने की आज्ञा देते हैं पर पता चलता है कि उस रथ पर सवार होकर राजकुमार उत्तर शत्रु-सैन्य को विफल करने के लिये चले गये हैं। उन्हें यह भी बताया जाता है कि रथ का सारथि बृहन्नला को बनाया गया है। बृहन्नला को सारथि सुनकर राजा चिन्तित होते हैं पर भगवान् उन्हें ढाढस बँधाते हैं। उन्हें यह भी सूचना दी जाती है कि उत्तर का रथ समराङ्गण को छोड़ कर श्मशान की ओर भाग गया है। भट फिर लौट कर विराट से बताता है कि उत्तर ने बाण से सभी विपक्षियों को पराङ्मुख कर दिया है केवल एक अभिमन्यु ही निर्भय भाव से लड़ रहा है। तदनन्तर यह भी बताया जाता है कि गोधन की रक्षा हो गयी, गायें लौट आयीं। धार्तराष्ट्र परास्त होकर भाग गये।

विराट बृहन्नला बने अर्जुन को सभा में बुलाते हैं। वे बृहन्नला से रण वृत्तान्त पूछते हैं। इसी बीच भोजन बनाने में निपुण भीमसेन द्वारा अभिमन्यु भी

कड़ लाया जाता है। अभिमन्यु का अर्जुन तथा भीम के साथ वार्तालाप होता
है। अभिमन्यु राजा विराट के साथ निर्भीकता से बात करता है और कहता
है कि यदि आप लोगों ने बाहुबल से मुझे पकड़ लिया है तो मध्यम पिता
भीमसेन बाहुबल से ही मुझे छुड़ा ले जायेंगे। इसी समय वहाँ राजकुमार उत्तर
आता है और कहता है कि वस्तुतः यह विजय मेरे द्वारा नहीं अपितु बृहन्नला
ने इन अर्जुन के द्वारा हुई है। वह युद्ध का सारा वृत्तान्त भी बताता है।
अर्जुन कहते हैं कि यदि मैं अर्जुन हूँ तो ये राजा युधिष्ठिर तथा ये भीमसेन हैं।
इस प्रकार सब प्रकट हो जाते हैं। जब राजा विराट उन्हें गुप्त होने को कहते हैं
तो युधिष्ठिर कहते हैं कि अब अज्ञातवास का समय पूरा हो गया। सब
लोग परस्पर प्रसन्नता के साथ मिलते हैं। विराट अपनी पुत्री उत्तरा को
अर्जुन के लिये देने का प्रस्ताव करते हैं। पर, अर्जुन इस प्रस्ताव को
अस्वीकार करते हैं और कहते हैं कि सम्पूर्ण अन्तःपुर की मैंने
मातृवत् पूजा की। इस कुमारी को मेरे पुत्र अभिमन्यु को दे दिया जाय।
अर्जुन के प्रस्ताव का सभी अनुमोदन करते हैं। युधिष्ठिर कहते हैं कि इस
प्रस्ताव के साथ उत्तर कुमार को भीष्म पितामह के पास भेज दिया जाय। सभी
लोग इसे स्वीकार करते हैं।

तृतीय अङ्क कौरवों के यहाँ प्रारम्भ होते हैं। सूत आकर निवेदन करता है
कि अर्जुनतनय अभिमन्यु को शत्रुओं ने पकड़ लिया है। इस कथन को सुन-
कर भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि उत्तेजित हो जाते हैं। किन्तु शकुनि कहता है कि
इसमें चिन्ता करने की कोई बात नहीं। विराट पाण्डवों और श्रीकृष्ण के भय से
उसे छोड़ देंगे। सूत बताता है कि कोई पैदल ही आकर अभिमन्यु को पकड़
ले गया। वह अपने बाहुवेग से अश्वों के वेग को रोककर रथ पर चढ़ गया
और अभिमन्यु को अपने कब्जे में कर लिया। यह सुनकर भीष्म कहते हैं कि
यह व्यक्ति भीमसेन है। द्रोण भी इसका समर्थन करते हैं। शकुनि इसका
विवाद करता है और कहता है कि इस पृथ्वी पर आप लोगों को केवल पाण्डव
ही बलवान् दिखायी पड़ते हैं। इस समय सूत आकर कहता है कि जिस बाण
ने आपकी ध्वजा को विद्ध किया उस पर किसी का नाम अङ्कित है। उसे देखने
से अर्जुन का नाम मालूम पड़ता है। शकुनि कहता है कि यह किसी दूसरे

अर्जुन का बाण होगा। दुर्योधन कहता कि यदि आप लोग युधिष्ठिर को लाकर दिखा देंगे तो मैं उनका राज्यांश दे दूँगा।

इसी समय दूतरूप में विराटनगर से राजकुमार उत्तर आते हैं और प्रणाम पुरस्सर निवेदन करते हैं कि धर्मराज ने कहा है कि 'उत्तरा मुझे पुत्रवधू के रूप में प्राप्त हुई है उसका विवाह आप लोगों के यहाँ हो या यहीं पर।' शकुनि झट उत्तर देता है कि यहीं पर। द्रोण तत्काल दुर्योधन की प्रतिज्ञा का स्मरण कराते हैं और कहते हैं अभी पञ्चरात्र पूरा नहीं हुआ है और पाण्डवों का पता लग गया। अतः दुर्योधन अपनी गुरुदक्षिणा पूरी करें। दुर्योधन अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करना स्वीकार करता है और कहता है कि 'मैंने पाण्डवों को आधा राज्य दे दिया। सत्य बना रहेगा तो मरने के बाद भी हम यशःशरीर से जीवित रहेंगे।

भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटक का आधार—इस नाटक के कथानक का ताना बाना महाभारतीय विराटपर्व के आधार पर निर्मित है, यद्यपि नाटककार ने परिवर्तन कर दिया है। युधिष्ठिरादि पाण्डवों का वेश बदल कर विराट के यहाँ रहना, कौरवों से युद्ध, कीचक वध आदि की कथा विराटपर्व में सविस्तार वर्णित है (द्र० विराटपर्व अ० ७ से ७१ तक)। पर मुख्य आधार जिस पर कि नाटक का नामकरण पञ्चरात्र हुआ है महाभारत में अनिर्दिष्ट है। द्रोण का पाण्डवों को राज्य देने को कहना, दुर्योधन का पाँच दिन के अन्दर पता लगने पर देने की प्रतिज्ञा करना तथा पता लग जाने पर राज्य दे देना पूर्णतः काल्पनिक है और महाभारत में इसका संकेत तक नहीं। दूसरे शब्दों में इस, आख्यान को मानने पर महाभारत का मुख्य विषय भारत-युद्ध ही समाप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस नाटक में विराट युद्ध में नहीं जाते जब कि महाभारत में वे युद्ध करते हुये जीवित ही सुशर्मा के द्वारा पकड लिये जाते हैं (द्र० विराटपर्व अ० ३२,३३)। इस प्रकार हम देखते हैं कि कथानक-निर्माण में नाटककार ने पर्याप्त स्वतंत्रता बरती है और मूलकथा को एक नया रूप दे दिया है। यह परिवर्तन नाटक की प्ररोचनावृद्धि करने में पर्याप्त सहायक हुआ है।

नामकरण—इस नाटक का नामकरण पञ्चरात्र द्रोण के पाण्डवों को राज्य देने अनुरोध और दुर्योधन का पाँच दिनों में अ के मिल जाने पर देनेकी प्रतिज्ञा पर आधृत है। सारा कथानक इस पे है। द्रोण, भीष्म के साथ कौरवों का विराट के यहाँ गोधन का हरण, साथ अर्जुन का कौरवों को परास्त करना तथा पता लग जाने पर दुर्योधन द्वारा पाण्डवों को राज्यांश देना इसी पञ्चरात्र की धुरी पर प्रतिष्ठित है। अतः इस नाटक का नामकरण पञ्चरात्र सटीक है।

चरित्राङ्कन—इस नाटक में सर्वप्रधान व्यक्तित्व दुर्योधन का है। आरम्भ से अन्त तक वह नाटक में वर्तमान है। नाटक का सारा क्रिया-कलाप उसी के वचनों से सञ्चालित हो रहा है। नाटक में उसका रूप धार्मिक राजा के रूप में सर्वप्रथम प्रदर्शित किया गया है। पाण्डवों को राज्य भ्रष्ट कर वह महान् यज्ञ का प्रवर्तन करता है। यज्ञ में सभी देश-देशान्तर के राजा दुर्योधन को कर देने उपस्थित होते हैं। यह उसके महान् शौर्य-पराक्रम को घोषित करता है। यज्ञ में उसने विपुल सम्पत्ति व्यय की है। ब्राह्मणगण प्रभूत दक्षिणाओं को प्राप्त कर आप्तकाम हो गये हैं। होमधूमों से वह देवताओं का पोषण करता है।

अवभृथस्नान के समय दुर्योधन की अटूट गुरुभक्ति भी सामने आती है। गुरु द्रोणाचार्य को वह बार-बार यथेच्छ दक्षिणा माँगने को बाध्य कर रहा है। जब द्रोण पाण्डवों को उनका राज्य देने को कहते हैं तो उसके स्वार्थ को करारा झटका लगता है। उसके स्वार्थ-वृक्ष को द्रोण का वचनवायु झकझोर देता है। मन्त्रणाओं का साथी तथा कुटिल मातुल शकुनि उसे न देने को बार-बार उत्साहित करता है। पर दुर्योधन पर गुरु का गौरव अपनी अटूट छाप डालते है। वह शकुनि से कहता है कि चाहे गुरुदेव ने वञ्चना ही की हो पर यदि मैंने उनके हाथ में जल सङ्कल्प के लिये दे दिया है तो उसे अवश्य ही पूरा करूँगा। कुलवृद्धों के सामने की प्रतिज्ञा से मैं मुकर नहीं सकता—

गुरुकरतलमध्ये तोयमावर्जितं मे,
श्रुतमिह कुलवृद्धैर्यत् प्रमाणं पृथिव्याम्।
तदिदमपनयो वा वञ्चना वा यथा वा
भवतु नृप ! जलं तत् सत्यमिच्छामि कर्तुम् ॥ ४७ ॥

इसीलिये वह एक शर्त पर द्रोण की याचना को स्वीकार करता है। वह शर्त है पाँच रातों के अन्दर पाण्डवों का पता लग जाना।

दुर्योधन में स्वाभिमान की भावना भी कूट कूट कर भरी हुई है। जब द्रोणाचार्य कहते हैं कि यदि पाण्डवों को उनका राज्यांश नहीं दिया जायेगा तो वे हठात् छीन लेंगे तो दुर्योधन उत्तेजित हो जाता है और कहता है कि यदि उनमें ऐसी सामर्थ्य है तो जब द्रौपदी का भरी सभा में केश-कर्षण किया गया तो उन्होंने क्यों नहीं अपना पराक्रम प्रदर्शित किया।

पाण्डवों के साथ प्रबल वैर होने पर अभिमन्यु के प्रति उसके हृदय में वात्सल्य प्रेम भरा है। जब उसे सूचना दी जाती है कि अभिमन्यु बन्दी बना लिया गया जाता है तो वह कहता है कि इसके पितरों से मेरा वैर है अतः बन्दी बनाये जाने पर मुझे ही दोषी ठहरायेंगे। इसके अतिरिक्त वह पहले मेरा पुत्र है फिर पाण्डवों का। कुल-विरोध होने पर बालकों का उसमें अपराध नहीं होता—

मम हि पितृभिरस्य प्रस्तुतो ज्ञातिभेद-
स्तदिह मयि तु दोषो वक्तृभिः पातनीयः।
अथ च मम स पुत्रः पाण्डवानां तु पश्चात्
सति कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः॥ अङ्क २ श्लो० ४

दुर्योधन अपने वचनों पर दृढ रहने वाला है। जब उसे पाण्डवों का पता लग जाता है तो उनका राज्यांश लौटा देना स्वीकार कर लेता है और कहता है कि सत्य के ही सहारे व्यक्ति मरने पर भी जीवित रहता है। संक्षेप में दुर्योधन का रूप अत्यन्त उदात्त प्रदर्शित किया गया है।

द्रोणाचार्य—अत्यन्त शिष्यवत्सल आचार्य हैं। अन्याय उन्हें रञ्चमात्र भी नहीं भाता। दुर्योधन से सर्वमानेन परितुष्ट किये जाने पर भी पाण्डवों का राज्यच्युत किया जाना उन्हें सन्ताप देता है। इसीलिये दुर्योधन द्वारा दक्षिणा लेने के लिये प्रार्थना किये जाने पर वे पाण्डवों का राज्यांश लौटाने का आग्रह करते हैं। इसी शिष्यवत्सलता के कारण वे शकुनि जैसे शठ व्यक्ति को भी अनुकूल बनाने का प्रयास करते हैं यद्यपि धूर्त शकुनि उनकी चालाकी ताड़ जाता है। द्रोण उदारमना, निःस्पृह तथा शिष्यवत्सल आचार्य के रूप में दर्शाये गये हैं।

भीष्म का चरित्र भी अत्यन्त प्रशस्त प्रदर्शित किया गया है। उनमें विनय तथा शिष्टाचार भी कूट-कूट कर भरा है। धर्म की तो साक्षात् मूर्ति हैं। पाण्डवों के प्रति अटूट प्रेम तथा सहानुभूति के साथ ही साथ न्याय्य मार्ग का प्रदर्शन उनका लक्ष्य है। दुर्योधन को सदैव वे नेक सलाह देते हैं जिससे कुलविग्रह शान्त हो तथा पाण्डवों का न्याय्य अंश मिले। यद्यपि इस नाटक में वे कभी उत्तेजित प्रदर्शित नहीं किये गये हैं पर नीति का उपदेश वे सदैव करते हैं। द्रोण को भी वे समझाते हैं तथा शान्ति से काम लेने का उपदेश देते हैं।

शकुनि का चरित्र सभी दुर्गुणों का आकर है। छल ही उसका स्वभाव है। वञ्चना उसके व्यक्तित्व का अभिन्न अङ्ग है। जब द्रोण दक्षिणा के रूप में दुर्योधन से पाण्डवों को राज्यांश देने को कहते हैं तो शकुनि इसे धर्म-वञ्चना कहता है। तदनन्तर जब दुर्योधन उससे मन्त्रणा करने चलता है और द्रोण उसका आलिङ्गन करते हैं तो शकुनि कहता है कि यह आचार्य बड़ा शठ है जो मुझे वञ्चित करना चाहता है। अभिमन्यु के विराटनगर में बन्दी बनाने का समाचार जब सुनाया जाता है और दुर्योधनादि उसे छुड़ाने के लिये उद्विग्नता प्रदर्शित करते हैं उस समय भी शकुनि कहता है कि विराट अभिमन्यु को पाण्डवों या कृष्ण या बलराम के भय से छोड़ देगा फिर छुड़ाने की क्या जरूरत है। इतनी दुष्टता के साथ साथ उसे पाण्डवों के बल का भी पता था। जब दुर्योधन कोई देश बताने को कहता है जिसे पाण्डवों को दिया जाय तो वह कहता है कि देने योग्य कोई भी देश नहीं यहाँ तक कि शून्य भी नहीं—

शून्यमित्यभिधास्यामि कः पार्थाद्बलवत्तरः।
उपरेऽप्यपि शस्यं स्याद्यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ १.४८ ॥

कर्ण का चरित्र यद्यपि इस नाटक में थोड़ा ही आया है पर उसके चरित्राङ्कन में नाटककार ने पूर्ण सावधानी तथा सहानुभूति बरती है। वह विनयशील तथा कार्य साफल्य का विश्वासी है। जब द्रोण उत्तेजित हो जाते हैं तो उन्हें शान्त कर अपना काम निकालने को कहता है। दुर्योधन के प्रति मित्रता को वह अन्तिम दम तक निभाने का पक्षपाती है। जब दुर्योधन उससे पूछता है कि पाण्डवों का अंश उन्हें दिया जाय या नहीं तो वह बड़े ही कुशल

शब्दों में उत्तर देता है कि यह तो आपके ऊपर है। हम लोग तो लड़ाई शुरू होने पर अपना प्राणार्पण करने को प्रस्तुत हैं। भातृ भाव का मैं निषेध नहीं कर सकता—

रामेण भुक्तां परिपालितां च सुभ्रातृतां न प्रतिषेधयामि।
क्षमाक्षमत्वे तु भवान् प्रमाणं संग्रामकालेषु वयं सहायाः ॥१.४५॥

युधिष्ठिर धर्म के प्रबल पक्षपाती हैं। उनका चरित्र आदर्शभूत है। मर्यादा के वे प्रबल पोषक हैं। कौरवों ने यद्यपि उनका बड़ा अपकार किया तथापि उनके प्रति उनमें सहानुभूति विद्यमान है। जब कौरवों ने विराट पर आक्रमण किया तो उनको बड़ा आघात लगा और वे बोल उठे—

एकोदकत्व खलु नाम लोके मनस्विना कम्पयते मनांसि—अङ्क २ जब विराट अर्जुन के साथ उत्तरा के विवाह का प्रस्ताव करते है तो उन्हे दु:ख हुआ। वे सोचने लगे कि कहीं अर्जुन का चित्त विचलित न हो जाय इसीलिये वे कहते हैं—'एतदवनत शिर.'। पर जब अर्जुन इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर अभिमन्यु के साथ उत्तरा के परिणय का आवेदन करते हैं तो युधिष्ठिर प्रसन्न हो जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि युधिष्ठिर का चरित्र बड़ा ही प्राञ्जल तथा उदात्त प्रदर्शित किया गया है।

अर्जुन का चरित्र वीररूप में प्रदर्शित किया गया है। अपने धनुर्विद्या के बल से वे उत्तर को साथ ले भीष्म, द्रोण आदि प्रमुख कौरवों को परास्त कर विराट की गायें लौटा लाते हैं। पर, अभिमान का उनके हृदय में लेश भी नहीं। इस विजय का वे अपने ऊपर श्रेय नहीं लेते। इससे बढ़कर उनके बाहुबल की प्रशंसा क्या हो सकती है कि शकुनि भी कह उठता है—'कः पार्थाद् बलवत्तरः'। अर्जुन के चरित्र की शालीनता तब अपने चरम उत्कर्ष को प्राप्त होती है जब उत्तरा के साथ शादी का प्रस्ताव वे ठुकरा कर कहते हैं—

इष्टमन्तःपुरं सर्वं मातृवत् पूजितं मया।
उत्तरैषा त्वया दत्ता पुत्रार्थे प्रतिगृह्यते ॥ अङ्क २

अभिमन्यु भी अपने पिता के समान वीर तथा स्वाभिमानी है। उसकी बातों से स्वाभिमान का दर्प द्योतित होता है। भीम का चरित्र भी वही तथा

उदात्त है। अन्य पात्रों का चरित्राङ्कन भी मर्यादा के अनुरूप हुआ है यद्यपि उनमें स्थानाभाव से विकास नहीं हो सका है।

समीक्षण

डा० ए. बी. कीथ ने पञ्चरात्र को रूपकों दश भेदों में 'समवकार' माना है। साहित्यदर्पण में समवकार का लक्षण निम्न प्रकार से दिया है—

धूर्त्तं समवकारे तु ख्यातं देवासुराश्रयम्।
सन्धयो निर्विमर्षास्तु त्रयोऽङ्कास्तत्र चादिमे॥ इत्यादि

यद्यपि भास के नाटकों में नाट्यशास्त्र से नियमों का कठोरता से पालन नहीं हुआ है पर, 'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति' के आधार पर इसे समवकार ही कहा जायेगा। कुछ विद्वानों के अनुसार यह व्यायोग नामक नाट्य प्रकार है।

काव्योत्कर्ष की दृष्टि से यह नाटक उत्तम कोटि का कहा जायेगा। सरल शब्दावली में भावोन्मेष भास की अपनी विशेषता है। शब्दों के आश्रय से भास ऐसा चित्र खड़ा कर देते हैं कि पूरा दृश्य ही सामने आ जाता है। शकुनि के मुख से 'ऊपरेऽप्यपि शस्य स्यान्नत्र राजा युधिष्ठिरः' की उक्ति बरबस हृदय को आकृष्ट कर लेती है। अलङ्कारों की सघटना भी नितान्त स्पृहणीय है। दुर्योधन की यज्ञ समृद्धि का वर्णन नाटककार ने बड़ी ही कुशलता के साथ किया है।

स्थान-स्थान पर सूक्तियाँ इस बारीकी के साथ दी गई हैं कि प्रभावोत्पादन में वे दूनी वृद्धि कर देती हैं। ये सूक्तियाँ बड़ी ही हृदयहारिणी हैं—'सति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः' 'मृतेऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति', 'नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते' इत्यादि।

पांच रातों में पाण्डवों का पता लग जाने पर उनका राज्य लौटाने की दुर्योधन की प्रतिज्ञा तथा पता लग जाने पर राज्य लौटा देना नाटककार की अपनी सूझ है। इस कल्पना के आश्रय से नाटककार ने दुर्योधन के चरित्र को उदात्त बनाने का प्रयत्न किया है और उसके सारे कल्मषों को धो डालने की कोशिश की है। इस कल्पना के द्वारा महाभारती आख्यान ने एक नया ही

ले लिया है। इस नाटक का प्रधान रस वीर है। शृंगार का इसमें पूर्णतः अभाव जो नाटक में स्त्रीपात्रों के न आने से हुआ है। संक्षेप में इसे भास का नाट्य चातुरी का एक ज्वलन्त उदाहरण कहा जा सकता है।

६—उरुभङ्ग

यह नाटक महाभारत युद्ध के अन्तिम अंश से सम्बन्ध रखता है। सारी कौरव तथा पाण्डव सेना युद्ध में विनष्ट हो चुकी है। केवल कौरव पक्ष में कुरुराज दुर्योधन बचा है। जिसके साथ पाण्डव भीम का गदायुद्ध होता है। प्रारम्भ में क्षत विक्षत वीरों वाली युद्धभूमि का सूत्रधार वर्णन करता है और दुर्योधन भीम के गदायुद्ध का संकेत करता है। इसके अनन्तर पुनः युद्धभूमि और क्षत्रियों की विनाशावस्था का विस्तृत विवरण है। फिर दर्शक के सामने भीम एवं दुर्योधन के गदायुद्ध का दृश्य आता है।

युद्धभूमि में अत्यन्त कुपित पराक्रमी भीमसेन तथा गदायुद्ध में निष्णात दुर्योधन परस्पर गदाओं का प्रहार कर रहे हैं। पाण्डवों तथा कृष्ण के अतिरिक्त हलधर बलराम भी दर्शकों की कक्षा में हैं। दोनों की गदाओं से वज्रपात जैसी कठोर कर्कश ध्वनि हो रही है। दोनों युद्ध की पैंतरेबाजियाँ भी भली भाँति प्रदर्शित कर रहे हैं। गदाओं की चोट से दोनों के शरीर खून से लथपथ हो रहे हैं। सहसा दुर्योधन के गदाघात से भीम मूर्छित होकर पृथ्वी पर आ जाते हैं।

भीम के गिरते ही विदुरादि खिन्न हो जाते हैं। उधर शिष्य के नैपुण्य से बलरामजी प्रसन्न हो रहे हैं। इसी समय भीम प्रकृतस्थ होते हैं। कृष्ण उन्हें कुछ गुप्त संकेत बताते हैं। भीम इससे उछल पड़ते हैं, उनमें नई शक्ति का संचार हो जाता है और पुनः गदायुद्ध प्रारम्भ होता है। इस बार मौका देखकर भीम गान्धारीनन्दन दुर्योधन की जंघा पर गदा मारते हैं। गदा प्रहार से दुर्योधन की जाँघें टूट जाती हैं और वह जमीन पर गिर पड़ता है, दुर्योधन को इस प्रकार गिरते देख बलरामजी कुपित हो उठते हैं और भीम को उनके भय से पाण्डव लोग घेरे में कर कृष्ण के साथ यहाँ से चल देते हैं। बलदेवजी क्रोध के मारे बोल उठते हैं—मेरे रहते ही मेरी अवहेलना

कर भीम ने मर्यादा के विपरीत दुर्योधन की जाघ पर गदा-प्रहार कर उसे गिरा दिया। अन्त में अपने हल से भीम का वक्षस्थल चीर डालूँगा।' तदनन्तर इन बातों को सुनकर दुर्योधन कहता है—'भगवन्! भीमसेन ने युद्ध-मर्यादा का ध्यान न कर गदा से मारकर मुझे गिरा दिया। मेरा शरीर जर्जर हो गया है। अब आप प्रसन्न होइये। पृथ्वी पर गिरा मेरा मस्तक आपके चरणों में प्रणाम कर रहा है। आप क्रोध छोड़िये जिससे कुरुकुल को जलाञ्जलि देने के लिये पाण्डव जीवित रहें। वैर, वैर की कथा और हम लोग तो अब नष्ट हो गये।'

बलराम ने कहा—'दुर्योधन! तुम क्षणमात्र तक जीवन को धारण करो जिससे मैं सबलवाहन पाण्डवों को मारकर तुम्हारी स्वर्गयात्रा में सहायक बना हूँ।'

दुर्योधन ने कहा—हलायुध! भीम की प्रतिज्ञा अब पूरी हो चुकी क्योंकि मेरे सौ भाई मारे गये तथा मेरी यह दशा हो गयी। अतः अब विग्रह से क्या लाभ?'

बलराम ने कहा—'दुर्योधन! मुझे इसी बात का क्षोभ है कि मेरे सामने तुम छल से मारे गये और वह छल भीम ने किया।' इस पर दुर्योधन ने कहा कि यदि आपको यह विश्वास हो कि मैं छल से मारा गया तो मुझे पूर्ण सन्तोष है। पर आपने जो यह कहा कि भीम ने छल से मुझे जीता वैसी बात नहीं। मुझे तो क्षीरसागरशायी, पारिजात वृक्ष के हरणकर्ता जगत्प्रिय भगवान् श्रीकृष्ण ने भीम की गदा में प्रविष्ट होकर काल का ग्रास बनाया।

इसी बीच वहाँ परिचरों एवं अन्य सम्बन्धियों के साथ धृतराष्ट्र-गान्धारी आते हैं। वे दोनों दुर्योधन को ढूँढ रहे हैं। वे कह रहे हैं कि छल से गदायुद्ध में दुर्योधन का मारा गया सुनकर मेरी आँखें और अन्धी हो गयीं। साथ ही वे क्रूर काल को भी कोसते हैं जिसने सौ पुत्रों में से एक को भी नहीं छोड़ा। धृतराष्ट्र को अब कोई तिलाञ्जलि देनेवाला न रहा। इस प्रकार प्रलाप करते हुए वे दुर्योधन के पास पहुँचते हैं। दुर्योधन से उनकी बातचीत होती है और वह उन्हें वीरोचित सान्त्वना देता है। वह अपनी स्त्रियों से कहता है कि 'वेदोक्त विविध यज्ञों से मैंने देवताओं को संतुष्ट किया,

को उचित आश्रय दिया और मेरे सो भाइयों ने शत्रुओं पर आधिपत्य रखा, आश्रितों को कभी मैंने निराश्रित नहीं बनाया, युद्ध में अठारह अक्षौहिणी सेनाओं के नृपति मेरे नियन्त्रण में रहे। अतः मेरे मान को देखकर तुम लोग शोक को छोड़ दो। ऐसे राजाओं की स्त्रियाँ नहीं रोतीं।' उसका दुर्जय के प्रति यह उपदेश भी कि 'तुम यह सोचकर दुःख छोड़ दो कि प्रशंसित शीलवाला तथा अभिमानी दुर्योधन तुम्हारा पिता था। जलाञ्जलि-दान के अवसर पर रेशमी वस्त्रों में ढँकी युधिष्ठिर की बायीं भुजा को छूकर मेरे नाम के अन्त में जल देना।'

इसी समय वहाँ गुरुपुत्र अश्वत्थामा का आगमन होता है। अश्वत्थामा अत्यन्त उत्तेजित है और वह दुर्योधन को ढूँढ रहा है। दुर्योधन से मिलते ही वह कह उठता है—'राजन्! गरुड़ की पीठ पर आरूढ़ तथा हाथ में शार्ङ्ग धनुष लिये हुए कृष्ण को मैं पाण्डुपुत्र अर्जुन के साथ मार डालूँगा।'

अश्वत्थामा की उत्तेजना पूर्ण बातों को सुनकर भूमिशायी दुर्योधन अत्यन्त विनयान्वित तथा समयोचित बात कहता है—'गुरुपुत्र! सारा राजसमाज पृथ्वी की गोद में सो गया, कर्ण दिवंगत हो चुका, गांगेय भीष्म का शरीर पात हो गया, मेरे सौ भाई संयुग में निहत हो गये तथा मेरी भी ऐसी दशा हो गयी अतः अब आप धनुष का त्याग कर दीजिये।'

अश्वत्थामा ने व्यंग से कहा—'राजन्! प्रतीत होता है भीम ने गदा का प्रहार तथा केश पकड़ कर आपकी जाँघों के साथ ही आपके दर्प को भी नष्ट कर दिया।'

अश्वत्थामा के व्यंग्य-वाणों के प्रहार से दुर्योधन उत्तेजित हो जाता है। वह बोल उठता है—'अश्वत्थामन्! बलपूर्वक मैंने भरी सभा में द्रौपदी के केश खींचे, अभिमन्यु को युद्ध में मरवाया तथा द्यूत में हराकर उन्हें वन्य पशुओं का सहचरी बनाया। इन अपमानों के सामने पाण्डव-कर्तृक मेरा अपमान थोड़ा ही है।'

दुर्योधन की बात सुनकर अश्वत्थामा ने कहा—'राजन्! मैं आपकी, अपनी तथा परलोक की शपथ खाकर कहता हूँ कि आज रात्रि-व्यूह रचना कर युद्ध में पाण्डवों को जला डालूँगा।'

अश्वत्थामा के कथन का दुर्योधन, बलदेव तथा धृतराष्ट्र अनुमोदन करते हैं। अश्वत्थामा पितृराज्य पर दुर्जय का अभिषेक करता है। दुर्योधन यह देखकर मृत व्यक्तियों का स्मरण करता हुआ महाप्रयाण करता है। धृतराष्ट्र बोल उठते हैं—'अब मैं मुनिजनों के धनभूत तपोवन को जा रहा हूँ। पुत्रों के नाश से विफल राज्य को धिक्कार है।' अश्वत्थामा कहता है—'मैं धनुष बाण लेकर सौप्तिकगणों के वध के लिये जा रहा हूँ।'

अन्त में भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटक का नामकरण—इस नाटक का सारा कथासूत्र केवल एक ही बात पर केन्द्रित है और वह है भीम द्वारा गदायुद्ध में दुर्योधन का ऊरुभङ्ग। ऊरुभङ्ग से पूर्व के सारे संवाद और कथावृत्त इसी ऊरुभङ्ग के दृश्य की ओर आकर्षण कर रहे हैं। नाटक का चरम परिपाक भी इसी घटना से सम्बद्ध है जब कि भगवान् श्रीकृष्ण के संकेत से भीमसेन छलपूर्वक दुर्योधन की जाँघ पर प्रहार करते हैं और उसे तोड़ डालते हैं। श्रीबलदेवजी का अमर्ष भी यहां उभरता है। तदनन्तर की सारी घटनायें यथा धृतराष्ट्र का शोक संवाद, अश्वत्थामा का आगमन, अमर्षपूर्ण उद्गार, दुर्योधन का उसे शान्त करना इत्यादि भी ऊरुभङ्ग से ही सम्बद्ध हैं। अतः नाटक का ऊरुभङ्ग नामकरण सार्थक तथा यथार्थ है।

चरित्राङ्कन—इस नाटक का नायक दुर्योधन है। उसके चरित्र विन्यास में नाटककार ने पर्याप्त कौशल प्रदर्शित किया है। महाभारतीय दुर्योधन की न्याईं वह शठ, दुर्विनीत तथा अहङ्कारी यहाँ नहीं प्रदर्शित किया गया है अपितु नाटककार ने उसके चरित्र को नितान्त उदात्त तथा मांसल रूप में प्रदर्शित किया है। वह शौर्य पराक्रम का जीवन्त प्रतीक है। उसका शरीर नितान्त सुपुष्ट तथा बलिष्ठ है। अस्त्र-कौशल में वह निष्णात है और इस दृष्टि से वह अपने प्रतिद्वन्द्वी भीम से अधिक कुशल है। उसके सुप्रयुक्त प्रहार से भीम विचलित हो उठते हैं और मूर्च्छित होकर धराशायी हो जाते हैं। यदि श्रीकृष्ण प्रेरित भीम अधर्म का आश्रय नहीं लेते तो यह स्पष्ट है कि जयश्री दुर्योधन को ही वरण करती। पर, भीम कैतव का आश्रयण कर

उसकी जाँघों को तोड डालते हैं और कुरुकुल का महान् शासक दुर्योधन जिसने १८ अक्षौहिणी सेना को अपने सकेत पर नर्तन कराया भूलुण्ठित हो जाता है।

यहाँ तक तो दुर्योधन के शौर्य पराक्रम वाले प्रश्न की बात रही। उसके भूशायी होने के बाद का चरित्र और भी प्रकृष्ट तथा प्रोज्ज्वल है। उसे अधर्म से मारा गया देख श्रीकृष्णाग्रज बलदेव, जो उसके गदायुद्ध के गुरु भी हैं अत्यन्त कुपित हो जाते हैं। व पाण्डवों का विनाश करने पर उद्यत हो जाते हैं। उस समय उन्हें युद्ध से विरत करते हुए दुर्योधन अत्यन्त विनयपूर्ण तथा नीति भरी बात कहता है—विग्रह या तो इसलिये किया जाता है कि शत्रु का अभीष्ट पूरा न हो, या सम्बन्धियों की जय प्राप्त कर आनन्द मिले अथवा आत्मसुख ही मिले। पर भीम ने तो अपनी सारी प्रतिज्ञायें पूर्ण कर लीं। भाइ बन्धु भी युद्ध म काम आये और मेरी यह दयनीय स्थिति रही। अत अब युद्ध से क्या सधेगा—

प्रतिज्ञावसिते भीमे गते भ्रातृशते दिवम्।
मयि चैव गते राम! विग्रहः किं करिष्यति॥ ३३॥

इसके बाद जब बलदेवजी कहते हैं कि तुम अधर्म या छल में मेरे सामने मारे गये तो दुर्योधन कहता है कि यदि आप यह मानते हैं कि मैं छल से हराया गया तो हार कर भी मेरी जीत हुइ है। यह वञ्चना वस्तुत भीम ने न कर श्रीकृष्ण ने की है।

दुर्योधन का धृतराष्ट्र, दुर्जय तथा रानियों से सवाद भी उसके चरित्र की महनीयता एवं कमनीयता के परिचायक हैं, धृतराष्ट्र स वह बड़ अत्यन्त धैर्य तथा पराक्रमपूर्ण उत्तर देता है। इस दयनीय अवस्था में भी उसका चित्त जरा भी विचलित नहीं हुआ है। वह कहता है—'पिताजी! जिस सम्मान से मैंने जन्म लिया था उसी सम्मान से जा रहा हूँ। मुझे जलता चिता का भी चिन्ता नहीं।' वह अपनी स्त्री मालवी स भी यही बात कहता है—'मालवि! गदाघात से मेरी भृकुटी भिन्न हो गयी है, वक्ष स्थल भी रुधिराप्लुत हो गया है पर तू इसलिये मत रो कि तेरा पति युद्ध में मारा गया है, वह पराङ्मुख

होकर युद्ध से भागा नहीं है।' उसमें शौर्य तथा अभिमान की भावना अन्तिम समय तक स्थिर है। जब अश्वत्थामा कहता है कि प्रतीत होता है उरुभङ्ग के साथ भीम ने तुम्हारा मान-भङ्ग भी कर डाला तो वह बोल उठता है—मेरे भरी सभा में द्रौपदी के केश को खींचा। द्यूत में हराकर पाण्डवों को बनैला पशु बना दिया और पूरे समर में सबके सामने अभिमन्यु को मारा। फिर उस अपमानना के सामने मेरी यह पराजय तो तुच्छ है।' (श्लोक ६३) परन्तु अभिमान और दर्प के प्रतीक के साथ ही साथ दुर्योधन शम-विनय का भी जीवन्त लक्ष्य है। वह दुर्जय से कहता है—

> श्लाघ्यश्रीरभिमानदीप्तहृदयो दुर्योधनो मे पिता
> तुल्येनाभिमुखं रणे हत इति त्वं शोकमेनं त्यज।
> स्पृष्ट्वा चैव युधिष्ठिरस्य विपुलं क्षौमापसव्यं भुजं
> देयं पाण्डुसुतैस्त्वया मम समं नामावसाने जलम् ॥५३॥

संक्षेप में दुर्योधन स्वाभिमानी, पराक्रमी तथा अदीन पात्र है।

दुर्योधन के अतिरिक्त अश्वत्थामा तथा बलराम का व्यक्तित्व भी अपने में महत्वपूर्ण है। अश्वत्थामा का चरित्र एकाङ्गी प्रतीत होता है। उसमें शौर्य-पराक्रम प्रदीप्त हो रहा है। वैराग्नि उसके हृदय से शान्त नहीं हुई है। वह पाण्डवों के समूलोच्छेद के लिये कृतसङ्कल्प है। वह युद्धाग्नि में पाण्डवों की अन्तिम आहुति डालना चाहता है। वीरता के अतिरिक्त उसमें विनयहीनता भी लक्षित होती है। इसलिये जब दुर्योधन विग्रह की समाप्ति के लिये उससे कहता है तो वह उसे भी खरी खोटी सुनाने से नहीं चूकता—

> संयुगे पाण्डुपुत्रेण गदापातकचग्रहे
> सममूरुद्वयेनाद्य दर्पोऽपि भवतो हृतः ॥ ६२ ॥

सबके अन्त में भी वह अपनी पाण्डवविनाश की बात से नहीं हटता और कहता है—

> भवता चात्मना चैव वीरलोकैः शपाम्यहम्।
> निशासमरमुत्पाद्य रणे धक्ष्यामि पाण्डवान् ॥ ६४ ॥

संक्षेप में वह क्रोधी, पराक्रमशील तथा दुराग्रही के रूप में दिखायी पड़ता है।

बलराम का चरित्र अपेक्षाकृत अधिक प्रशस्त प्रदर्शित किया गया है। यद्यपि वे भी अमर्षशील तथा क्रोधी दिखाये गये हैं पर, उनका क्रोध अधर्मयुद्ध देखकर उभरा है अतः यह न्याय्य कोटि में आ जाता है। उन्हें अपने शिष्य के विद्याकौशल पर अभिमान है। जब दुर्योधन को गदायुद्ध के आचार्य बलराम सामने ही भीमसेन छल से मार डालते हैं तो उनकी आँखें क्रोध से लाल हो जाती हैं, वे माला को समेटने लगते हैं तथा वस्त्र को कसने लगते हैं—

चलविलुलितमौलिः क्रोधताम्रायताक्षो
भ्रमरमुखविदिष्टां किञ्चिदुत्कृष्य मालाम्
असिततनुविलम्बिस्रस्तवस्त्रानुकर्षी
क्षितितलमवतीर्णः पारिवेषीव चन्द्रः ॥ २६ ॥

क्रुद्ध बलराम जी उस समय बोल उठते हैं—भीम ने शत्रु-विनाशक मेरे हल का ख्याल नहीं किया, युद्ध में छल करते हुये उसने मेरा स्मरण नहीं रखा तथा दुर्योधन को छल से गिराते हुये उसने अपने कुल की विनय को भी ध्वस्त कर दिया—

मम रिपुबलकालं लाङ्गलं लङ्घयित्वा
रणकृतमतिसन्धिं मां च नावेक्ष्य दर्पात् ।
रणशिरसि गदां तां तेन दुर्योधनोर्वोः
कुलविनयसमृद्ध्य पातितः पातयित्वा ॥ २७ ॥

इस प्रकार बलराम धर्मयुद्ध के प्रेमी, वीर तथा उग्र स्वभाव के दर्शाये गये हैं।

धृतराष्ट्र और गांधारी का चरित्र विशेष विकास नहीं पा सका है और उसमें करुणा का प्राधान्य है।

समीक्षण—संस्कृत नाटक-साहित्य में ऊरुभङ्ग अपना विशिष्ट स्थान रखता है। संस्कृत नाट्यशास्त्र में दुःखान्त नाटकों का निषेध किया गया है। पर, यह नाटक इस निषेध के विपरीत दुःखान्त है। दुर्योधन की मृत्यु रङ्गमञ्च पर ही होती है। युद्धादि की घटना भी जो कि शास्त्रीय दृष्टि से निषिद्ध है रङ्गमञ्च पर की गई है। इससे यह स्पष्ट अवभासित होता है कि इस नाटक का प्रणयन इन परम्पराओं के प्रचलन से ऊर्ध्वतर काल में हो चुका

था। दुर्योधन के दुर्जय नामक पुत्र की अवतारणा भी नाटककार की अपनी विशेषता है। इस पात्र की कल्पना स्वयं भास ने की है, महाभारतकार को इसका पता नहीं। इसी प्रकार इस नाटक में अन्य भी कई महत्त्वपूर्ण नवीन तथ्यों को नाटककार ने समाविष्ट किया है जिनका महाभारत में अभाव है।

उरुभंग एक अनन्य प्रशस्त रूपक है। भरत-नाट्यशास्त्र के निर्देशों के विपरीत भी होने पर इसके महत्त्व में जरा भी अन्तर नहीं आता। नाटकीय कौशल की दृष्टि से यह नाटक श्लाघ्य है। कथनोपकथनों में स्वाभाविकता का अभाव न विद्यमान है। समय और पात्र के अनुकूल ही वार्तालापों की रचना की गई है। दुर्योधन के उरुभग हो जाने पर बलदेव जी की चेष्टाओं तथा कथनों में पर्याप्त स्वाभाविकता है। साथ-साथ उनके स्वभाव की भी स्पष्ट झलक मिल जाती है। निम्न पद्य में अमर्ष तथा वीररस का अद्भुत परिपाक हुआ है—

> सौमोच्छिष्टमुखं महासुरपुरप्राकारकूटाङ्कुरं
> कालिन्दी जलदेशिकं रिपुबलप्राणोपहारार्चितम्।
> हस्तोत्क्षिप्तहलं करोमि रुधिरस्वेदार्द्रपङ्कोत्तरं
> भीमस्योरसि यावदद्य विपुले केदारमार्गाकुलम्॥ २८॥

इसी प्रकार दुर्योधन के उत्तर भी नितान्त मर्यादित तथा शौर्यान्वित हैं। परिपाकन में नाटककार ने विशेष सावधानी बरती है। अपने चरितनायक को वह निम्न मानभूमि में अधिष्ठित करना नहीं चाहता इसीलिए महाभारतीय कथा में परिवर्तन कर वह उसे उदात्त तथा प्रतिष्ठित भूमि पर प्रतिष्ठापित करता है। अश्वत्थामा में कुछ औद्धत्य अवश्य है, पर नाटक में उसका व्यक्तित्व विशेष निखर नहीं सका है। यही कारण है कि वह दर्शकों पर अपना कोई विशेष प्रभाव नहीं छोड़ता।

रस की दृष्टि से भी नाटककार को पर्याप्त साफल्य मिला है। नाटक में करुण तथा वीररस परस्पर अनुस्यूत हैं। यदि गदायुद्ध, बलदेव के कथन तथा अश्वत्थामा के उद्गारों में वीररस की स्थिति है तो धृतराष्ट्र और गान्धारी के कथनों, दुर्जय के वार्तालाप तथा दुर्योधन की मृत्यु में करुण की भी सत्ता है। इन दोनों रसों के चित्रण में लेखक को पर्याप्त सहायता मिली है।

७—अभिषेक नाटक

अभिषेक नाटक भास के उन दो नाटकों में से है जो रामकथा पर आधृत हैं। अन्य रामकथा पर आश्रित नाटक है प्रतिमा। नाटक का आरम्भ किष्किन्धा प्रदेश में होता है। भगवान् श्रीरामचन्द्र की धर्मपत्नी सीता का हरण हो गया है और बालि ने अपने अनुज सुग्रीव को राज्य से निर्वासित कर उसकी पत्नी तथा धन का हरण कर लिया है। दोनों में मैत्री स्थापित हुई है और बालि को मारने की श्रीराम ने प्रतिज्ञा की है। राम ने सात सालवृक्षों को एक ही बाण से गिराकर धराशायी कर दिया। उनके इस पराक्रम से सुग्रीव को यह निश्चय हो गया कि इनके द्वारा बालि का वध हो जायगा। राम, लक्ष्मण तथा हनूमान के साथ सुग्रीव किष्किन्धा में जाकर बालि का युद्ध के लिये आह्वान करता है। परोत्कर्षासहिष्णु वानरराज बालि उस उत्तेजक आह्वान को सुनकर युद्ध के लिये निकलना ही चाहता है कि उसकी पत्नी तारा उसे रोक लेती है और नाना प्रकार से उसे समझाने का प्रयत्न करती है। बालि उसके कहे को नहीं मानता और उसे ढाढ़स बँधा कर युद्ध करने चला जाता है। बालि और सुग्रीव परस्पर युद्ध करने लगते हैं और श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण तथा हनूमान् के साथ युद्ध को देखते हैं। युद्ध में बालि को सबल पड़ता देख हनूमान् जी श्रीराम को उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाकर सुग्रीव की दयनीय अवस्था को बताते हैं। श्रीराम बाण छोड़ते हैं और उससे विद्ध होकर बालि धराशायी हो जाता है। बालि को कुछ समय तो मूर्च्छा रहती है। सचेत होने पर वह राम के बाण को देखता है और उस पर श्रीराम का नाम खुदा हुआ पाता है। सामने राम को देख कर वह कहता है—'हे राम! आप राजधर्म पर आरूढ़ हैं तथा धर्म के स्वरूप को भी आप निश्चित रूप से जानते हैं। आप वीर हैं तथा छल प्रपञ्च को दूर करने वाले हैं। तो फिर क्या मुझे इस तरह से अन्याय से मारना आपके लिये उचित था? आपने यशस्वी तथा वीर होकर भी मुझे छल से मारा और अपकीर्ति के पात्र बने।'

राम कहते हैं, 'बालि! तू अगम्या-गमन के कारण दोषी है। तू ने धर्माधर्म का विवेक होने पर भी भ्रातृनारी का अभिमर्षण किया है। अतः तुम वध्य हो।'

बालि कहता है कि तब तो सुग्रीव ने भी भ्रातृदाराभिमर्षण किया है अतः वह वध्य क्यों नहीं हुआ ? राम यह कह कर उसे निरुत्तर कर देते हैं कि ज्येष्ठ भाई की स्त्री का अभिमर्षण कहाँ-कहाँ होता है।

इसी समय स्त्रियाँ तथा कुमार अङ्गद भी वहाँ पहुँचते हैं। अङ्गद को बालि राम तथा सुग्रीव के हाथों सौंप देता है। बालि इसके बाद प्राणों का त्याग कर देता है। राम सुग्रीव का अभिषेक करने के लिये लक्ष्मण को आज्ञा देते हैं।

द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में यह पता चलता है कि सभी दिशाओं में सीतान्वेषण के लिये प्रेषित बन्दर तो लौट आये पर, दक्षिण दिशा से अभी नहीं आये। यह भी पता चलता है कि जटायु से सीता का समाचार सुनकर हनूमान् ने समुद्र को पार कर लिया है। इसके बाद लङ्का का दृश्य प्रारम्भ होता है। सीता राक्षसियों से घिरी हुई हैं और वे विलाप कर रही हैं। हनूमान् भी इसी समय सामने आते हैं। चारों तरफ ढूँढने के बाद राक्षसियों से घिरी सीता को देखते हैं। अशोकवृक्ष के कोटर में बैठ कर वे वहाँ का वृत्तान्त देखते हैं। रावण नाना प्रकार से सीता को समझाता है और अपनी प्रणयिनी बनाने का प्रयास करता है पर सीता उसे अस्वीकार कर देती हैं। इसी समय स्नानवेला होने से रावण चला जाता है। हनूमान् जी अच्छा अवसर जान कर उसी समय सीता जी से राम का समाचार बताते हैं और उनकी वियोगजन्य अवस्था का वर्णन करते हैं। पहले तो सीता जी को प्रत्यय नहीं होता, पर राम का सुग्रीव के साथ सख्य वृत्तान्त सुनकर विश्वस्त हो जाती हैं। हनूमान् जी राम को लाने का विश्वास देकर सीता जी से अनुमति लेकर चल देते हैं। पर, बीच में सोचते हैं कि रावण को अपने आगमन की सूचना देने के लिये त्रिकूट उपवन को उजाड़ना चाहिये।

तृतीय अङ्क में हनूमान् के उपवन-विध्वंस का वृत्तान्त शङ्कुकर्ण नामक चर रावण से कहलवाता है। रावण तुरन्त उस वानर को बाँधकर लाने की आज्ञा देता है। पर शङ्कुकर्ण लौट कर बताता है कि ज्योंही पाँच सेनापति उस वानर को पकड़ने के लिये गये उसने पाँचों को मार डाला और उसने आगे बढ़ रहे कुमार अक्ष को भी मुट्ठी से मार डाला। रावण यह सुनकर स्वयं पकड़ने चलने लगता है, पर शङ्कुकर्ण कहता है कि इन्द्रजित् उसे पकड़ने चले

गये हैं अतः आपके जाने की आवश्यकता नहीं। फिर रावण से यह बताया जाता है कि इन्द्रजित् ने युद्ध में उस बन्दर को बाँध लिया। इसी समय रावण विभीषण को बुलाता है। हनूमान् को लेकर राक्षस भी आ जाते हैं। हनूमान् अपने को राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्र का दूत बताते हैं। वे राम का अनुशासन सुनाते हुये कहते हैं कि चाहे शङ्कर की शरण में जाओ या गिरिकन्दरा में प्रविष्ट हो जाओ पर राम के बाण तुम्हें यमालय अवश्य भेज देंगे। हनूमान् की बात का विभीषण भी समर्थन करते हैं और श्रीराम पत्नी सीताको लौटा देने के लिये रावण से प्रार्थना करते हैं। रावण इस पर रुष्ट हो जाता है तथा विभीषण और श्रीराम दोनों को खरी-खोटी सुनाता है। उत्तर में हनूमान् जी रावण का कटु वचनों से सत्कार करते हैं। रावण उन्हें निकलवा कर बाहर भेज देता है। विभीषण पुनः उसे सीता देने तथा राक्षसकुल की रक्षा का उपदेश देता है। रावण रुष्ट होकर उसे भी निकाल देता है और विभीषण राम की शरण में जाने के लिये चल देता है।

चतुर्थ अङ्क राम के शिविर में आरम्भ होता है। हनूमान् से सीता का सन्देश पाकर सन्नद्ध वानरवाहिनी समुद्र के तट पर आकर खड़ी हो गयी है। आगे जाने का अब कोई मार्ग नहीं इसी समय आकाश से विभीषण उतरते दिखायी पड़ते हैं। उसे देखकर सब वानर चौंक जाते हैं और सावधानी से प्रतीक्षा करने लगते हैं। इसी समय विभीषण नीचे आता है और हनूमान् उसे पहचान लेते हैं। वे श्रीरामचन्द्र से जाकर इसके आने का समाचार देते हैं और कहते हैं कि आपके ही लिये यह निकाला गया है।

विभीषण को सत्कार के साथ राम आश्रय देते हैं। समुद्र पार होने के लिये मंत्रणा होती है और विभीषण कहता है कि यदि समुद्र मार्ग नहीं देता तो इस पर दिव्यास्त्रों का प्रयोग कीजिये। राम ज्यों ही शरसन्धान के लिये उद्यत होते हैं त्यों ही भीत वरुण वहाँ प्रकट होते हैं और समुद्र के बीच से मार्ग देते हैं। समुद्र का जल बीच में सूख जाता है और सारी सेना पार हो जाती है। सेना का शिविर सुवेल पर्वत पर बनता है।

सेना की गिनती होने पर दो बन्दर अधिक मिलते हैं। वे राम के सामने लाये जाते हैं। वे अपने को कुमुद का सेवक कहते हैं। पर विभीषण उन्हें

पहचान लेता है और बताता है कि ये शुक और सारण राक्षस हैं। राम उनके द्वारा रावण को यह सन्देश देकर विदा करते हैं कि मैं युद्ध का अतिथि बनकर आ गया हूँ।

पञ्चम अङ्क के प्रारम्भ में काञ्चुकीय के द्वारा यह पता चलता है कि युद्ध प्रारम्भ हो गया है और कुम्भकर्ण आदि प्रमुख वीर युद्ध में मारे जा चुके हैं। इन्द्रजित् लड़ने के लिये निकल चुका है। रावण के निर्देश से विद्युज्जिह्व नामक राक्षस राम तथा लक्ष्मण के शिर की प्रतिकृति लाता है। राक्षसीगणों से परिवृता सीता के पास रावण जाता है और कहता है कि 'राम लक्ष्मण मेरे द्वारा युद्ध में आज मारे जायेंगे तू मेरा वरण कर।' सीता उसका तिरस्कार करती हैं। इसी समय राक्षस आकर राम-लक्ष्मण के शिर की प्रतिकृति लाकर प्रस्तुत करता है। सीता उसे देखकर विलाप करने लगती हैं। इसी अवसर पर एक राक्षस आकर निवेदन करता है कि उन तापसों ने इन्द्रजित् को मार डाला। इस महान् अप्रिय समाचार को सुनकर रावण मूर्च्छित हो जाता है और सचेत होने पर विलाप करने लगता है। वह क्रुद्ध होकर सीता को ही मारने के लिये उद्यत होता है पर राक्षस जो उपस्थित है उसको स्त्री-वध से रोकता है। रावण युद्ध के लिये चल देता है।

षष्ठ अङ्क में राम-रावण के युद्ध का दृश्य है। तीन विद्याधर उस युद्ध को देखते हुये उसका वर्णन कर रहे हैं। राम-रावण के भयानक युद्ध में दोनों वीर लड़ रहे हैं। राम के लिये इन्द्र-सारथि मातलि दिव्य रथ लाता है जिस पर चढ़कर वे रावण को मार डालते हैं। विभीषण राज्य का अधिकारी होता है। सीता राम के समीप आती हैं। पर, राम उन्हें शत्रुओं के स्पर्श से सकल्मषा समझ कर दूर रखते हैं। अपने पातिव्रत्य के परीक्षण के लिये सीता अग्नि में प्रवेश करती हैं। वे अग्नि में प्रविष्ट होकर और दीप्तिमती हो जाती हैं और अग्निदेव उन्हें लेकर बाहर आते हैं और सीता को निष्पाप बताते हैं। नेपथ्य में दिव्य गन्धर्व भगवान् श्रीराम को साक्षात् नारायण कहकर स्तुति करते हैं। समस्त देवता, देवर्षि और ऋषिगण भगवान् राम का अभिषेक करते हैं। भरत, शत्रुघ्न और प्रजाजन भी उपस्थित होते हैं। अभिषेक के अवसर पर

दशरथ जी भी वहाँ उपस्थित रहते हैं। भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटक का शीर्षक—इस रूपक का शीर्षक अभिषेक नाटक बड़ा सटीक है। इस नाटक में दो अभिषेक हैं। एक तो सुग्रीव का और दूसरा श्रीरामचन्द्र का। इस नाटक की अन्तिम परिणति राम के राज्याभिषेक में होती है जो कि इस नाटक का फल भी है अतः उसी के आधार पर इस नाटक का नामकरण हुआ है।

नाटक का आधार—अभिषेक नाटक का आधार किष्किन्धाकाण्ड से प्रारम्भ कर लङ्का काण्ड के उत्तरार्ध तक की कथा है। कथा बहुचर्चित तथा सुपरिचित है। कथानक को सजाने सँवारने में नाटककार ने पर्याप्त मौलिकता का परिचय दिया है। बालि-वध को न्याय्य रूप देने का भी नाटककार ने पर्याप्त प्रयास किया है। दो स्थानों पर कवि ने अपनी नवीन सूझ उड़ायी है। पहला तो है समुद्र का मार्ग देना। प्रचलित कथाओं के अनुसार श्रीराम ने नल नील की सहायता से समुद्र पर सेतु बाँधा जिससे वानर-सेना पार हुई। पर, इस नाटक में भीत वरुणदेव ने समुद्र के जल को बीच से सुखाकर मार्ग दे दिया है। जटायु और राम का मिलन भी प्रचलन के अनुसार सुग्रीव के साथ सख्य से पूर्व ही हो चुका था पर इस नाटक में संकेत किया गया है कि जटायु से समाचार जानकर हनुमान् जी ने समुद्र पार किया। हो सकता है इनका अन्यत्र कहीं आधार नाटककार को मिला हो।

चरित्राङ्कन—इस नाटक के नायक मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र हैं। जैसा कि विद्याधरों, अग्निदेव, वरुणदेव आदि के कथनों से पता चलता है वे साक्षात् विष्णु के अवतार हैं तथा सृष्टि की सर्जना, पालन और विसृष्टि के कर्ता हैं। पृथ्वी पर धर्म की संस्थापना ही उनका उद्देश्य है। इसीलिये वे बालि का वध करते हैं। लोकोपदेश उनके चरित्र का प्रधान भाग है। सीता को निष्कलंक जानने पर भी वे तब तक उन्हें अङ्गीकार नहीं करते जब तक अग्नि में उनकी परीक्षा नहीं हो जाती। अमीरता उनके प्रत्येक शब्दों में द्योतित होती है। जब विभीषण शरणागत होकर आता है तो सुग्रीव उसपर नियंत्रण रखने की इच्छा प्रकट करते हैं क्योंकि निशाचरी माया से सदैव

सतर्क रहना चाहिये। पर, श्रीरामचन्द्र उनके इस प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं करते। यही अवस्था शुक सारण नाम वाले राक्षसों के पकड़े जाने पर होती है। वे वानर-वेश बनाकर राम के सैन्य-सञ्चार की गतिविधि का पता लगाने आते हैं और वानरों की गणना के समय पकड़ जाते हैं। लोगों की इच्छा उन्हें दण्ड देने की है पर, श्रीराम उन्हें छुड़ा देते हैं। वे सोचते हैं कि इन नगण्य जीवों को मारकर मेरी न तो कोई उन्नति होगी और न रावण की हानि अतः इन्हें मारना व्यर्थ ही है। वे यह भी उनसे कहते हैं कि मैंने स्वयं यह युद्ध नहीं ठाना है बल्कि रावण ने मेरी स्त्री का हरण कर मुझे युद्ध का निमन्त्रण दिया है।

लक्ष्मण का चरित्र इस नाटक में विशेष प्रस्फुटित नहीं हो पाया है। वे श्रीराम के एक आज्ञाकारी सेवक तथा विनीत भक्त के रूप में सामने आते हैं। जैसा राम का निदेश होता है वैसा सद्यः निष्पन्न कर देते हैं। जब राम द्वारा सीता के परीक्षण का प्रस्ताव किये जाने पर वैसा करना उन्हें उचित नहीं जचता। पर, आज्ञा का वे पालन करते हैं। अपनी असमर्थता भी स्पष्ट शब्दों में वे कहते हैं—

'निष्फलो मम तर्कः। अथवा यथार्थग्राहिणामार्यबुद्धीनाम्। गच्छामस्तावत्!'—अङ्क ६।

की मित्रता वे ही सम्पन्न कराते हैं तथा बालि-वध के लिये भी श्रीराम को वे ही प्रेरित करते हैं। समुद्र पार कर सीता का अन्वेषण करते हैं तथा राम का परिचय देने के निमित्त रावण के उपवन को ध्वस्त करते हैं। वहाँ अपनी निर्भाकता का पूर्ण परिचय देते हैं। राक्षसों के बीच उनके बल का अतिक्रमण कर उन्हें सन्त्रस्त करना साधारण बूते की बात नहीं।

जब विभीषण शरणागत होता है तो बानर उसके प्रति सशङ्क दृष्टिगत होते हैं। उस समय हनूमान् जी उन्हें शान्त करते हैं और कहते हैं—'देवे यथा वयं भक्तास्तथा मन्ये विभीषणम्।' संक्षेप में उनका चरित्र नितान्त उदात्त है।

विभीषण न्यायप्रिय भगवद्भक्त के रूप में अङ्कित किया गया है। दूसरे की स्त्री का हरण नितान्त अनुचित तथा अधर्मसम्मत है। इसीलिये वह अपने बड़े भाई रावण से विवाद करता है और परिणामस्वरूप देशनिकाला होता है। वह महान् अनुभवी तथा कुशल उपदष्टा के रूप में आता है। आते ही वह श्रीरामसे कहता है कि यदि समुद्र मार्ग नहीं देता तो दिव्यास्त्रों के प्रयोग से इसे सन्त्रस्त कीजिये। राम वैसा ही करते हैं और उन्हें मार्ग मिल जाता है। शुक-सारण राक्षसों को भी विभीषण ही पहचानता है। राम की लङ्का विजय का वह एक प्रमुख सहायक है।

रावण क्रूर, दुराचारी तथा परस्त्री लपट के रूप में चित्रित किया गया है। न्याय्य मार्ग का उल्लघन कर वह श्रीरामचन्द्र जी की धर्मपत्नी सीताजी को हर लाया है। वह बड़ी ही क्रोधी प्रकृति का है और हितोपदेशी विभीषण को राज्य से बाहर निकाल देता है। इसी प्रकार एक बार वह सीता को मारने के लिये भी उद्यत हो जाता है और बहुत समझाने पर मानता है। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये वह उचित अनुचित कुछ भी कर सकता है। सीता को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये वह राम लक्ष्मण की मायामय आकृति तैयार कराता है और उन्हें मारा गया दिखाता है। इतने अवगुणों तथा क्रूर राक्षसी स्वभाव होने पर भी उसे अपने बाहुबल पर अटूट विश्वास और इसी विश्वास के बल पर अन्तिम समय तक युद्ध कर वीरगति को प्राप्त होता है।

समीक्षण

अभिषेक नाटक के प्रणयन में भास ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है।

यद्यपि काव्य तथा नाटकीयता की दृष्टि से यह नाटक प्रतिमा नाटक की अपेक्षा अवर कोटि का है तथापि इस नाटक की अपनी विशेषतायें हैं। राम-रावण युद्ध अपनी विशिष्टता में बेजोड़ है। रावण की चारों तरफ से पराजय होती है। सीता को मायामय राम-लक्ष्मण की प्रतिकृति दिखा कर वश में करना चाहता है पर इसमें उसे सफलता नहीं मिलती। दूसरे ठीक इसी समय उसे मेघनाद के वध का दुःखद समाचार मिलता है और अन्ततोगत्वा वह स्वयं युद्ध में पराजित होता है। इस प्रकार नाटककार ने रावण-वध की एक पीठिका प्रस्तुत की है जिस पर अन्तिम बार रावण की समाप्ति होती है।

पात्रों का कथनोपकथन भी प्रभावुक बन पड़ा है। छोटे-छोटे तथा सरल वाक्यों का विन्यास भास की अपनी विशेषता है और उस विशेषता का दर्शन यहाँ भी होता है। कथोपकथनों से सारा दृश्य प्रस्तुत हो जाता है और दर्शकों को उसे हृदयङ्गम करने में कठिनाई नहीं रहती। कथनोपकथनों में कहीं-कहीं भास ने ऐसी निचिनता उत्पन्न कर दी है कि दर्शक उन्हें सुनकर दंग रह जाते हैं। उदाहरणार्थ जब रावण सीता से कहता है कि—

व्यक्तमिन्द्रजिता युद्धे हते तस्मिन् नराधमे।

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा येन त्वं मोक्षयिष्यसे॥ अङ्क ५, १०॥

ठीक उसी समय नेपथ्य से ध्वनि आती है—'रामेण-रामेण।' और यह भी पता चलता है कि इन्द्रजित युद्ध में मारा गया। दर्शकों की वृत्ति एक दूसरी ओर इस कौशल से मोड़ दी गयी है कि जिसकी कोई सम्भावना तक नहीं था।

वैसे इस नाटक का प्रधान रस तो वीर ही है जो समग्र नाटक में व्याप्त है पर करुण रस भी यत्र-तत्र अनुस्यूत है। इसकी सत्ता वालिवध के अनन्तर, सीता के सन्ताप आदि में देखी जा सकती है। शृंगार का इसमें अभाव है और उसके लिये कहीं अवसर भी नहीं आया है।

वस्तुतः इस नाटक के माध्यम से नाटककार रामकथा को दर्शाना चाहता था अब नाटकौशल का प्रस्फुटन सम्यक्रूपेण नहीं हो सका है। नाटकीयता की दृष्टि से इसमें कोई कोर-कसर नहीं है।

८—बाल-चरित

यह नाटक भगवान् श्रीकृष्ण की बाललीलाओं पर आधृत है। पुराणों में

यह प्रसङ्ग बहुचर्चित है। विशेषतः श्रीमद्भगवत महापुराण का तो यही सार है। यह नाटक पाँच अंकों में विभक्त है। प्रथम अंक में भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म वर्णित है। देवर्षिगण आकाश में स्थित होकर भगवान् के जन्मधारण के समय कोलाहल करते हैं। नारद जी भी उपस्थित हैं। भगवान् जन्म लेते हैं। अर्धरात्रि का सुनसान समय है। सारे प्राणी निद्रित हो चुके हैं। वसुदेव उस अद्भुत बालक को लेकर मथुरा से बाहर निकलते हैं। सघन अंधकार में कहीं मार्ग नहीं सूझता। उस बालक को लेकर वे यमुना के किनारे पहुँचते हैं। यमुना नदी जल से पूर्णतः भरी है। कहीं नाव-बेड़े का भी प्रबन्ध नहीं है। अन्ततोगत्वा वसुदेव तैर कर ही नदी को पार करना चाहते हैं। इसी समय एक आश्चर्यजनक घटना घटित होती है। यमुना का जल दो मार्गों में विभक्त हो जाता है, बीच में मार्ग बन जाता है। वसुदेव उसी मार्ग से यमुना को पार करते हैं। नदी पार कर वे कहाँ जायँ यह सोचते हैं। सोचते सोचते उन्हें नन्द गोप का स्मरण आता है जिसका उन्होंने एक बार उपकार किया था। कंस ने नन्द को बाँध कर कोड़े लगाने की सजा दी थी। वसुदेव ने उसे बाँधा तो सही पर कोड़े नहीं लगाये। पर, इस सघन रात्रि में वहाँ जाना भी ठीक नहीं, अतः वे न्यग्रोध वृक्ष के नीचे बैठ जाते हैं। प्रभात वेला में नन्द के यहाँ जाने का निश्चय करते हैं।

दैव की लीला ही कुछ विचित्र है। इसी रात नन्दगोप की स्त्री यशोदा ने एक कन्या उत्पन्न किया। प्रसव वेदना से वे मूर्च्छित हो गयीं। उन्हें पता भी नहीं कि पुत्री उत्पन्न हुई या पुत्र। कन्या भी उत्पन्न होते ही मर गयी। उसी को लेकर वे यमुना में विसर्जित करने आते हैं। वे तर्क वितर्क और सन्ताप कर रहे हैं जिसे सुनकर वसुदेव उन्हें पहचान लेते हैं। वसुदेव उन्हें पुकारते हैं। पहले तो नन्द भूत आदि की आशंका कर नहीं आते पर बाद में वसुदेव को पहचान कर आते हैं। वसुदेव उन्हें अपनी रामकहानी सुनाकर बालक को ले जाने का प्रस्ताव करते हैं। कंस के भय से नन्द उस बालक को ले जाने के लिये उद्यत नहीं होते पर जब वसुदेव अपने उपकार का स्मरण दिलाते हैं तो नन्द बालक को ले जाते हैं। वसुदेव भी उस कन्या को लेकर मथुरा लौटते हैं। लौटते समय उस कन्या में प्राण का सञ्चार होता है। विष्णु के आयुध

तथा गरुड भी बालगोपों का वेश रखकर उनकी सहायता के लिए अवतीर्ण होते हैं। यमुना का जल उसी प्रकार दो भागों में विभक्त है। वसुदेव नदी पार कर मथुरा में आते हैं। सभी लोग पूर्ववत् सोये हैं। वे अपने घर में चले जाते हैं।

द्वितीय अङ्क कंस के राजमहल से प्रारम्भ होता है। उसे चाण्डाल युवतियाँ दिखायी पड़ती हैं जो उसके साथ परिहास करती हैं। कंस उन्हें खदेडता है कि मधूक ऋषि का शाप अलक्ष्मी, खलति, कालरात्रि, महानिद्रा और पिङ्गलाक्षि के साथ प्रवेश करता है। कंस कहता है कि तुम हमारे यहाँ नहीं आ सकते। कंस की राजलक्ष्मी भी उन्हें रोकती हैं पर, विष्णु की आज्ञा समझ स्वयं ही चली जाती हैं और सपरिचर शाप कंस के शरीर में प्रविष्ट होता है। कंस ज्योतिषियों तथा पुरोहित से पूछता है कि रात में भूमिकम्प, उल्कापात, आँधी तथा देवमूर्तियों के जो दर्शन हुए हैं उनका क्या फल होनेवाला है। ज्योतिषी बताते हैं कि कोई दैवी प्राणी लोकोपकार के लिये भूतल पर अवतरित हुआ है। राजा कञ्चुकीय को पता लगाने के लिये भेजता है कि आज रात को किस व्यक्ति के यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ है। कञ्चुकीय पता लगाकर बताता है कि देवकी को कन्या हुई है। पहले तो कंस को यह विश्वास नहीं होता कि कन्या हुई है पर कञ्चुकीय के शपथ लेने पर उसे विश्वास हो जाता है।

कंस वसुदेव को बुलाता है। वसुदेव तर्क वितर्क करते हुए आते हैं और कंस से कहते हैं कि देवकी को कन्या हुई है। कंस उस कन्या को मँगाता है। धात्री उस कन्या को लेकर आती है और कंस उसे कंसशिला पर पटक देता है। उसका एक भाग तो जमीन पर गिरता है पर एक तेजोमय अंश आकाश में उड जाता है और त्रिशूल लेकर कात्यायनी के रूप में दिखायी पड़ता है। कात्यायनी के साथ कुण्डोदर, शूल, नील तथा मनोजव नामक उसके परिवार के सदस्य भी हैं। भगवती कात्यायनी कंस का नाश करने को कहती हैं। यही बात कुण्डोदर, शूल, नील तथा मनोजव भी कहते हैं।

तृतीय अङ्क में गोपालगण गौओं को चराते हुए श्रीकृष्ण की पराक्रम गाथा गा रहे हैं। नन्दगोप के यहाँ बालक का जन्म होने से गोधन में महान् वृद्धि हुई है। उस बालक की अपूर्व पराक्रमशालिता से सभी लोग आश्चर्या-

न्वित हो गये हैं। उसने बचपन में ही पूतना, शकट, धेनुक, केशी आदि दानवों का वध कर डाला तथा यमलार्जुन को गिरा दिया। संकर्षण बलदेव ने प्रलम्ब नामक असुर का वध कर दिया। गोपालों तथा गोपकन्याओं के साथ श्रीकृष्ण हल्लीसक नृत्य करते हैं। इसी समय अरिष्टवृषभ नामक दानव वहाँ आता है और गौओं को सन्ताप देना शुरू करता है। कृष्ण गोप गोपिकाओं को अलग हटाकर उस दानव से भिड जाते हैं तथा उसका वध कर डालते हैं। अरिष्टवृषभ के मारे जाने पर बलरामजी ने देखा कि कालियनाग कालियह्रद से ऊपर उठ आया है। वे उसका दर्पप्रशमन करने के लिये उधर दौडते हैं। जब श्रीकृष्ण को यह समाचार विदित होता है तो वे भी उधर चल देते हैं।

चतुर्थ अंक में भगवान् श्रीकृष्ण कालियह्रद में प्रवेश करना चाहते हैं, और गोपिकायें उन्हें जलाशय में प्रवेश न करने का अनुरोध करती हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सभी को सान्त्वना देकर ह्रद मे प्रविष्ट हो जाते हैं। बलरामजी सभी को शान्त करते हैं। कालिय और श्रीकृष्ण में वाग्युद्ध होता है तथा भगवान् उसके फणों पर आरूढ हो जाते हैं। कालिय उन्हें भयकर विषज्वाल से भस्मसात् करने की कोशिश करता है पर असफल रहता है और भगवान् उसका दमन कर डालते हैं। कालिय भगवान् का शरणागत होता है और कहता है कि आपके वाहन गरुड के भय से ही मैं यहाँ आया हूँ। भगवान् कहते हैं कि 'तेरे फण पर मैंने अपने चरणों का चिह्न बना दिया है अब तुझे गरुड सन्ताप नहीं देंगे। कालिय सपरिजन ह्रद से निकल कर चला जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण भी गोप गोपियों से आकर मिलते हैं। इसी समय कंस के यहाँ से भट आता है और श्रीकृष्ण से कहता है कि मथुरा में 'धनुर्यज्ञ' हो रहा है जिसमें कंस ने आप लोगों को सपरिजन बुलाया है। भगवान् श्रीकृष्ण कंस को मारने की दृष्टि से सद्य उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते हैं।

पञ्चम अङ्क में कंस कृष्ण बलराम को पहलवानों से मरवाने की बात सोचता है। इसी समय युद्धसेन नामक भट आकर कहता है कि दामोदर तथा बलराम ने नगर में प्रविष्ट होते ही धोबी से वस्त्र छीन लिये तथा कुवलयापीड हाथी को मार डाला। दामोदर मदनिका नामक कुब्जा को देखकर जो कि

सुगन्धित द्रव्य लेकर राजप्रासाद में आ रही थी उसके हाथ से सुगन्धित द्रव्य लेकर अपने अङ्ग में लगा लिया तथा कुब्जा के कुबड़ेपन को ठीक कर दिया। उसने धनुःशाला के रक्षक को मारकर धनुष के दो खण्ड कर डाले। राजा चाणूर और मुष्टिक को उन गोप बालों के साथ युद्ध करने की आज्ञा देता और स्वतः भवन पर चढ़कर युद्ध देखने को प्रस्तुत होता है। युद्ध पटह बजता है और कृष्ण के साथ चाणूर का तथा बलराम के साथ मुष्टिक का मल्लयुद्ध होता है। राम-कृष्ण असुरों को मार डालते हैं। चाणूर को मारकर कृष्ण प्रासाद पर चढ़ जाते हैं और कंस का सिर पकड़ कर नीचे गिरा देते हैं। कंस के प्राण छूट जाते हैं। सभा में कोलाहल होता है और कंस की सेना युद्ध के लिए सन्नद्ध होती है। इधर बलरामजी भी सैन्य-मथन के लिये उद्यत दिखायी पड़ते हैं। इसी समय वहाँ वसुदेव आते हैं और बताते हैं कि ये उन्हीं के पुत्र रोहिणीकुमार बलराम तथा देवकीनन्दन श्रीकृष्ण हैं। कंस का वध करने के लिए साक्षात् भगवान् वासुदेव ही अवतरित हुए हैं। वसुदेव के निर्देश से उग्रसेन को कारागार से मुक्त किया जाता है और उनका अभिषेक होता है। वृष्णिराज्य की प्रतिष्ठा पुनः होती है।

आकाश से दुन्दुभिनाद तथा पुष्पवृष्टि होती है। देवर्षि नारद भगवान् का गुणानुवाद करते हुए प्रकट होते हैं और भगवान् को प्रणाम कर चले जाते हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटक का शीर्षक—इसमें बालकरूपधारी भगवान् श्रीकृष्ण की लीलायें या चरित प्रदर्शित है अतः इस नाटक का नाम बालचरित रखा गया है।

आधार—इस नाटक का श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराण एवं महाभारतादि में वर्णित प्रसिद्ध श्रीकृष्णचरित का ही संक्षिप्त रूप है। कहीं कोई व्यतिक्रम नहीं किया गया है।

चरित्र-चित्रण—इस नाटक के नायक रूप में भगवान् श्रीकृष्ण आये हैं। नाटककार इन्हें साक्षात् परात्पर ब्रह्म के रूप में चित्रित करता है। भूभार-हरण तथा गो-ब्राह्मण की रक्षा एवं असुरों के संहार के लिये उन्होंने नर रूप धारण किया है। श्रीकृष्ण के जन्म से ही अलौकिक घटनायें घटित होने लगती हैं। मध्यरात्रि में उनका जन्म होता है और वसुदेव उन्हें लेकर ब्रज में चलते

हैं। बीच अथाह जलोंवाली यमुना नदी हिलोरें ले रही हैं। श्रीकृष्ण को देखकर बीच से उनका जल सूख जाता है और मार्ग बन जाता है जिससे निकल कर वसुदेवजी पार करते हैं।

व्रज में निवास करते समय श्रीकृष्ण बाल्यावस्था में ही पूतना राक्षसी का स्तन पान करते हुये वध कर डालते हैं। केशी अरिष्टवृषभ का वध भी गायें चराते समय ही करते हैं। कालिय-दमन की घटना भी उनकी अलौकिक महत्ता का परिचायक है। कंस उन्हें मथुरा में 'धनुर्यज्ञ' के बहाने मरवाने के लिये बुलाता है पर कृतकार्य नहीं होता और उसी को अपने प्राण गँवाने पड़ते हैं।

अलौकिकता के साथ ही साथ कृष्ण में मानवीय पक्ष भी सुतरां स्पष्ट है। गोप बालकों के साथ क्रीडा तथा गोपिकाओं के साथ हल्लीस नृत्य उनकी बालसुलभ चेष्टा के निदर्शक हैं। गोपियों के घरों में घुस कर माखन-चोरी भी प्रेक्षक के हृदय में अपूर्व रस का सञ्चार करती है। वीरता तथा तेजस्विता की तो वे साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। कुब्जा के शरीर को ठीक करना उनकी कृतज्ञता का सूचक है। कृष्ण के शरीर-सगठन तथा शरीर-सौन्दर्य को देखकर कंस भी प्रभावित हो जाता है (५८)। सङ्क्षेपेण कृष्ण के चरित्राङ्कन में नाटककार का मुख्य उद्देश्य उनके भगवत्तत्व को प्रदर्शित करना रहा है, यद्यपि साथ-साथ वह मानवीय अंश को प्रदर्शित करते गया है।

बलराम के चरित्र में भी प्रायेण वे ही गुण दिखायी पड़ते हैं जो कृष्ण के। सर्वप्रथम कालिय दमन के प्रसङ्ग में वे सामने आते हैं। कृष्ण के लिये व्याकुल लोगों को वे सान्त्वना देते हैं। कृष्ण के साथ वे भी कंस के धनुर्यज्ञ में सम्मिलित होते हैं और वहाँ मुष्टिक नामक कंस के मल्ल का वध करते हैं। बलरामजी के शरीर सौन्दर्य का प्रभाव कंस पर भी पड़ता है और उसकी प्रशंसा करता है।

वसुदेवजी का चरित्र अपनी शालीनता में अद्वितीय है। कृष्ण का जन्म होने पर वे अपूर्व साहस के साथ उन्हें लेकर बाहर निकलते हैं। भरी यमुना को पार कर जाने का उनमें उत्साह है यद्यपि यमुना स्वयं मार्ग दे देती हैं। उनमें स्वाभिमान तथा पराक्रम की भावना भी अनुस्यूत है। जब कृष्ण को ले जाते समय बिजली कौंधती है तो उन्हें आशंका होती है कि कहीं कंस का

कोई अनुचर तो उनका अनुधावन नहीं कर रहा है। सद्यः वे प्रतीकार के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं। बालक की रक्षा के लिये नन्दगोप को अपने उपकार का स्मरण दिलाते हैं। उनकी सत्यवादिता पर कंस को भी विश्वास है। जब लोग कहते हैं कि देवकी ने कन्या प्रसव किया है तो कंस कहता है कि वसुदेव झूठ नहीं कहेंगे अतः उन्हीं से पूछ लिया जाय। पर वसुदेव यहाँ कंस को प्रवञ्चित करते हैं। कंस वध के बाद पुनः वसुदेवजी अपने दोनों पुत्रों से मिलते हैं और उत्तेजित मथुरावासियों को शान्त करते हैं। वसुदेवजी के चरित्र में त्याग की अपूर्व आभा दिखायी पड़ती है। कंस के मारे जाने पर राज्य उनको स्वतः सुलभ था। पर, उन्होंने कंस के पिता उग्रसेन को राजा बनाया।

कंस का चरित्र अत्यधिक कठोर प्रदर्शित किया गया है। अपनी प्राणरक्षा के लिये उसने वसुदेव के छः अबोध शिशुओं को कंसशिला पर पटक कर मार डाला। औद्धत्य की मात्रा उसमें प्रचुर है। उसमें वसुदेव के बालक द्वारा मारे जाने का भय प्रविष्ट हो गया है इसीलिये चाण्डाल युवतियों तथा मधूक ऋषि के शाप को देखकर तथा भूकम्प आदि दुर्निमित्तों का अवलोकन कर वह ज्योतिषियों तथा पुरोहितों से उसका फल पूछता है। कृष्ण को मारने का उसका उद्योग चलता रहता है और अनेकों असुरों को वह भेजता रहता है और इस प्रयत्न में कृतकार्य न होने पर यज्ञ के बहाने राम-कृष्ण को मथुरा में बुलाता है। यहाँ भी वह उन्हें मरवाने का हर सम्भव प्रयास करता है पर अन्त में उसे अपने ही प्राण गँवाने पड़ते हैं।

समीक्षण—नाटकीय दृष्टि से बालचरित एक सफल नाटक कहा जा सकता है। इस नाटक का नायक प्रख्यात तथा धीरोदात्त है। वह नायक के सभी गुणों से सम्पन्न है। रस की दृष्टि से इसमें वीर ही प्रधान रस है और करुण, रौद्र आदि रस अङ्ग रूप से आये हैं। शृङ्गार-रस का इस नाटक में अभाव है। भास के लघु विस्तारी वाक्यों तथा सरल भाषा दर्शक के हृदय पर अपना अपूर्व प्रभाव डालती है। इस दृष्टि से कथनोपकथन सुतरां स्तुत्य हैं। चुस्तता नाटकीयता तथा भावप्रवणता इनके नाटकों की प्रमुख विशेषता है।

काव्यपरिपाक की दृष्टि से बालचरित बहुत ही प्रशंसनीयता कहा जा

सकता है। बालचरित का निम्न श्लोक अलङ्कार ग्रन्थों में बहुत उल्लिखित हो चुका है—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥–बालचरित १.१५

(मानो तम अङ्गों का लेप कर रहा है, आकाश अञ्जन की वर्षा कर रहा है। जिस प्रकार असत्पुरुष की सेवा व्यर्थ जाती है उसी प्रकार दृष्टि निष्फल हो गयी है—कुछ सूझता नहीं।)

यह श्लोक काव्य प्रकाश (दशम उल्लास, उत्प्रेक्षालङ्कार), कुवलयानन्द (संसृष्टि अलङ्कार प्रकरण) इत्यादि ग्रंथों में उद्धृत है।

रात्रि के वर्णन में कवि की विशेष निपुणता लक्षित होती है। नन्दगोप द्वारा रात्रि का निम्न वर्णन अलंकार तथा भाव दोनों दृष्टियों से नितान्त उदात्त है—

दुर्दिनविनष्टज्योत्स्ना रात्रिर्वर्तते निमीलिताकारा।
संप्रावृतप्रसुप्ता नील निवसना यथा गोपी ॥–१.१९

यह रात्रि जिसकी ज्योत्स्ना बरसात से नष्ट हो गयी है तथा जिसने अपने आकारों को छिपा लिया नील वस्त्रों को पहने सोती गोपी के समान मालूम पड़ रही है।

शब्दों के द्वारा भावदशा के चित्रण में भास ने महान् सफलता प्राप्त की है। शब्दों के आश्रय से सारी भाव दशा, सारी परिस्थितियाँ, साक्षात् दिखायी पड़ने लगती हैं। पाठक के सामने दृश्य खड़ा हो जाता है। गोपकुमारों का निम्न चित्रण दर्शनीय है—

रक्तैर्वेसुकडिण्डिमैः प्रमुदिताः केचिन्नदन्तः स्थिताः
केचित्पङ्कजपत्रनेत्रवदनाः क्रीडन्ति नानाविधम्।
घोषे जागरिमा गुरुप्रमुदिता हुम्भारशब्दाकुले
वृन्दारण्यगते समप्रमुदिता गायन्ति केचित् स्थिताः ॥–३.२

(कुछ गोपकुमार रंगीन नगाड़ों के साथ आनन्दित होकर नाच रहे हैं, कमल के समान नेत्रवाले कुछ बालक नाना प्रकार से खेल रहे हैं। घोष में जागरण है और गौओं के हम्भारव से व्याप्त वृन्दावन में कुछ लोग प्रसन्न होकर गा रहे हैं।)

कालियदमन के समय गोपियों की स्थिति का सजीव दर्शन इस पद्य में कीजिये—

एता मत्तचकोरशावनयनाः प्रोद्भिन्नपीनस्तनाः
कान्ताः प्रस्फुरिताधरोष्ठरुचयो विस्रस्तकेशस्रजः।
सम्भ्रान्ता गलितोत्तरीयवसनास्त्रासाकुलव्याहृता-
स्त्रस्ता मामनुयान्ति पन्नगपतिं दृष्ट्वैव गोपाङ्गना। ।।-४।१

(मत्त चकोरशावकों के तुल्य नेत्रोंवाली, विकसित स्तनोंवाली, लाल ओठों से सुन्दर कान्तिवाली, केश से गिरते हुये मालावाली, चकित, खिसक रहे उत्तरीय वस्त्रों वाली, भयकातर वचन बोलनेवाली ये गोपाङ्गनायें कालियनाग को देखकर मेरे पीछे आ रही हैं।)

६—अविमारक

छः अंकों का यह नाटक सोवीर-राजकुमार अविमारक तथा राजा कुन्तिभोज की कन्या कुरङ्गी के प्रणय-व्यापार पर आश्रित है। इस नाटक की कथा लोक कथा पर आश्रित है। अविमारक काशिराज की पत्नी सुदर्शना में अग्नि से उत्पन्न हुए थे। सुदर्शना ने अपने इस पुत्र को सौवीरराज की पुत्री सुलोचना को दे दिया जो सौवीरराज से ब्याही गयी थी। पर, इस वृत्तान्त का किसी को पता न था। सौवीरराज के यहाँ इस कुमार का लालन-पालन हुआ और विष्णुसेन नाम पड़ा। विष्णुसेन बड़ा ही सुन्दर, बलवान् तथा निर्भीक युवक निकला। एक बार निसर्गतः क्रोधी चण्डभार्गव नामक ऋषि सौवीर-नरेश के राज्य में पधारे। उनके शिष्य को व्याघ्र ने मार डाला। उसी समय सौवीर-राज भी मृगयाप्रसङ्ग से उनके आश्रम में गये और उन्हें देखकर ऋषि उन्हें कटूक्तियाँ सुनाने लगे। बिना कारण बताये इस प्रकार कटूक्ति कह रहे ऋषि को सौवीरराज ने चाण्डाल कह दिया। बस क्या था ? मुनि का क्रोध उबल पड़ा। उन्होंने राजा को शाप दे दिया—'सदारपुत्र चाण्डाल हो जा।' उनके इस शाप को सुनकर राजा ने बहुत अनुनय विनय किया और मुनि ने अनुग्रह भाव से शाप की अवधि एक वर्ष कर दी। इसी अन्त्यज वेष में सौवीरराज को सपरिवार रहना पड़ा।

प्रथम अङ्क में राजा कुन्तिभोज की कन्या कुरङ्गी उद्यान में टहलने जाती है। स्थापना के अनन्तर राजा कुन्तिभोज सपरिवार दिखायी पड़ते हैं। उन्हें अपनी कन्या की बड़ी चिन्ता है। राजा और रानी दोनों योग्य पति को कन्या सौंप देना चाहते हैं। पर, उनका विचार है कि कन्यादान से पूर्व जामाता के सम्पत्तिशील का सम्यक् विचार कर लेना चाहिये। यदि कोई बिना विचारे कन्या दूसरे को दे देता है तो कन्या दोनों का नाश कर डालती है। इसी समय कौञ्जायन नामक अमात्य वहाँ आता है और कहता है कि उद्यान में एक बड़ी अप्रत्याशित घटना घटित हो गयी। जब राजकुमारी उद्यान में विहार कर लौट रही थीं उसी समय एक हाथी उन्मत्त हो गया। उसने अपने पीलवान को मार डाला और धूल उछालता हुआ राजकुमारी के पास पहुँच गया। सभी अङ्गरक्षक उसे देखते ही भाग गये और स्त्रियाँ हाहाकार करने लगीं। वह हाथी राजकुमारी की सवारी पर झपटा ही था कि कोई सुन्दर युवा पुरुष वहाँ उपस्थित हो गया और उसने हाथी को डाँट कर वहाँ से हटा दिया। हाथी के हटते ही राजकुमारी को अन्तःपुर में प्रवेश करा दिया गया। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि वह युवा अन्त्यज है। अमात्य भूतिक उसी का पता लगाने के लिये रुक गये हैं। राजा को कौञ्जायन की बात सुनकर यह विश्वास नहीं होता कि अकुलीन व्यक्ति इतना गुणवान् हो सकता है। इसी बीच भूतिक भी आता है और बताता है कि यद्यपि वह अपने को अन्त्यज कहता है पर इतनी सहृदयता, इतनी दयालुता और इतना दाक्षिण्य किसी अन्त्यज में नहीं हो सकता। उसके पिता के बारे में भी भूतिक कहता है कि वह देखा गया है तथा अत्यन्त बलवान् एवं सुन्दर है। अमात्यों के साथ राजा के वार्तालाप से यह भी विदित होता है कि काशीराज से कन्या मांगने के लिये दूत आया है पर इसमें शीघ्रता करने की कोई आवश्यकता नहीं। भलीभाँति सोच विचार कर सौवीरराज अथवा काशिराज में से किसी एक को कुरङ्गी देना चाहिये। सौवीरराज तथा काशिराज दोनों राजा कुन्तिभोज के बहनोई हैं, पर सौवीरराज कुन्तिभोज की महारानी के भाई भी हैं।

द्वितीय अङ्क के आरम्भ में सौवीर राजकुमार अविमारक का विदूषक दिखायी पड़ता है। वह कहता है कि ऋषिशापवशात् चाण्डालत्व को प्राप्त

अविमारक कुरङ्गी के सौन्दर्यपाश से आबद्ध हो गये हैं। वे कामवाण से पीड़ित होकर घूमना-फिरना सब छोड़कर दिन-रात उसी की चिन्ता किया करते हैं। इसी के उपरान्त अविमारक कामदशापन्न दिखाया पड़ता है। उधर राजकुमारी कुरङ्गी भी उस हस्तिसकट के दिन से अविमारक की अनर्घ सुन्दरता पर मुग्ध हो गयी। उसकी भी आहार-विहार से विरक्ति हो गयी। उसकी इस दयनीय दशा पर तरस खाकर उसकी सहेली नलिनिका धात्री के साथ अविमारक का पता लगाने निकल पड़ती है। धात्री मार्ग में नाना प्रकार का तर्क वितर्क करती है। वह सोचती है कि यदि उस युवक को राजकुल में प्रवेश करा दिया जाय तो राजकुल दूषित हो जायेगा और यदि उसे प्रवेश न कराया जाय तो कुरङ्गी ही अपने प्राण छोड़ देगी। इसी समय उन्हें कहीं से ध्वनि सुनायी पड़ती है कि ऐसा गुणी व्यक्ति अकुलीन नहीं हो सकता। वे अविमारक के आवास में जाती हैं और वहाँ अविमारक को कुरङ्गी से सम्बद्ध प्रलाप करते सुनती हैं। वे वहाँ जाती हैं और पूछती हैं कि इस एकान्त में आप क्या सोच रहे हैं? अविमारक बहाना करता है और कहता है कि वह योगशास्त्र का चिन्तन कर रहा है। धात्री कहती है कि हम लोग भी योगशास्त्र की इच्छा से ही यहाँ आयी हैं। एकान्त राजकुल में प्रवेश कर उसे सफल कीजिये। वे दोनों अविमारक से राजमहल में प्रवेश का भी उपाय बताती हैं। कुछ देर में विदूषक भी वहाँ आता है और अविमारक उससे कहता है कि वह आज राजमहल में प्रवेश करेगा।

तृतीय अङ्क में कुरंगी अपनी परिचारिकाओं से अविमारक के विषय में पूछती है। वे परिहास करती हैं। शिलातल पर बैठकर मागधिका कहती है कि काशिराज के यहाँ से दूत आया था और महाराज ने दामाद को वहीं बुलाया है। इसी समय अविमारक चोरवेश में राजान्तःपुर में प्रविष्ट होता है। मार्ग में वह सशङ्क होकर चलता है। अविमारक को देखकर नलिनिका उसे पहचान लेती है। राजकुमारी सो गयी है, उसी के पार्श्व में अविमारक बैठ जाता है। इसी समय कुरंगी की निद्रा भंग होती है और वह पूछती है कि उस निर्दय ने क्या कहा? कुरंगी अपनी सहेली नलिनिका से कहती है कि 'मेरा आलिंगन करो।' नलिनिका की प्रेरणा से अविमारक उसका

आलिंगन करता है। राजकुमारी उसे देखकर काँप जाती है और चारित्रिक पतन से दुःखी होती है। अविमारक समझा बुझाकर उसे शान्त करता है। सखियाँ हट जाती हैं और अविमारक तथा कुरंगी भीतर शयनागार में चले जाते हैं।

चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में मागधिका और विलासिनी राजकुमारी कुरंगी तथा अविमारक के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा करती हैं। इसी बीच नलिनिका आती है और उससे पता चलता है कि अविमारक के अन्तःपुर में ठहरने के वृत्तान्त का राजा कुन्तिभोज को पता लग गया है। अविमारक सकुशल अन्तःपुर से बाहर निकाल दिये गये हैं और लज्जा, भय तथा शोक से कुरंगी की हालत अत्यन्त शोचनीय हो गयी है। सखियाँ राजकुमारी कुरंगी को आश्वासन देने चली जाती हैं। इसके अनन्तर अविमारक सामने आता है। उसकी अवस्था बड़ी विचित्र है। उसे दुहरा दुःख है। एक ओर तो कुरंगी के वियोग से उसका शरीर जल रहा है दूसरे कुरंगी की दशा का ध्यान कर उसे और भयानक सन्ताप हो रहा है। वह सोचता है कि कुरंगी परिजनों में इस वृत्तान्त से लज्जित हो रही होगी। राजा ने उस पर कड़ा पहरा बैठा दिया होगा तथा मेरे वियोग से उसे वेदना हो रही होगी। इस सन्ताप से छुट्टी पाने के लिये वह प्राणहत्या करने पर तैयार हो जाता है। उसे यह भी स्मरण है कि आत्महत्या अविहित मरणमार्ग है, पर उसे कोई दूसरा रास्ता नहीं दिखायी पड़ता। वह दावाग्नि में प्रवेश करता है किन्तु विधि का विधान कौन रोक सकता है? अग्निदेव शीतल हो जाते हैं। इसके बाद वह शैलशिखर से कूदकर अपना प्राण गँवाना चाहता है। इसी समय एक विद्याधर अपनी प्रिया के साथ उस शैलशिखर पर आता है। उस विद्याधर को अविमारक दिखायी पड़ता है। उसकी भव्य आकृति को देखकर वह प्रभावित हो जाता है। वह अविमारक के पास जाता है और उसे अपना परिचय देते हुये बताता है कि वह मेघनाद नामका विद्याधर है और उसकी स्त्री का नाम सौदामिनी है। अविमारक अपने को सौवीरराजकुमार बताता है। पर, विद्याधर को उसकी बातों का प्रत्यय नहीं होता और वह मन्त्र विद्याबल से अविमारक का सम्पूर्ण वृत्तान्त ज्ञात कर लेता है। कुरङ्गी से उसके वियोग

को जानकर उसे सहानुभूति होती है और वह अविमारक को एक अगूठी देता है जिसके सहारे वह प्रच्छन्न होकर राजान्तःपुर में प्रविष्ट हो सकता है। उस अगूठी को दाहिने हाथ में धारण करने पर व्यक्ति अदृश्य हो जाता है और बाँयें हाथ में पहनने पर प्रत्यक्ष हो जाता है। उस अंगुलीयक को देकर विद्याधर अपने गन्तव्य स्थान को चला जाता है।

अविमारक वहीं बैठकर विश्राम करता है और इसी बीच उसे ढूँढते हुये विदूषक वहाँ पहुँच जाता है। दोनों की भेंट होती है और विदूषक को अगुलीयक का वृत्त ज्ञात होता है। विदूषक को साथ लेकर अविमारक उस अगूठी के सहारे राजपुर में प्रवेश करता है।

पञ्चम अङ्क में नलिनिका तथा कुरङ्गी राजप्रासाद पर बैठी हुई हैं। कुरङ्गी अविमारक के वियोग से सन्तप्त हो रही है। इसी बीच अविमारक और विदूषक भी वहाँ पहुँच जाते हैं। कुरङ्गी को देखकर अविमारक की प्रसन्नता की सीमा नहीं रहती। इसी बीच महारानी के पास से लेप लेकर हरिणिका आती है और नलिनिका तथा हरिणिका क्रमशः चली जाती हैं। कुरङ्गी गले में फन्दा लगाकर प्राणत्याग करना चाहती है पर मेघस्तनित सुनकर डर जाती है। इसी समय अविमारक जाकर उसका आलिङ्गन कर लेता है। हरिणिका और नलिनिका भी आती हैं और विदूषक को वहाँ से हटा ले जाती हैं। वृष्टि होने लगती है और अविमारक तथा कुरङ्गी भीतर चले जाते हैं।

षष्ठ अङ्क के प्रारम्भ में धात्री से ज्ञात होता है कि काशिराजकुमार जयवर्मा अपनी माता सुदर्शना के साथ कुरङ्गी से शादी करने के लिये कुन्तिभोज के यहाँ आ गये हैं। यह भी ज्ञात होता है सौवीरराज के मन्त्रियों ने कुन्तिभोज को पत्र लिखा कि सौवीरराज सदारपुत्र उन्हीं के नगर में निवास कर रहे हैं। राजा कुन्तिभोज को सौवीरराज मिल जाते हैं पर उनके पुत्र का पता नहीं लगता। सौवीरराज कुन्तिभोज से चण्डभार्गव ऋषि के शाप का समाचार बताते हैं। वे कुन्तिभोज से अविमारक द्वारा धूमकेतु राक्षस के मारे जाने का भी वृत्तान्त बताते हैं। पर उसका पता न लगने से सभी को क्लेश है। इसी समय वहाँ देवर्षि नारद जी उपस्थित होते हैं। वे बताते हैं कि सौवीरराजकुमार कुन्तिभोज के अन्तःपुर में कुरङ्गी के साथ गान्धर्व

विवाह कर समय यापन कर रहा है। हस्तिसंभ्रम के समय से ही दोनों में प्रणय व्यापार चल रहा है। वे सुदर्शना तथा कुन्तिभोज को अलग हटाकर सुदर्शना में अग्नि से उत्पन्न अविमारक का स्मरण दिलाते है। अविरूपधारी असुर को मारने से उसकी संज्ञा अविमारक हुई। नारद जी कुरङ्गी की छोटी बहिन सुमित्रा से जयवर्मा की शादी कराते हैं। अविमारक, कुरङ्गी और भूतिक भी वहीं आ जाते है। परस्पर सबका प्रेम-मिलन होता है और स्त्रियाँ अन्तःपुर में जाती हैं। भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटक का नामकरण—इस नाटक में सौवीरराजकुमार अविमारक का आख्यान वर्णित होने से इसका नाम अविमारक रखा गया है। अविमारक का यथार्थ नाम विष्णुसेन था और अवि-रूपधारी असुर को मारने से उसकी संज्ञा अविमारक है।

चरित्र-चित्रण—इस नाटक का नायक विष्णुसेन या अविमारक है। वह काशिराज की पत्नी सुदर्शना से अग्निदेव से उत्पन्न हुआ, पर सौवीरराज की पत्नी सुलोचना को जन्म के समय ही दे दिया गया। वह अतुलित पराक्रमशाली है और बचपन में ही उसने राक्षस का वध कर डाला है। दैवदुर्विपाक से वह चण्डभार्गव ऋषि के शापवशात् वर्ष भर चाण्डालत्व को प्राप्त होता है। सहजपराक्रमशालिता तथा परदुःखकातरता उसके स्वभाव के अङ्ग हैं। इसी कारण वह राजकुमारी कुरंगी पर हाथी के आक्रमण करने पर उसे मुक्त करता है। उसके शरीर की शोभा निराली है और इसी सौन्दर्य के कारण प्रथम दर्शन में ही कुरंगी उस पर न्यौछावर हो जाती है।

हस्तिसभ्रम के अनन्तर अविमारक एक प्रेमी के रूप में प्रकट होता है। प्रथम दर्शन में ही कुरंगी के सौन्दर्य पर वह रीझ जाता है और उसके केशपाशों में बंधन के लिये लालायित हो जाता है। उसकी कामापन्न अवस्था भी चरम कोटि को पहुँचती है। कुरंगी के वियोग में उसकी दयनीय अवस्था हो जाती है और छद्मवेश में वह एक वर्ष तक राजभवन में रहता है। जब उसका पता राजा को लगता है तो वह भाग निकलता है और आत्महत्या तक करने को सन्नद्ध हो जाता है। संक्षेप में वह धीरललित नायक कहा जा सकता है।

इस नाटक की नायिका कुरङ्गी है। वह रूपयौवनसंपन्ना अविवाहिता

कन्या है। इस यौवन के उभार के अवसर पर उसे अविमारक का दर्शन होता है और वह मदनज्वर से ग्रस्त हो जाती है। यहाँ यह स्पष्ट है कि उसका प्रेम शुद्ध है और उसमें किसी प्रकार का प्रलोभन नहीं। अविमारक के कुलशील का उसे पता नहीं फिर भी उसके तरुणयौवन तथा सुगठित सुन्दर शरीर को देखकर वह लुब्ध हो जाती है। प्रथम दर्शन में ही उसकी आसक्ति इतनी बढ़ती है कि उसकी दशा दयनीय हो जाती है और सखियों को उसकी प्राणरक्षा के लिये अविमारक को ढूढ़ना पड़ता है।

इस चरम कामदशा को प्राप्त होने पर भी शीलसरक्षण की भावना उसमें सुरक्षित है। जब प्रथम बार रात्रि में उसके अनजाने अविमारक उसका आलिङ्गन करता है और उसे पता चलता है कि यह अविमारक है तो उसे पश्चात्ताप होता है और वह कहती है कि यह महान् चारित्रिक पतन हुआ। स्त्रीसुलभ हाव भाव तथा रूठने की भावना भी उसमें वर्तमान है और जब सखियाँ परिहास करती हैं तो वह रूठने का अभिनय करती है। एक वर्ष के सयोग के बाद उसे अविमारक का वियोग होता है और उस समय की दशा का जैसे सटीक अनुमान अविमारक ने किया है वह नितान्त यथार्थ है—

> ह्रीता भवेत् प्रेष्यजनप्रवादै-
> र्भीता च राज्ञा दृढसन्निरुद्धा।—४।२

अविमारक के वियोग में वह भी प्राणात्यय पर तुल जाती है और गले में पाश तक लगा लेती है पर मेघस्वनित से सहसा भयभीत होकर इस कर्म से प्रत्यावृत्त होती है। सक्षेपेण कुरङ्गी का प्रेम अपनी परिणति को पहुँचा प्रदर्शित किया गया है।

सौवीरराज ऋषि के शापवश चाण्डालत्व को प्राप्त हुए हैं। इस अवधि में वे छद्मवेश में कालयापन करते हैं और राजा कुन्तिभोज से मिलने पर शाप की सारी कथा उनको सुना देते हैं।

कुन्तिभोज का चरित्र सौवीरराज की अपेक्षा अधिक प्रस्फुटित हुआ है। नाटक की सारी घटनाएं उन्हीं के राज्य में केन्द्रित हैं। उनके वचनों से पता चलता है कि राजनीति का उन्हें सम्यक् ज्ञान है—

धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवमतिगतिः प्रेक्षितव्या स्वबुध्या
प्रच्छाद्यौ रागरोषौ मृदुपरुषगुणौ कालयोगेन कार्यौ।
ज्ञेयं लोकानुवृत्तं परचरनयनैर्मण्डलं प्रेक्षितव्यं
रक्ष्यो यत्नादिहात्मा रणशिरसि पुनः सोऽपि नावेक्षितव्य. ॥१।१२

अन्य पात्रों में देवर्षि नारद स्वरगणों के साधक, कलह के उत्पादक (६।११), शाप प्रसाद समर्थ एवं नष्ट कार्यों के सुधारक (६।१६) दर्शाये गये हैं। कुन्तिभोज के *अमात्यद्वय कौञ्जायन तथा भूतिक* महान् स्वामिभक्त तथा नयज्ञ हैं।

स्त्री पात्रों में कुरङ्गी की सखियाँ तथा परिचारिकायें उसकी हितैषिणी के रूप में चित्रित की गई हैं। कुरंगी का अभीष्ट पूरा करने के लिये वे सब कुछ करने को उद्यत हैं। सौवीरराज की पत्नी तथा काशिराज की पत्नी एवं कुरंगी की माता का चरित्र प्रस्फुटित नहीं हो सका है।

समीक्षण—अविमारक एक काल्पनिक नाटक है और प्रेमाख्यान का यहाँ प्रदर्शन हुआ है। नाटकीय दृष्टि से इसे प्रकरण कहा जा सकता है यद्यपि इसे कुछ लोग नाटक भी कह सकते हैं। प्रकरण का लक्षण निम्न है—

भवेत् प्रकरणं वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्।
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक्॥

प्रकरण के अन्य लक्षण तो यहाँ घटित हो जाते हैं पर इसका नायक न तो विप्र ही है, न अमात्य ही और न वणिक् ही। इस नाटक का प्रधान रस शृंगार है और अन्य रस उसके सहायक बन कर आये हैं। इसका नायक अविमारक धीरललित कहा जायेगा।

नाटकीयता की दृष्टि से भास के अन्य नाटकों की भाँति यह नाटक भी सफल है। अभिनेय यह भी उसी भाँति है जिस भाँति भास के नाटक। सरल भाषा का प्रयोग इनकी अभिनेयता में चार चाँद लगा देता है। कथनोपकथनों में स्वाभाविकता तथा भावाङ्कन भास की अपनी विशेषता है। छोटे छोटे वाक्य, सरल भाषा, रसानुकूल भाषा का प्रयोग एवं भावों का सम्यक् उन्मेष इस नाटक को बरबस उच्चकोटि में बैठा देते हैं।

काव्यकला की दृष्टि से भी यह नाटक नितान्त उदात्त है। नाटकों में भास

का कविकर्म सर्वत्र प्रस्फुटित हुआ है। परिस्थितियों, अवस्थाओं एवं भावों का सटीक शब्दों एव अलंकारिक भाषा में वर्णन सर्वत्र विद्यमान है। प्रकृति चित्रण में नाटककार ने पर्याप्त दक्षता प्रदर्शित की है। ग्रीष्म का यह वर्णन नितान्त परिष्कृत तथा यथार्थ है :—

अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैरापीतसारा मही
यक्ष्मार्त्तो इव पादपाः प्रमुषितच्छाया दवाग्न्याश्रयात् ॥–४।४

इसी प्रकार रात्रि के अन्धकार, चोर के कार्यकलाप, राजपुर आदि का वर्णन भी भास की सूक्ष्म अन्वीक्षण शक्ति के परिचायक हैं। अन्धकार का यह वर्णन दर्शनीय है :—

तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः
पुलिननिभाः प्रतिभान्ति हर्म्यमालाः।
तमसि दशदिशो निमग्नरूपाः
प्लवतरणीय इवायमन्धकारः ॥–३।४

नाटक में सूक्तियाँ यत्र तत्र बिखरी हुई हैं। प्रसिद्ध सूक्ति 'कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्' का भास ने यहाँ उत्तर उपस्थित किया है—कन्यापितृत्वं बहुवन्दनीयम्' (१।६)। इस प्रकार सभी दृष्टियों से अविमारक एक प्रशस्त नाटक कहा जा सकता है।

१०—प्रतिमा नाटक

सात अंकों का प्रतिमा नाटक भास के सर्वोत्तम नाटकों में से है। श्रीराम के युवराज पद पर अभिषेक के प्रसङ्ग से आरम्भ कर चौदह वर्षों बाद वन से लौटने तक का कथानक इसमें समाविष्ट है। चौदह वर्षों के उपरान्त राम के राज्याभिषेक के साथ यह नाटक समाप्त होता है।

प्रथम अंक में प्रतीहारी कञ्चुकी से कहती है कि महाराज दशरथ राम का युवराज पद पर अभिषेक करने वाले हैं अतः उनकी आज्ञा है कि इसके लिये सारी तैयारियाँ कर दी जायँ। कञ्चुकी कहता है कि उनकी आज्ञा के अनुसार सारे सम्भार एकत्र कर दिये गये हैं। इसी समय अवदातिक नामक परिचारिका हाथ में वल्कल लिये पधारती है। वह परिहास में किसी को वल्कल देने का

रही है। सीता की दृष्टि उस पर पड़ती है और वे उसे मुला लेती हैं। वे कुतूहलदृष्ट्या उस वल्कल को धारण करती है। सीता को इसी समय चेटी बताती है कि आज श्रीरामचन्द्रजी का महाराज दशरथ युवराज पद पर अभिषेक करनेवाले हैं। उन्हें नगर में वाद्यध्वनि सुनायी पड़ती है जो सहसा बन्द हो जाती है। सबका कुतूहल बढ़ जाता है।

श्रीरामचन्द्र जी वहाँ उपस्थित होते हैं। वे भी वल्कल को पहनना चाहते हैं। इसी समय जनता का कोलाहल सुनायी पड़ता है। कञ्चुकी आकर बताता है कि कैकेयी ने राजा को आपका अभिषेक करने से रोक दिया और राज्यपद भरत के लिये माग लिया है। महाराज इस अमगल वचन से मूर्छित होकर गिर पड़े हैं और सकेत द्वारा यह समाचार आपको बताने के लिये भेजा है। सहसा हाथ में धनुष लिये लक्ष्मण प्रवेश करते हैं और हठात् राज्य छीन लेने के लिये राम को उत्तेजित करते हैं, पर राम उनका क्रोध शान्त करते है। लक्ष्मण उनसे बताते हैं कि राज्य आपको नहीं मिला इसकी मुझे चिन्ता नहीं और न तो उसके लिये खेद ही है। खेद केवल इस बात का है कि चौदह वर्षों तक आपको वनवास करना पड़ेगा। श्रीरामचन्द्र फिर भी लक्ष्मण को शान्त करते है। वे अकेले तो वन जाने के लिये तैयार होते हैं किन्तु सीता तथा लक्ष्मण भी उनके साथ चलने के लिये उद्यत होते हैं। राम लक्ष्मण और सीता के साथ वन को प्रस्थान करते हैं।

द्वितीय अङ्क में राम को वन जाने से विरत करने में असमर्थ राजा दशरथ समुद्रगृहक में जाकर सो गये। राम के लिये व नाना प्रकार से विलाप कर रहे हैं। कौसल्या तथा सुमित्रा उन्हें नाना प्रकार से सान्त्वना देती हैं। इसी बीच राम, लक्ष्मण तथा सीता को वन में पहुचाकर सुमन्त्र लौट आते हैं। उनके लौट कर न आने का समाचार सुनकर महाराज दशरथ मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं। सचेत होने पर वे उनका समाचार पूछते हैं। किन्तु उन्हें शान्ति नहीं मिलती और इस वार्धक्य जर्जरावस्था में इस महान् विपत्ति को सहन करने में असमर्थ वे प्राणों का त्याग कर देते है।

तृतीय अङ्क में प्रवेशक से ज्ञात होता है कि अयोध्या में मृत इक्ष्वाकु वंशीय राजाओं की प्रतिमायें स्थापित की जाती हैं। महाराज दशरथ की

प्रतिमा भी स्थापित की गई है जिसका दर्शन करने के लिए कौसल्या आदि महारानियाँ प्रतिमा गृह में आने वाली हैं। इसके अनन्तर रथारूढ भरत तथा सूत दिखायी पड़ते है। अयोध्या तथा परिवार के कुशल को जानने के लिये आतुर भरत शीघ्रता से रथ वाहित करने के लिये सूत से कहते हैं। उन्हें महाराज दशरथ की व्याधि का समाचार मिला है। सूत भरत से महाराज की मृत्यु का समाचार नहीं बताता। रथ अयोध्या के समीप आता है और नगर से एक भट आकर कहता है कि आचार्यों की राय है कि कृत्तिका नक्षत्र बीत रहा है, इसके अवशिष्ट एक चरण के बीत जाने पर आप नगर में प्रवेश करें। भरत उनकी राय मान कर बाहर ही रुक जाते हैं। विश्राम करने के लिये वे इक्ष्वाकु-नृपतियों के प्रतिमा गृह में जाते हैं। वहाँ उस प्रतिमा-गृह का संरक्षक देवकुलिक वहाँ आता है और मूर्तियों का परिचय देता है। वह यह भी बताता है कि यहाँ केवल मृत नृपतियों की प्रतिमायें स्थापित की जाती हैं, जीवन्तों की नहीं। उन प्रतिमाओं में महाराज दशरथ की प्रतिमा को देखकर भरत शोक से मूर्छित हो जाते हैं। देवकुलिक का परिचय भी ज्ञात हो जाता है और रामके वनवास आदि की कथा वह सुनाता है। इसी समय कौशल्या आदि देवियाँ वहाँ प्रतिमा दर्शन के लिये आती हैं। भरत कौशल्या से अपनी अनपराधता को बताते हैं तथा कैकेयी को कोसते हैं। वसिष्ठ, वामदेव आदि महर्षि भरत का अभिषेक करना चाहते हैं, पर भरत राम लक्ष्मण के पास जाने के लिये वन को प्रस्थान करते हैं।

चतुर्थ अङ्क में भरत रथारूढ होकर सुमन्त्र के साथ राम के तपोवन में पहुँचते हैं। सुमन्त्र के साथ वे राम के विषय में वार्तालाप करते जाते हैं। व राम के आश्रम के पास पहुँचते हैं और उनकी ध्वनि राम लक्ष्मण-सीता को सुनायी पड़ती है। उन्हें किसी परिचित बन्धु की आवाज प्रतीत होती है। इसी बीच भरत वहाँ पहुँच जाते हैं। वे परस्पर स्नेहार्द्र होकर मिलते हैं। वन में करुणा का साम्राज्य व्याप्त हो जाता है। भरत उनसे लौट चलने तथा राज्यभार संभालने का आग्रह करते हैं। पर, राम उनसे पिता के सत्य की रक्षा के लिए प्रस्ताव करते हैं। राम के आग्रह को भरत स्वीकार कर लेते हैं, पर शर्त यह लगाते हैं कि चौदह वर्षों के बाद आप अपना राज्य लौटा लें।

तब तक मैं केवल न्यास के रक्षक के रूप में कार्य करूँगा। वे राम की चरण-पादुकायें भी माँग लेते हैं जो राम के प्रतिनिधि के रूप में रखी रहेंगी। राम भरत को राज्यरक्षा में अनवधानता न बरतने का आदेश देते हैं। सुमन्त्र को भी भरत की सावधानी से रक्षा का उपदेश देते हैं। अन्ततः भरत अयोध्या को लौट आते हैं।

पञ्चम अंक के प्रारम्भ में सीता छोटे-छोटे वृक्षों में पानी सींच रही हैं। इसी समय श्रीरामचन्द्र वहाँ आते हैं और सीता से पिता दशरथ के श्राद्ध-दिवस के बारे में बताते हैं। वे कहते हैं कि 'कल पिताजी का श्राद्ध दिन है। पितरों का श्राद्ध सामर्थ्यानुकूल करने का विधान है। पर, मेरे पास आवश्यक पदार्थ नहीं है।' *सीताजी कहती हैं कि 'वैभवानुकूल श्राद्ध तो भरत करेंगे ही* आप वन्य पुष्प-फलों से श्राद्ध कीजिये।' राम कहते हैं कि सो तो ठीक है पर कुश पर फलों को देखकर पिताजी को वनवास का प्रसंग याद आ जायेगा और वे दुःखी होंगे।

राम और सीता के वार्तालाप करते समय ही संन्यासी के वेश में वहाँ रावण आता है। *वह अपने को काश्यपगोत्रीय बताता है।* वह अपने को नाना शास्त्रों तथा प्राचेतस श्राद्धकल्प में निष्णात कहता है। श्राद्धकल्प का नाम सुनकर राम विशेष अभिरुचि दिखाते हैं और पूछते हैं कि पिण्डदान के समय पितरों को किस पदार्थ से तृप्त करना चाहिये। रावण पिण्डदान योग्य पदार्थों का नाम बताता है। वह बताता है कि सर्वाधिक पितरों के प्रीतिकारक *हिमालय के सप्तम शृंग पर रहने वाले काञ्चनपार्श्व नामक मृग होते हैं। पर,* उनकी प्राप्ति दुर्लभ है। इसी समय काञ्चनमृग वहाँ दिखायी पड़ता है और रावण कहता है कि हिमालय आपका अभिनन्दन कर रहा है। राम सीता को संन्यासी की शुश्रूषा करने को कह स्वयं मृग पकड़ने दौड़ते हैं। रावण इस अवसर का लाभ उठाने को सोचता है। सीता उटज में प्रवेश करना ही चाहती हैं कि रावण अपने लोकरावण विग्रह को धारण कर उन्हें पकड़ लेता है। वह अपना परिचय भी उन्हें देता है। सीता विलाप करती हैं, पर रावण उन्हें हठात् लेकर भाग चलता है। गृध्रराज जटायु सीता को ले जा रहे रावण पर आक्रमण करता है।

षष्ठ अङ्क में दो तापस सीता का हरण कर रहे रावण को देखकर भयभीत हो जाते हैं। वे जटायु के पराक्रम को देखकर उसकी चर्चा करते हैं और देखते हैं कि रावण द्वारा मारा जाकर जटायु भूमिशायी हो गया है। इसके बाद विष्कम्भक के अनन्तर अयोध्या में दृश्य केन्द्रित होता है। कञ्चुकीय कहता है कि सुमन्त्र राम का पता लेने वन गये थे जहाँ से वे लौट आये हैं। सुमन्त्र आकर सीताहरण का वृत्तान्त भरत को सुनाते हैं। वे कहते हैं कि 'जब मैं उन्हें देखने के लिये तपोवन में पहुंचा तो तपोवन को शून्य पाया। सुनने में आया कि वे वानरों की नगरी किष्किन्धा में गये हैं। वहाँ सुग्रीव नामक वानर है जिसकी स्त्री को उसके बड़े भाई ने हर लिया है। समान दुःख वाले श्री रामचन्द्र जी वहीं चले गये हैं क्योंकि माया का आश्रयण कर सीता को राक्षसेन्द्र रावण ने हर लिया है।' सुमन्त्र द्वारा सीताहरण का आख्यान सुनकर भरत को अत्यन्त सन्ताप होता है। वे माताओं के पास पहुँचते हैं और कैकेयी को उलाहना देते हुये कहते हैं कि 'तेरे ही कारण अप्रधर्ष्य इक्ष्वाकुकुल की स्त्री का हरण हुआ।' कैकेयी भरत के उपालम्भ से जर्जर हो जाती है। वह सुमन्त्र से दशरथ को मिले शाप का वर्णन करने को कहती है और बताती है कि उसी ऋषिशाप को सत्य करने के लिये मैंने राम को वन भेजा। भरत की आज्ञा से सुमंत्र दशरथ के शाप का वर्णन करते हुये कहते हैं कि 'पहले शिकार के लिये निकले महाराज ने कलश में जल भर रहे एक ऋषिपुत्र को वन्यगज समझकर मार डाला। जब ऋषि ने उसे सुना तो महाराज को शाप दिया कि तुम भी पुत्र शोक से मरोगे।' कैकेयी ने भरत से यह भी बताया कि मैंने तेरा वनवास इसलिये नहीं मांगा कि ननिहाल में रहने से तेरा वियोग सहने के महाराज अभ्यस्त हो गये थे और मैं तो केवल चौदह दिन कहने वाली थी पर मानसिक व्याकुलता से चौदह वर्ष निकल गया।' सब वृत्तान्त सुनकर भरत कैकेयी से क्षमा मांगते हैं और राम की सहायता के लिये ससैन्य प्रस्थान करने को कहते हैं।

सप्तम अङ्क में तापस बताता है कि श्री रामचन्द्र ने सीता का हरण करने वाले रावण का वध कर डाला। उन्होंने विभीषण का अभिषेक किया है और वानरों सहित वे पधार रहे हैं। सीता और राम तापसों के बीच आकर उन्हें

आनन्दित कर रहे हैं। वे माता को वनवास के स्थल दिखाकर उनकी स्मृति दिला रहे हैं। इसी समय उन्हें पटहनाद, हवा से उठती हुई धूल तथा बाजों की ध्वनि सुनायी पड़ती है। लक्ष्मण आकर राम को बताते हैं कि ससैन्य भरत आपके दर्शन करने आ रहे हैं। राम सीता के साथ उत्सुकता से उनकी प्रतीक्षा करते हैं और भरत माताओं के साथ वहाँ आते हैं। सबका प्रेम-मिलन होता है। सारे मुनिजन, सारी प्रजायें और अमात्य श्रीरामचन्द्र का अभिषेक करते हैं और कैकेयी इसका अनुमोदन करती हैं। रावण का पुष्पक विमान वहाँ उपस्थित होता है और सब लोग उस पर आरूढ़ हो अयोध्या को प्रस्थान करते हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटक का नामकरण—इस नाटक का नामकरण प्रतिमा इसलिये रखा गया है कि इक्ष्वाकुवंशीय मृत राजाओं के प्रतिमा निर्माण पर यहाँ विशेष महत्त्व दिया गया है। प्रतिमा निर्माण की कथा भास की अपनी मौलिकता है और प्रतिमा के दर्शन से ही भरत को दशरथ के मरने का सारा वृत्तान्त ज्ञात होता है। सारा घटनाक्रम एक बार इस प्रसङ्ग पर आवृत्त हो जाता है और भरत को राम के वनवासादि के प्रसङ्ग का पता चलता है। कुछ लोगों की धारणा है कि प्रतिमा नाटक का नाम कुछ बृहत् रहा होगा (संभवत 'प्रतिमादशरथ' ?) क्योंकि भास के अन्य नाटकों का नाम जहाँ बड़ा है वहाँ छोटे नामों से भी उसका अभिधान किया जाता है, जैसे, स्वप्नवासवदत्तम् का स्वप्ननाटक और प्रतिज्ञा यौगन्धरायण का प्रतिज्ञा।

भास की मौलिकता—भास ने इस नाटक में मौलिकता लाने में प्रचलित रामचरित से पर्याप्त पार्थक्य ला दिया है। यद्यपि ये सारी घटनायें प्रचलित कथा से भिन्न हैं, पर नाटकीय दृष्टि से इनका महत्त्व सुतरां ऊँचा है और पाठक या दर्शक की कुतूहलवृद्धि में ये सहायक हुई हैं। इस नाटक में रामायणीय कथा से भिन्नतायें इस प्रकार हैं—प्रथम अङ्क में सीता द्वारा परिहास में वल्कल पहनना भास की मौलिकता है। तृतीय अङ्क में प्रतिमा का सारा प्रकरण ही कविकल्पित है और यह कल्पना ही नाटक की आधारभूमि बनायी गयी है। भरत को प्रतिमा के प्रसङ्ग में ही अयोध्या में हुये सारे उदन्त का परिचय मिलता है। पाँचवें अङ्क में सीता का हरण भी यहा नवीन ढंग से बताया गया

है। यहाँ राम के उटज में वर्तमान रहने पर ही रावण वहाँ आता है और दशरथ के श्राद्ध के लिए उन्हें काञ्चनपार्श्व मृग लाने को कहता है और उन्हें काञ्चनमृग दिखाकर दूर हटाता है। यह सारा प्रसङ्ग नाटककार के द्वारा गढ़ा गया है। पाचवें अंक में सुमन्त्र का वन में जाना और लौट कर भरत से सीताहरण बताना कवि-कल्पना का प्रसाद है। कैकेयी द्वारा यह कहना भी कि उसने ऋषिवचन सत्य करने के लिये राम को वन भेजा, भास की प्रसूति है। अन्ततः सप्तम अंक में राम का वन में ही राज्याभिषेक इस नाटक में मौलिक ही है।

इस प्रकार इस नाटक में भास ने प्रचलित कथा को दूसरे ढंग से मोड़ा है और सारे नाटक को एक नवीन रूप दे दिया है।

चरित्राङ्कन—प्रतिमा नाटक के नायक के रूप में श्री रामचन्द्र दिखाये गये हैं और फलप्राप्ति का उन्हीं से सम्बन्ध है। श्री रामचन्द्र सारे सद्गुणों के आकर हैं। राज्य की अप्राप्ति तथा वनगमन की आज्ञा से उनके चित्त में जरा भी विकार उत्पन्न नहीं होता और लक्ष्मण को शान्त करना उनके चरित्र का नितान्त प्रोज्ज्वल अंश है। यह प्रसङ्ग उन्हें दैवी स्तर पर प्रतिष्ठित कर देता है। कैकेयी के प्रति जितनी उनकी भक्ति है उसका पता निम्न श्लोक से लग जाता है—

नहीं उत्पन्न होता और वे उसकी आज्ञा को विनीत होकर शिरोधार्य करते हैं। राज्याभिषेक होने पर भी वे उसे दशरथ जी का अभीष्ट बताते हैं कि धर्म से प्रजापालन करने का अवसर मिला है। सहायक वनौकसों के प्रति भी उनका सद्भाव सुतरां स्तुत्य है। लंकाविजय को वे उन्हीं का प्रयास मानते हैं।

भरत का चरित्र राम के चरित्र की भांति ही अत्यन्त उदात्त प्रदर्शित किया गया है। इस चरित्र में कहीं भी कालिमा का लेश नहीं। वे ननिहाल में हैं तभी अयोध्या में सारी अनभीष्ट घटनायें घटित हो जाती हैं। दूत उन्हें लाने जाता है और वे अत्यन्त उत्सुकता से अयोध्या को प्रस्थान करते हैं। पर, अयोध्या में भी नहीं पहुच पाते कि प्रतिमादर्शन के अवसर पर मार्ग में ही सारा वृत्तान्त ज्ञात हो जाता है। सारे वृत्तान्त को जानकर उन्हें अयोध्या जाना व्यर्थ सा लगता है। किसी पिपासित का निर्जला नदी में जल पीने जाना व्यर्थ ही तो है—

अयोध्यामटवींभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥।–३।१०

उनका कैकेयी पर आक्रोश उनके चारित्र्य और मनोभाव की निर्मलता क प्रतीक है। सारे मुनिजन तथा प्रकृतियाँ भरत के राज्याभिषेक का निश्चय करती हैं, पर भरत के लिये तो यह प्रसङ्ग ही दुःखद है। वे तुरन्त राम को उनका राज्य लौटाने वन चल देते हैं। वन में वे राम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव करते हैं। पर, राम कहते हैं कि धर्म तो इसी में है कि जिसे माता ने राज्य दिया वह राज्य भोगे। यह सुनकर भरत की दशा बडी विचित्र होती है। मानों उनका व्रण छु गया हो। वे कहते हैं कि आपका जन्म जिस वंश में हुआ है उसी में मेरा भी हुआ है। हम दोनों के एक ही पिता हैं। केवल मातृदोष से पुरुषों को दोषी नहीं गिना जाता। मैं आर्त हूँ, मुझ पर दया कीजिये—

अपि सुगुण ! मयापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः
स खलु निभृतधीमांस्ते पिता मे पिता च।
सुपुरुष ! पुरुषाणां मातृदोषो न दोषो
वरद ! भरतमार्तं पश्य तावद्यथावत् ॥–४।२१

अन्य प्रसङ्गों पर भी भरत का चरित्र निखरता ही गया है और उन्नति की पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ है।

सीता—सीता का चरित्र आदर्श पतिव्रता नारी के रूप में अङ्कित किया गया है। पति के सुख दुःख में वे सहधर्मचारिणी हैं। राम के साथ वन में निवास को 'महान् खलु मे प्रासाद' कहती हैं और रोकने पर भी नहीं रुकतीं। वन म भी वे तापस जीवन व्यतीत करती हैं और परिस्थितियों के अनुकूल व्यवहार करती हैं। वे लघु वृक्षों को अपने हाथों से सींचती हैं। जब राम कहते हैं कि पिताजी का श्राद्ध वैभव के अनुरूप करना है तो वे कहती हैं कि वैभवानुरूप श्राद्ध तो भरत करेंगे हो आप वन्य जीवन के उपयुक्त पुष्प फल से ही श्राद्ध कीजिये। सीताहरण में सीता के चरित्रोत्कर्ष को प्रदर्शित करने के लिये नाटककार ने लक्ष्मण को वहाँ से हटा दिया है जिससे लक्ष्मण के प्रति कटुवचन कहने का अवसर ही नहीं रह जाता। इस प्रकार यहाँ सीता का चरित्र नितान्त उदात्त तथा प्रोज्ज्वल प्रदर्शित किया गया है।

कैकेयी—नाटकीय कथावस्तु के विन्यास विस्तार में कैकेयी का महत्त्व बहुत अधिक है। उसके वचनों से राम का वनवास और दशरथ मरण तथा परवर्ती सारी घटनायें घटित हो रही हैं। इसलिये उसे सभी की ताड़ना तथा उपालम्भोक्तियों को सहना पड़ता है। पर, नाटककार ने उसके एक नये रूप का ही चित्रण किया है। जब भरत कहते हैं कि तेरे कुकृत्य से प्रतापी इक्ष्वाकुओं की स्त्रियों का भी हरण होने लगा तो उससे नहीं रहा जाता। वह कहती है कि ऋषिशाप को सत्य करने मात्र के लिये उसने राम के वनवास का वर माँगा तथा वह चौदह दिन के लिये ही वनवास कहना चाहती थी, किन्तु मानसिक विकलता से चौदह वर्ष निकल गया। यह वरदान सभी ऋषियों को सम्मत था। इस प्रकार नाटककार ने कैकेयी के चरित्र का परिमार्जन करने का पर्याप्त प्रयास किया है, भले ही वह स्थिति वस्तुस्थिति से उलटी हो।

सुमन्त्र—वृद्ध सचिव सुमन्त्र महाराज दशरथ का परम हितैषी तथा सुख-दुःख म सहकारी है। वही श्रीराम को वन में पहुँचाने जाता है। वह वृद्ध है तथा राम के वनवास ने उसे झकझोर कर जर्जर बना दिया है। वह नितान्त सौम्य प्रकृति का साधु पुरुष है। वह सभी का विश्वासभाजन है। इसी से श्री-

रामचन्द्र वन में भरत आदि के जाने पर उससे कहते हैं कि 'आप महाराज दशरथ की ही भाँति भरत का हितसाधन तथा संरक्षण कीजिये।' भरत पुनः उसे वन में राम का पता लगाने के लिये भेजते हैं तथा वह आकर सीता हरण की बात सुनाता है।

अन्य पात्रों में लक्ष्मण श्रीरामचन्द्र तथा सीता के प्रति असीम भक्ति रखनेवाले दर्शाये गये हैं। उनके स्वभाव का औद्धत्य भी कुछ नाटक में उभरा है। शत्रुघ्न का प्रसङ्ग बहुत ही कम आया है तथा वे भातृभक्त दिखायी पड़ते हैं। कौसल्या तथा सुमित्रा पर पुत्रों के वन जाने से विपत्ति का पहाड़ टूट गया है। फिर भी धैर्य से वे उसे सहन करती हैं। वे वार्धक्यपीडित हैं। पुत्रों के प्रति उनकी असीम ममता है।

समीक्षण

प्रतिमा नाटक भास के सर्वोत्तम नाटकों में से एक है। सप्ताङ्कविस्तारी इस नाटक में भास की कला पर्याप्त ऊँचाई को प्राप्त कर चुकी है। इस नाटक में भास ने पर्याप्त मौलिकता का परिचय दिया है और सम्पूर्ण नाटक को एक नये रूप में ढाल दिया है। इस नाटक में भास ने पात्रों का चारित्रिक उत्कर्ष दिखाने का भरसक प्रयास किया है। इतिवृत्त तथा चरित्र चित्रण दोनों दृष्टियों से यह नाटक सफल हुआ है। भावों के अनुरूप भाषा तथा लघुविस्तारी वाक्य भास के नाटकों की अपनी विशेषताएँ हैं।

प्रतिमा का प्रधान रस करुण है और अन्य रस इसी के सहायक बनकर आये हैं। महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री इसमें 'धर्मवीररस' का अस्तित्व स्वीकार करते हैं पर यह मात्र ऊहा है। वनवास का प्रसङ्ग उपस्थित होने पर लक्ष्मण के वचनों में वीररस स्फुटित हुआ। वैसे करुणा का प्रसङ्ग व्यापक है।

काव्यकला की दृष्टि से यह नाटक पर्याप्त सफल है। अलङ्कार योजना सर्वत्र मनोहारिणी है। उपमा का निम्न उदाहरण सहृदयाह्लादकारी है :

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥ ३।१०

'पिता और भाई से हीन इस वनतुल्य अयोध्या में मैं उसी भाँति प्रवेश

कर रहा हूँ जैसे कोई तृषित व्यक्ति बलहीन नदी में जल पीने जाय।' उपमा कितनी सटीक है।

पाँचवें अङ्क में अपने हाथों वृक्षों को सींच रही सीता का वर्णन देखिये—

योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः।
कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनीकरोति ॥ ५।३

'जिस सीता का हाथ दर्पण उठाने में भी थक जाता था वह कलश उठाने से भी नहीं थकता। वन लताओं के साथ ही स्त्रीजनों की सुकुमारता को भी कठोर बना देता है।'

निम्न पद्य में अलङ्कार योजना के साथ वर्ण्य विषय का चित्राङ्कन दर्शनीय है :

मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे
शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः।
सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्र लक्ष्यः
शोकाद् भृशं शिथिलदेहमतिर्नरेन्द्रः ॥ २।१

११—प्रतिज्ञायौगन्धरायण

यह नाटक लोककथाओं पर आश्रित है। प्रथम अङ्क में मन्त्री यौगन्धरायण सालक के साथ रङ्गमञ्च पर दिखायी पड़ता है। वह वार्तालाप में यह बात कहता है कि कल प्रातः वत्सराज उदयन वेणुवन के समीप अवस्थित नागवन के लिये प्रस्थान करेंगे। वहाँ महासेन प्रद्योत उन्हें बन्दी बनाने का प्रयास करेगा। वह पत्र एवं रक्षासूत्र के साथ सालक को उनकी सुरक्षा के लिये भेजना चाहता है। वह सालक से पूछता है कि उसने मार्ग देखा है या नहीं। सालक कहता है कि यद्यपि उसने मार्ग देखा नहीं है पर सुना अवश्य है अतः शीघ्रता से वहाँ पहुँच जाता है। यौगन्धरायण राजमाता के पास से रक्षासूत्र मंगाता है।

इसी समय उदयन के साथ सदैव रहनेवाला अंगरक्षक हंसक वहाँ आता है और उदयन के बन्दी बनाये जाने का वृत्तान्त बताता है। वह बताता है कि स्वामी बिना किसी को सूचित किये प्रातःकाल नागवन चले गये। उन्हें कुछ

दूर पर एक नीला हाथी दिखायी पड़ा। उसे देखकर उन्होंने उसे चक्रवर्ती हस्ती समझा और कुछ सैनिकों के साथ अपनी वीणा लेकर उसे पकड़ने चल दिये। अमात्य रुमण्वान् ने उन्हें रोका पर उसे अपनी शपथ देकर वे चले गये। वहाँ जाकर वे अश्व से उतरकर अपनी वीणा लेकर वहाँ पहुँचे। उनके वहाँ पहुँचते ही उस कृत्रिम गज के भीतर से अस्त्रधारी योद्धा निकल पड़े। उदयन इसे प्रद्योत का कपट समझ गये और अपने सीमित सैनिकों के साथ शत्रु सैन्य में प्रवेश किया। उन्होंने अत्यन्त पराक्रम से युद्ध किया और सन्ध्या समय तक अनेकों शत्रुओं को काल के गाल में पहुँचा दिया। सन्ध्या होते होते उनका अमित तथा प्रहार से विद्ध अश्व धराशायी हो गया। उदयन भी इसी समय मूर्च्छित होकर गिर पड़े और शत्रु-सैनिकों ने उन्हें बाँध लिया। उन्हें वे तब तक पीड़ित करते रहे जब तक चेतना न आयी। चेतना आने पर सभी सैनिक उन्हें मारने के लिये टूट पड़े पर प्रद्योत के मन्त्री शालङ्कायन ने उन सभी को रोका और उन्हें बन्धन से मुक्त किया। उसने नाना प्रकार से शान्तिवचन कहकर उन्हें शान्त किया और पालकी पर बिठा कर उन्हें उज्जयिनी ले गया। यह सारी कथा सुना कर हंसक चुप हो जाता है। वह यह भी कहता है कि स्वामी उदयन ने अन्तिम बार मुझसे यह कहा कि यौगन्धरायण से भेंट करना चाहता हूँ। यौगन्धरायण प्रतिज्ञा करता है कि 'यदि राहुग्रस्त चन्द्रमा की भाँति शत्रुओं द्वारा पकड़े गये स्वामी उदयन को मैं मुक्त न कर दूँ तो मेरा नाम उदयन नहीं।' यौगन्धरायण उदयन के बन्दी बनाये जाने का वृत्तान्त राजमाता को सुना देता है। इसी समय महर्षि व्यास वहाँ आते हैं और अपना वस्त्र छोड़ जाते हैं तथा यह भी आशीर्वाद दे जाते हैं कि राजकुल का अभ्युदय होगा। उस वस्त्र को पहनकर यौगन्धरायण अपना वेश परिवर्तन करता है।

द्वितीय अङ्क महासेन प्रद्योत की राजधानी में ला देता है। प्रद्योत पुत्री वासवदत्ता को माँगने के लिये अनेकों राजाओं से प्रस्ताव आ रहे हैं। काशिराज ने अपने उपाध्याय जैवन्ति को दूत बनाकर भेजा है। राजा प्रद्योत काञ्चुकीय से वासवदत्ता के विवाह के विषय में बातचीत करते हैं। महासेन की राजमहिषी भी बुलायी जाती है। वह कहती है कि वासवदत्ता की वीणा सीखने

की उत्सुकता है और वह उत्तरा नाम की वैतालिका के पास वीणा सीखने गयी है। रानी के साथ भी काशिराज के यहाँ से आये दूत की चर्चा होती है। राजा कहते हैं कि मगध, काशी, वङ्ग, मिथिला तथा शूरसेन देश के अधिपति कन्याग्रहण के इच्छुक हैं, पर किसे दिया जाय यह निश्चय नहीं होता। इसी समय सहसा काञ्चुकीय आकर कहता है कि वत्सराज। राजा सतर्क हो जाते हैं। इस अपने अनम्र वचन के लिये क्षमा मांगते हुये काञ्चुकीय निवेदन करता है कि वत्सराज बन्दी बना लिये गये। पहले तो प्रद्योत को विश्वास नहीं होता, पर काञ्चुकीय ने प्रत्यय दिलाने पर विश्वस्त होते हैं। राजा कांचुकीय से कहते हैं कि राजकुमार के अनुरूप सत्कार कर वत्सराज को भीतर लाओ। उसके चले जाने पर रानी उदयन को ही योग्यवर कहती हैं पर राजा कहते हैं यह बड़ा उद्दण्ड है मेरे सम्मान का ध्यान नहीं रखता। उसे अपने भरतवंश, गान्धर्ववेद, सौन्दर्य तथा पौरप्रेम का दर्प है। काञ्चुकीय लौटकर कहता है कि वत्सराज की घोषवती नामक वीणा को शालङ्कायन ने आपके पास भेजा है। राजा उसे वासवदत्ता को दे देते हैं। राजा प्रद्योत वत्सराज की सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखने को कहते हैं। रानी कहती है कि अभी वासवदत्ता बच्ची है अतः अभी विवाह की कोई चिन्ता नहीं।

तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में महासेन प्रद्योत की राजधानी में वत्सराज का विदूषक दिखायी पड़ता है। उसने अपना वेष परिवर्तित कर लिया है। वत्सराज के चर तथा अमात्य भी वेष-परिवर्तन कर वहाँ जुट गये हैं। यौगन्धरायण ने उन्मत्तक का वेष बनाया है और रुमण्वान् ने श्रमणक का। विदूषक के लड्डुओं को उन्मत्तक ने लिये हैं। सांकेतिक भाषा में वे बात कर रहे हैं। विदूषक अपने मोदकों को माग रहा है, पर उन्मत्तक उन्हें नहीं दे रहा है। इसी समय वहाँ श्रमणक के वेश में रुमण्वान् आ जाता है। वे कुछ बातचीत करके मध्याह्न काल समझ मन्त्रणा के लिये अग्निगृह में प्रविष्ट होते हैं। विदूषक बताता है कि वह वत्सराज से मिला था। यद्यपि उनको हमलोगों ने मुक्त करने का सारा उपक्रम कर डाला है पर उन्हें तो वासवदत्ता का दर्शन हो गया है और वे उसे लेकर चलने को कहते हैं। विदूषक के बाद रुमण्वान् भी यही कहता है। यौगन्धरायण कहता है कि यह तो बड़ी हास्यास्पद बात है

कि इस निन्दनीय अवस्था को प्राप्त होकर भी स्वामी को काम सता रहा है। पर, चाहे जो हो हमलोगों को तो उनकी इच्छा का अनुवर्तन करना ही है। वह प्रतिज्ञा करता है कि 'यदि जिस भांति गाण्डीवधन्वा अर्जुन ने सुभद्रा का हरण किया उसी भांति राजा वासवदत्ता का हरण नहीं कर लेते तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं। यदि घोषवती वीणा, नलागिरि हस्ती, वासवदत्ता तथा राजा को हर कर कौशाम्बी न पहुँचा दूँ तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं।' इसी समय दुपहरी टल जाने तथा जनकोलाहल सुनायी देने से वे इधर-उधर चल देते हैं।

चतुर्थ अङ्क में गात्रसेवक को ढूँढते हुये भट आता है। गात्रसेवक वस्तुतः वत्सराज का चर है जो वेश बदल कर प्रद्योत के यहाँ भद्रवती हस्ती का संरक्षक बना है। यह हाथी का पता न पाकर उसे ढूँढता है और गात्रसेविक कृत्रिम रूप से मद्यप होने का अनुकरण करता है। वह भट को बताता है कि उसने हाथी के अंकुश, घण्टा आदि समस्त पदार्थों को शौण्डिक के यहाँ दे दिया है। वह नशे में एकदम चूर होने का अनुकरण कर रहा है। इसी समय कोलाहल बढ़ता है और शोर में पता लगता है कि वत्सराज वासवदत्ता को लेकर भाग गया। गात्रसेवक अपना असली रूप प्रकट करता है और कहता है कि हम लोग अमात्य यौगन्धरायण के द्वारा विभिन्न स्थलों पर नियुक्त वत्सराज के चारपुरुष (गुप्तचर) हैं। वत्सराज के भाग जाने पर युद्ध प्रारम्भ होता है और उसमें यौगन्धरायण बन्दी बना लिया जाता है। यौगन्धरायण को पकड़े जाने का किञ्चित् भी खेद नहीं, क्योंकि उसने स्वामी का कार्य तो निष्पन्न कर ही दिया। यौगन्धरायण को शस्त्रागार में टिकाया जाता है। शस्त्रागार में प्रद्योत का अमात्य भरतरोहक उससे मिलता है। भरतरोहक वत्सराज के कृत्यों की निन्दा करता है, पर यौगन्धरायण सभी आक्षेपों का उत्तर दे देता है। भरतरोहक उसे भृङ्गार नामक स्वर्णपात्र पुरस्कार में देता है। पहले तो यौगन्धरायण लेना नहीं चाहता, पर जब सुनता है कि प्रद्योत ने वत्सराज द्वारा वासवदत्ता के भगाये जाने का अनुमोदन कर चित्रफलक के द्वारा दोनों का विवाह कर दिया है तो इस उपहार को स्वीकार करता है।

भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटक का नामकरण—इस नाटक का नामकरण अमात्य यौगन्धरायण की प्रतिज्ञाओं पर आश्रित है। प्रथमबार जब वह सुनता है कि कपट के माध्यम से प्रद्योत ने वत्सराज को बन्दी बना लिया तो प्रतिज्ञा करता है कि 'यदि मैं वत्सराज को छुड़ा नहीं लेता तो यौगन्धरायण नहीं।' इस प्रतिज्ञा के उत्तीर्ण होने के अवसर पर ही एक दूसरी बात सामने आ जाती है। उदयन के भागने का वह सारा प्रबन्ध कर देता है पर उदयन कहता है कि मैं वासवदत्ता को लेकर भागना चाहता हूँ। विदूषक तथा रुमण्वान् के द्वारा जब यौगन्धरायण इस बात को सुनता है तो पुनः प्रतिज्ञा करता है—'यदि वत्सराज के द्वारा मैं अर्जुन के द्वारा सुभद्रा की भाँति वासवदत्ता का हरण नहीं करा देता तो मैं यौगन्धरायण नहीं। यदि घोषवती वीणा, भद्रवती हाथी, तथा वासवदत्ता का मैं हरण नहीं करा देता तो यौगन्धरायण नहीं।' यौगन्धरायण की इन्हीं प्रतिज्ञाओं पर इस नाटक का नामकरण हुआ है।

नाटकीय कथा का आधार—उदयन तथा वासवदत्ता की प्रेमकहानी उज्जयिनी के लोगों के मुख पर रहती थी। इसका स्पष्ट उल्लेख कालिदास ने किया है—'प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्'—(मेघदूत)। इसी लोकप्रचलित कथा को आधार बनाकर भास ने इस नाटक की रचना की है। वत्सराज उदयन का आख्यान गुणाढ्य की बृहत्कथामञ्जरी तथा सोमदेव के कथासरित्सागर में उपलब्ध हैं। सम्भव है लोककथा का वही वास्तविक रूप रहा है जो कथासरित्सागर तथा बृहत्कथामञ्जरी में उपलब्ध है, और भास ने उसमें यथेच्छ परिवर्तन किया हो। यह भी सम्भावना है कि भास के नाटकों में उपलब्ध कथा का रूप भी प्रचलित रहा हो। यह प्रायेण पाया जाता है कि एक ही लोककथा विभिन्न स्थानों तथा व्यक्तियों के माध्यम से विभिन्न रूप धारण कर लेती है। उदयन की कथा इतनी लोकप्रिय रही है कि विभिन्न नाटककारों ने इसे वर्णित करने में अपनी लेखनी की सार्थकता समझी। उन्मत्तवासवदत्ता, वीणावासवदत्ता तथा रत्नावली ऐसी ही नाट्यकृतियाँ हैं। किमप्यस्तु, भास के नाटक में प्रचलित लोककथा से अन्तर स्पष्ट है।[1]

---

१. भास के नाटकों में उदयन की कथा के परिवर्तन के लिये द्र० अय्यर-कृत 'भास' पृष्ठ २०३-२०६

चरित्र-चित्रण—वत्सदेशाधीश उदयन कलाकारों का शिरमौर है। उसका जन्म प्रख्यात भरतवंश में हुआ है। वह अद्वितीय रूपवान् है और उसके रूप गुण पर महासेन प्रद्योत की स्त्री भी लुब्ध हैं। वीणावादन में वह आचार्य है। उसके वीणा बजाने में इतना गुण है कि उन्मत्त गज भी सहज में ही वशीभूत हो जाते हैं। इसी वीणा के सहारे वह प्रद्योत के मायागज को वशीभूत करना चाहता है पर दैव दुर्विपाक से स्वयं ही वशीभूत हो जाता है। उसके वीणा की प्रसिद्धि देश-देशान्तर में फैली हुई है और बन्दी अवस्था में ही उसे प्रद्योतपुत्री वासवदत्ता को वीणा सिखाने का दायित्व मिलता है। अतुलित कलाप्रेमी होने के साथ ही साथ उसमें शौर्य-पराक्रम की भी कमी नहीं। कृत्रिम गज को पकड़ने का प्रयास करते समय जब प्रद्योत की सेना उस पर टूट पड़ती है तो वह ज़रा भी विचलित नहीं होता और अनेकों को मृत्यु के घाट भेज देता है। वहाँ उसके धैर्य तथा पराक्रम की परीक्षा होती है और इसमें वह सफल होता है। अन्ततोगत्वा वह बन्दी बना लिया जाता है। वहाँ भी उसके गुणों तथा रूप की धाक जम जाती है। बन्दी अवस्था में भी वह मन से बन्दी नहीं है और यौगन्धरायण द्वारा मुक्ति का पूरा प्रबन्ध कर लेने पर भी वासवदत्ता को लेकर चलने की ही ठानता है। इस काम में वह अपने कौशल तथा यौगन्धरायण के बुद्धिकौशल से सफल होता है। यह भास की महती सफलता है कि नायक को रङ्गमञ्च पर आने का मौका न देकर भी कथासूत्र को उसी में पिरोये हैं।

यौगन्धरायण—अमात्य यौगन्धरायण बुद्धिमत्ता तथा नीतिकौशल का चूडान्त निदर्शन है। वैसे अमात्य का पाना ईर्ष्या की वस्तु है। कलाकार और विलासी राजा का इस प्रकार संरक्षण कि उसका पराधीन होने पर भी बाल बाँका न होने देना उसकी सफलता के प्रतीक हैं। यद्यपि पहली बार वह चूक जाता है और छल से वत्सराज बन्दी बना लिये जाते हैं, पर, अपनी इस असफलता का वह इतना सुन्दर प्रतीकार करता है कि विरोध पक्ष के मन्त्रियों का शिर सर्वदा के लिये अवनमित हो जाता है। प्रथम अङ्क में ही वह प्रतिज्ञा करता है कि यदि वत्सराज को मुक्त नहीं कराता तो मैं यौगन्धरायण नहीं। यह महान् आत्मविश्वास का निदर्शन है। यदि उसने मूल गँवाया है तो ब्याज के

साथ—वह भी बड़ी ऊँची दर की ब्याज से, उसे वापस लाता है। वासवदत्ता का हरण सामान्य बात नहीं, वह भी महासेन के संरक्षण से। वह इतना बड़ा नीतिज्ञ है कि सारी उज्जयिनी को अपने गुप्तचरों से पाट देता है। वत्सराज को मुक्त कराने में वह स्वयं को दाव पर रख देता है। वह वेश बदल कर विपत्तियों का सामना करता है और स्वयं को विपत्ति में डाल देता है। वह बन्दी बना लिया जाता है, किन्तु इसका उसे रञ्चमात्र भी खेद नहीं। उसकी बन्दी अवस्था में जब भरतरोहक वत्सराज पर आक्षेप करता है तब यौगन्धरायण सयुक्त वचनों से उसका समाधान कर देता है।

उज्जयनी के स्वामी महासेन प्रद्योत प्रतापी राजा है। सर्वत्र उनके आधिपत्य का सम्मान है। इसमें यदि कोई बाधक है तो केवल उदयन। इसी से उसे चिढ़ है। पर, वह गुणग्राहक भी है। मन ही मन वह वत्सराज के गुणों का प्रशंसक है। जब उसकी रानी उदयन को कन्या देने के विषय में कहती है तो वह कहता है कि वर के सर्वथा उपयुक्त होने पर भी वत्सराज दर्प से भरा है। उसकी सदाशयता इसी से स्पष्ट हो जाती है कि वत्सराज के बन्दी बनाये जाने पर वह उसके साथ राजकुमार-जैसा व्यवहार करने को कहता है। जब वत्सराज प्रद्योततनया वासवदत्ता का हरण कर भगा ले जाता है उस समय भी वह सबका समाधान कर इस सम्बन्ध का अनुमोदन करता है और चित्रफलक के सहारे दोनों का विवाह कर देता है।

रुमण्वान् तथा विदूषक दोनों स्वामिभक्त हैं। राजा का दुःख सुख में सदैव साथ देते हैं। पर विदूषक में धैर्य की मात्रा कम दिखायी पड़ती है। अग्निगृह में मन्त्रणा करते समय वत्सराज के वासवदत्ता के हरण का प्रस्ताव सुनाकर वह खिन्न होता है और साथ छोड़कर चल देने का प्रस्ताव करता है। पर यौगन्धरायण उसे धैर्य दिलाता है। वैसे, इन दोनों का चरित्र इस नाटक में विकसित नहीं हो सका है। प्रद्योत के मन्त्रियों में भी बुद्धिमत्ता की कमी नहीं पर यौगन्धरायण के सामने वे असफल हो जाते हैं। प्रद्योत की पत्नी गुणग्राही तथा कन्या के प्रति असीम स्नेह रखने वाली प्रतीत होती है।

समीक्षण—प्रतिज्ञायौगन्धरायण भास के सफल नाटकों में से एक है। यह उस समय रचा गया जब भास की कला पूर्ण प्रौढ़ि को प्राप्त कर चुकी थी।

कथानक का विन्यास, पात्रों का चरित्राङ्कन, सवाद, और प्रभावान्विति सभी इस नाटक में सफलता को प्राप्त कर चुके हैं। कथावस्तु का विन्यास इस क्रम से हो रहा है कि एक पर एक घटनायें त्वरित गति से बढ रही हैं। कथाभाग को शीघ्रता से प्रदर्शित करने के लिये सूच्यांश की अधिकता इस नाटक में अधिक है। उदयन के बन्दी बनाये जाने का सारा वृत्तान्त दर्शक को सुनना पडता है। वासवदत्ता के हरण का वृत्तान्त भी सूचित ही कर दिया जाता है। इस सन्दर्भ में सवादों का महत्व सुतरा बढ़ जाता है। प्रसङ्गानुकूल ऐसे सवाद जड दिये गये हैं जो दर्शकों के सामने एक नया ही वातावरण उपस्थित कर देते हैं। जब प्रद्योत अपनी महिषी से नाना देश के राजाओं का नाम बता कर कहते हैं कि इसमें किसे कन्या दी जाय उसी समय सहसा बाहर से आकर काञ्चुकीय कहता है 'वत्सराज'। यद्यपि उसका तात्पर्य वत्सराज को बन्दी बताना है पर वहाँ सहसा यह मालूम पडता है कि वह उदयन को उपयुक्त वर बता रहा है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से नाटककार ने पात्रों के चरित्र को बडे ही आकर्षक रूप में रखा है। जहाँ उदयन कलाप्रेमी, रूपवान् तथा शौर्य के प्रतीक-प्रदर्शित किये गये हैं वहीं यौगन्धरायण नीति विशारद के रूप में दर्शाया गया है। प्रद्योत का चरित्र भी उदात्त प्रदर्शित किया गया है। लघुविस्तारी वाक्यों तथा बोधगम्य भाषा के द्वारा सामाजिकों का परितोष भास की अपनी विशेषता है।

मनोविकारों के यथातथ्य वर्णन का यहाँ प्राचुर्य है। वत्सराज के बन्दी बनाये जाने पर जहाँ यौगन्धरायण को अपनी नीति पर खीझ होती है वहीं उसमें आत्मविश्वास का भी पर्याप्त परिचय मिलता है। प्रद्योत के द्वारा कन्यादान के विषय में माताओं की प्रवृत्ति का वर्णन मनोविकारों के सूक्ष्म अन्वीक्षण का परिणाम है :—

> अदत्तेत्यागता चिन्ता दत्तेति व्यथितं मनः।
> धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिता' खलु मातरः ॥२।७॥

काव्यकला के परिपाक की दृष्टि से भी यह नाटक ऊची कक्षा को प्राप्त है। इस नाटक में राजनीति और कूटनीति का साम्राज्य है। परवञ्चना ही इसकी

रीढ है। स्वामिभक्ति का महत्त्व इस नाटक में सर्वत्र लक्षित होता है। स्वामिभक्तिपरक यह पद्य दर्शनीय है :

नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ॥४-२॥

सूक्तियों का इस नाटक में प्राचुर्य है। इसके कुछ उदाहरण ये हैं : सर्वं हि सैन्यमनुरागमृते कलत्रम् (१।४), भूमिर्भर्तारमापन्न रक्षिता परिरक्षति (१।६), मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति (१।१८), नीते रत्ने भाजने को निरोधः (४।११) इत्यादि।

१२—स्वप्नवासवदत्तम्

यह भास का सर्वोत्कृष्ट नाटक है। इसकी 'स्वप्ननाटक' भी संज्ञा है। इसके कथानक का भी आधार वत्सराज उदयन का चरित्र है। घटनाक्रम की दृष्टि से यह प्रतिज्ञानाटक का परवर्ती भाग है। स्वप्न वाला दृश्य नितान्त महत्त्वपूर्ण है और संस्कृत नाटकों की कक्षा में इस नाटक को ऊँचाई पर पहुँचा देता है। प्रथम अङ्क में तपोवन का दृश्य है। अमात्य यौगन्धरायण परिव्राजक के वेष में तथा वासवदत्ता आवन्तिका के वेष में दिखायी पड़ते हैं। मगधनरेश दर्शक की माता तपोवन में निवास कर रही है। उसी को देखने के लिये मगधेश्वर की बहन पद्मावती आ रही है। उसके रक्षक लोगों को खदेड़ कर मार्ग खाली करा रहे हैं। उनके द्वारा इस निस्सारण क्रिया को देखकर यौगन्धरायण को आश्चर्य होता है कि इस शान्त तपोवन में निस्सारण-क्रिया कैसे हो रही है। अपमान को न सहनेवाली वासवदत्ता को इस बात का क्लेश होता है कि उसकी भी अवधीरणा होगी। यौगन्धरायण उसे सान्त्वना देता है और कहता है कि भाग्य की दशा चक्र के आरे की भाँति ऊपर-नीचे आती-जाती रहती है अतः इसमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। इसी समय मगधराज का काञ्चुकीय वहाँ आता है और भटों को इस निस्सारण-क्रिया से विरत करता है।

पद्मावती राजमाता का दर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त करती है। उसकी इच्छा है कि अभ्यर्थियों को दान-मान से सन्तुष्ट किया जाय। उसके निदेश से काञ्चुकीय आश्रमवासियों से पूछता है कि जिस किसी को जो वस्तु अभीष्ट हो

वह माँग ले। वहाँ के तापसों में से तो कोई याचना नहीं करता पर यौगन्धरायण आगे बढ़कर कहता है कि 'यह मेरी भगिनी है, इसका आप संरक्षण करें। बिचारी प्रोषितपतिका है।' पद्मावती पहले तो उस भार को वहन करने में ढील दिखाती है पर प्रतिज्ञा का स्मरण कर उसे रख लेती है। दैवज्ञों से यौगन्धरायण ने सुना है कि पद्मावती उदयन की पत्नी होगी अतः वासवदत्ता को उसे सौंपना वह नितान्त उपयोगी समझता है। पद्मावती ही वासवदत्ता को साक्षिणी होगी।

इसी समय वत्सदेश के लावाणक ग्राम से एक ब्रह्मचारी आता है और बताता है कि 'वहाँ बड़ी दुर्घटना घटित हो गयी। उस ग्राम में वत्सराज उदयन अपनी पत्नी वासवदत्ता तथा अमात्यों के साथ ठहरे हुए थे। एक दिन जब वे मृगया के लिये गये थे उनके आवास में आग लग गई। उदयन की पत्नी वासवदत्ता उसी से जल गयी तथा उसी के बँचाने के प्रयास में मन्त्री यौगन्धरायण भी जल गया। जब राजा आखेट से लौटे तो उन्हें महान् सन्ताप हुआ। वे प्राणत्याग कर रहे थे कि अमात्यों ने बड़े प्रयत्न से उन्हें विरत किया। पत्नी के विरह से उनकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गयी है पर, मन्त्री रुमण्वान् उनका सम्यक् रक्षण कर रहा है।' ब्रह्मचारी यह सुनाकर चला जाता है। यौगन्धरायण भी आज्ञा लेकर चला जाता है।

द्वितीय अङ्क में पद्मावती और वासवदत्ता कन्दुक खेलती दिखाई पड़ती हैं। वासवदत्ता पद्मावती के साथ परिहास भी कर रही है। पद्मावती को वह महासेन की होनेवाली वधू कहती है। इसी समय चेटी कहती है कि भर्तृदारिका पद्मावती उसके साथ सम्बन्ध नहीं चाहती। यह वत्सराज उदयन को चाहती है क्योंकि वह बड़ा दयालु है। वासवदत्ता सोचती है कि इसी तरह वह भी उन्मत्त हो गयी थी। इसी समय धात्री आती है और कहती है कि पद्मावती उदयन को दे दी गई। वासवदत्ता को यह सुनकर ठेस लगती है और सहसा कह उठती है कि यह तो बड़ा बुरा हुआ। यद्यपि मनोवेग के कारण वह बोल जाती है पर समाधान करते हुये कहती है कि पहले तो वह अपनी स्त्री के लिये इतना उन्मत्त था और अब विरक्त हो गया। वासवदत्ता यह भी पूछती है कि क्या उसने स्वयं पद्मावती का वरण किया? धात्री बताती है कि वह किसी

प्रसङ्ग से यहाँ आया हुआ था तो हमारे महाराज ने स्वयं उसे कन्या दे दी। इसी समय एक चेरी आकर कहती है कि आज ही मंगल मुहूर्त है अतः शीघ्रता कीजिये। धात्री के साथ सभी चली जाती हैं।

तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में चिन्ताकुला वासवदत्ता दिखाई पड़ती है। उसे बड़ा दुःख है कि वत्सराज उदयन भी अब दूसरे के हो गये। वह तर्क वितर्क कर ही रही है कि पुष्पों को लेने वहाँ चेरी पहुँचती है। वह वासवदत्ता से कहती है कि मालकिन ने कहा है कि 'आप महाकुलप्रसूता, स्निग्धा तथा निपुणा हैं अतः आप ही इस कौतुकमाला को गूँथें।' वासवदत्ता मानसिक कष्ट के साथ माला गूँथती है। माला गूँथते समय वह उदयन की प्रशंसा सुनती जाती है। चेरी माला लेकर चली जाती है।

चतुर्थ अङ्क में विदूषक रङ्गमञ्च पर दिखायी पड़ता है और उदयन के विवाह-सम्पन्न हो जाने की सूचना देता है। उसे इस बात की प्रसन्नता है कि वासवदत्ता दाहरूप महान् अनर्थ हो जाने से जो आपत्ति आ गई थी उसका पद्मावती-परिणय से शमन हो गया। मगधराज के यहाँ उदयन का आदर-सत्कार हो रहा है। इसके अनन्तर पद्मावती वासवदत्ता के साथ शेफालिका गुल्मों का अवलोकन करने के लिये आती है। उसके साथ में चेटी भी है। वासवदत्ता पद्मावती से पूछती है कि क्या तेरा पति प्रिय है? पद्मावती इसका उत्तर यह कह देती है कि 'यह तो पता नहीं, पर, इतना अवश्य है कि उसके बिना मेरा मन नहीं लगता।' पद्मावती यह भी कह बैठती है कि जितने हमें आर्यपुत्र प्रिय हैं उतने ही क्या वासवदत्ता को भी प्रिय थे?' वासवदत्ता स्वभावतः कह बैठती है कि 'इससे भी अधिक प्रिय थे।' पद्मावती तुरन्त पूछती है कि यह तुम्हें कैसे पता है। वासवदत्ता कहती है कि यदि ऐसा न होता तो वह परिजनों को क्यों छोड़ती? वे आपस में इस प्रकार वार्तालाप कर ही रही हैं कि उदयन वहाँ विदूषक के साथ आ जाता है। उसे देखकर पद्मावती तथा वासवदत्ता लता गुल्म में छिप जाती हैं। उदयन वहाँ की छटा को देखता है। इसी समय विदूषक वसन्तक उससे पूछता है कि वासवदत्ता तथा पद्मावती में आपको कौन अधिक प्रिय है? पहले तो वत्सराज आना-कानी करता है पर विदूषक के ज्यादा आग्रह करने पर कहता है कि यद्यपि रूप, गुण तथा दाक्षिण्य में पद्मावती अधिक है, पर, वासवदत्ता

में आकृष्ट मेरे मन को आकर्षित नहीं कर रही है। यह सुनकर वासवदत्ता को परम प्रीति होती है और राजा के दाक्षिण्य की पद्मावती भी प्रशंसा करती है। अब उदयन भी वसन्तक से पूछता है कि तुम्हें कौन अधिक प्रिय है और वसन्तक पद्मावती की अधिक प्रशंसा करता है। राजा अनजाने ही कहता है कि मैं इसे वासवदत्ता से कहूँगा। वसन्तक उसे मरा बताता है। सहसा प्रबुद्ध होने पर उदयन को वासवदत्ता की स्मृति हो जाती है और वह रोने लगता है। उपयुक्त अवसर पाकर वासवदत्ता वहाँ से चली जाती है। पद्मावती अब उदयन के पास जाती है। उदयन बहाना करते हुये कहता है कि पुष्पों की रेणु से आँख में आँसू आ गये। पद्मावती जल से उसका मुखमार्जन कराती है।

पञ्चम अङ्क में ज्ञात होता है कि पद्मावती को शीर्षवेदना हो रही है और वह समुद्रगृहक में पड़ी है। मधुरिका वासवदत्ता को समाचार बताने जाती है जिससे आकर वह मधुर कथाओं से पद्मावती का मनोविनोद करे। पद्मिनिका यह खबर उदयन को बताने जाती है। उसे मार्ग में विदूषक मिल जाता है और स्वामी को सूचना देने के लिये कहकर शीर्षानुलेपन लाने चली जाती है। विदूषक जाकर यह समाचार उदयन से कहता है और समुद्रगृहक में चलने के लिये कहता है। उदयन कहता है ज्योंही मेरा पूर्व शोक मन्द हो रहा था यह दूसरी विपत्ति आ पड़ी। वह समुद्रगृहक में जाता है। वहाँ जाकर देखता है कि पद्मावती अभी नहीं आयी है। वह लेट जाता है और विदूषक उसे कहानी सुनाने लगता है। उसे नींद आ जाती है और प्रावारक लाने के लिये विदूषक वहाँ से चला जाता है। इसी समय वहाँ वासवदत्ता भी आ जाती है। वह उदयन को सोया हुआ देखकर उसे पद्मावती समझती है और पार्श्व में लेट जाती है। उदयन स्वप्न में वासवदत्ता का नाम लेकर बोलने लगता है। वासवदत्ता को पता लगता है कि यह पद्मावती नहीं अपितु उदयन है। वह कुछ देर तक वहाँ रहती है और उदयन की नीचे लटकती बाँह को ऊपर उठाकर चली जाती है। उसके निकलते ही उदयन की नींद टूटती है और वह स्वप्नावस्था में ही उसका पीछा करता है पर द्वार का धक्का लगने से गिर पड़ता है कि इसी समय वहाँ विदूषक आ जाता है। उदयन उससे कहता है कि उसने वासवदत्ता का दर्शन कर लिया है। पर विदूषक इसे स्वप्न अथवा माया

कहता है। उदयन कहता है कि यदि यह स्वप्न है तो स्वप्न ही सदैव बना रहे क्योंकि जागरण से यही अधिक हितावह है। उनके बातचीत करते समय ही मगधराज का काञ्चुकीय वहाँ आता है और कहता है कि आपका अमात्य रुमण्वान् आरुणि को मारने के लिये सेना के साथ सन्नद्ध है और मगधराज की सेना भी उसका अनुगमन कर रही है अतः आप तैयार हो जाइये।

षष्ठ अङ्क में महासेन का काञ्चुकीय रैभ्य तथा वासवदत्ता की धात्री वसुन्धरा अवन्ती से उदयन से भेंट करने के लिये आती हैं। प्रतीहारी से यह भी पता चलता है कि किसी व्यक्ति ने नर्मदातटीय जंगल में घोषवती नामक वीणा पायी थी जिसकी ध्वनि को सुन कर महाराज ने उसे मँगा लिया है तथा वासवदत्ता का स्मरण कर विलाप कर रहे हैं। उदयन को महासेन के यहाँ से काञ्चुकीय तथा धात्री के आने की सूचना दी जाती है और पद्मावती के साथ वह उनसे भेंट करता है। महासेन की महिषी अङ्गारवती का सन्देश सुनाते हुये धात्री कहती है कि महारानी ने कहा है 'तुम्हारा और वासवदत्ता का सम्बन्ध तो हम लोगों को अभीष्ट था ही, पर तुम चापल्यवश जल्दी ही भाग गये। तुम्हारे जाने पर हम लोगों ने चित्रफलक के सहारे तुम दोनों की शादी कर दी। अब इस चित्रफलक को लेकर धैर्य धारण करो।' उस चित्रफलक को देखकर पद्मावती कहती है कि ऐसी ही स्त्री एक मेरे पास है जिसे एक ब्राह्मण ने प्रोषितपतिका कहकर न्यास के रूप में रखा है। ब्राह्मण का न्यास सुनकर उदयन कहता है कि तुल्यरूपता संसार में होती है अतः यह कोई दूसरी स्त्री होगी।

इसी समय अपना न्यास लौटाने यौगन्धरायण भी आ जाता है। वासवदत्ता लायी जाती है और सब लोग उसे पहचान लेते हैं। यौगन्धरायण राजा के पैरों पर गिर पड़ता है। पद्मावती भी अविनय के लिये वासवदत्ता से क्षमा माँगती है। वत्सराज उदयन के द्वारा इस प्रपञ्च का रहस्य पूछे जाने पर यौगन्धरायण बताता है कि दैवज्ञों ने आपका पद्मावती के साथ परिणय बताया था। अतः यह परिणय एवं मगधराज के साहाय्य से वत्सभूमि की प्राप्ति दोनों ही कार्य सिद्ध हो गये। महासेन को यह प्रियसंवाद सुनाने के लिये पद्मावती के साथ सभी लोग उज्जयिनी जाने के लिये प्रस्तुत होते हैं। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटक का नामकरण—इस नाटक का नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' राजा के द्वारा स्वप्न में वासवदत्ता के दर्शन पर आधृत है। स्वप्न वाला दृश्य संस्कृत नाट्य साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है। पञ्चम अङ्क में पद्मावती की शीर्षवेदना से पीडित जानकर उदयन उसे देखने समुद्रगृहक में जाता है और उसे वहाँ न पाकर वहीं सो जाता है। इसी समय वासवदत्ता भी वहाँ आती है और उदयन को पद्मावती समझ लेट जाती है। पर राजा को स्वप्न में बोलते सुन उसे पहचान कर वह चल देती है। राजा भी सहसा उठकर दौड़ता है पर दरवाजा से टकराकर गिर जाता है। यह घटना बड़ी ही सरस तथा हृदयावर्जक है। भास की कल्पना ने पद्मावती की शीर्षवेदना के व्याज से उदयन और वासवदत्ता को एकत्र सघटित कर दिया है। कुछ लोग इस नाटक के नामकरण के विषय में कहते हैं कि इसका नाम 'पद्मावती परिणय' या 'उदयनोदय' होना चाहिये। परन्तु, जो सरसता और कल्पना का प्रसाद स्वप्न दृश्य में है वह इस नाटक का आत्मा है और उस आधार पर यह नामकरण सर्वथा यथार्थ है।

नाटक का आधार—प्रतिज्ञायौगन्धरायण की ही भाँति स्वप्नवासवदत्तम् की कथा का आधार उदयन से संबन्धित लोककथा है। इस नाटक में भी प्रचलित कथा से नाटककार ने पर्याप्त परिवर्तन किया है। प्रसिद्ध कथा में यौगन्धरायण ने वासवदत्तादाह की झूठी अफवाह फैलाकर तथा पद्मावती के साथ उसका परिणय कराकर इसे चक्रवर्ती सम्राट् बनाने का काम किया। कदाचित् दर्शक इस कथा को पसन्द न करते इसीलिये नाटककार ने चक्रवर्ती बनाने के उद्देश्य से नहीं, अपितु, आरुणि से पदाक्रान्त कौशाम्बी की रक्षा के लिये वासवदत्तादाह की झूठी अफवाह का कथानक बनाया है। इसी प्रकार 'स्वप्न' वाला दृश्य भी लोक कथा में नहीं है। यह नाटककार की उद्भावना है। अन्य परिवर्तन भी तुलना करने पर स्पष्ट हो जाते हैं।

चरित्र-चित्रण—इस नाटक का नायक उदयन कलाप्रेमी, विलासी तथा रूपवान् है। इसके रूप की प्रशंसा सभी समानरूपेण करते हैं (द्र० द्वितीय अङ्क जहाँ वासवदत्ता उसे दर्शनीय कहती है तथा तृतीय अंक जहाँ चेटी उसे शरचापहीन कामदेव बताती है)। यह वत्सदेश का अधिपति है। उसके

वीणावादन की प्रसिद्धि सर्वत्र फैल चुकी है। राजा मृगया का भी प्रेमी है। मृगया के लिये बाहर जाने पर ही लावाणकदाह की घटना घटित होती है। वह दाक्षिण्य गुण से युक्त है। वासवदत्ता की स्मृति उसे सदैव बनी है और पद्मावती-परिणय के अनन्तर भी विदूषक के पूछने पर कहता है कि पद्मावती वासवदत्ता की भाँति मन को आकृष्ट नहीं कर रही है। इसी दाक्षिण्यगुण के कारण अपने वासवदत्ता के प्रति प्रेम को वह पद्मावती के सामने प्रकट नहीं होने देता।

राजा में विवेक की कुछ कमी प्रतीत होती है। इसी कारण अन्तिम अङ्क में यौगन्धरायण के विरोध करने पर भी वह वासवदत्ता को भीतर जाने के लिये कहता है, यद्यपि उसे उसका पूर्ण परिचय नहीं प्राप्त हो सका है। यह उसके सद्यः पूर्व के वक्तव्य—'परस्परगतालोके दृश्यते तुल्यरूपता' से मेल नहीं खाता। यवनिका प्रक्षेप के बाद ही उसे वस्तुस्थिति का ठीक ज्ञान होता है। नायक के वर्गीकरण में उदयन धीरललित नायक ठहरता है। साहित्यदर्पण के अनुसार धीरललित नायक 'निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्' होता है। ये गुण उसमें पूर्णता के साथ हैं। निश्चिन्त तो वह इतना है कि राज्यभार पूर्णत मन्त्रियों पर छोड़ देता है। कलापरायणता का पूछना ही नहीं। मृदु इतना है कि क्रोध का दर्शन नहीं होता।

परन्तु, धीरललित होने के अलावे शौर्य का उसमें अभाव नहीं। पञ्चम अङ्क के अन्त में जब उसे सूचना मिलती है कि रुमण्वान् ने आरुणि पर आक्रमण कर दिया है और सहायता के लिये मगधनरेश की सेना सन्नद्ध है तो वह भी उद्यत हो जाता है। गुरुजनों के प्रति सम्मान की भावना उसमें भरी है। जब महासेन तथा अङ्गारवती के यहाँ से आया ब्राह्मण तथा धात्री सन्देश सुनाते हैं तो 'क्या आज्ञा है' कहकर वह आसन से उठ जाता है। जो व्यक्ति किसी के आदेश को सुनने के लिये आसन से उठ जाता है वह गुरुजनों के प्रत्यक्ष होने पर कितना सम्मान करेगा यह सहज अनुमेय है।

वासवदत्ता—रूपयौवनशालिनी वासवदत्ता अत्यन्त पतिभक्त रमणी है। वह ऐसी पतिव्रता रमणियों की कक्षा में दिखायी पड़ती है जो स्वामिहित के लिये सर्वस्व त्यागने के लिये प्रस्तुत रहती हैं—प्रस्तुत ही नहीं रहतीं त्याग देती हैं। वासवदत्ता उज्जयिनी नरेश महासेन प्रद्योत की पुत्री है। बन्दी अवस्था मे

उदयन के रहते समय उसका परिचय हुआ। यही परिचय प्रगाढ़ होकर प्रेम में परिणत हो गया। महासेन दोनों का ब्याह करानेवाले ही थे कि चापल्यवश उदयन वासवदत्ता को लेकर भाग गया।

वासवदत्ता में स्वाभिमान की भावना कूट-कूट कर भरी है। अवधीरणा की बात सुनकर भी वह काँप उठती है। प्रथम अंक में जब देखती है कि मगध-राज के अनुचर लोगों को रास्ते से खदेड़ रहे हैं तो उसे सम्भावना होती है कि वह भी हटायी जायेगी। इस परिभव से वह खिन्न होती है। वह गुणग्राहिणी है। पद्मावती के रूप की प्रशंसा वह खुले मुँह से करती है—अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्। उसे पतिव्रता के धर्म का ज्ञान है और इसीलिये सदैव पर-पुरुषदर्शन का निषेध करती है। वह 'धीरा' वर्ग की नायिका है। वह उदयन की मंगलकामना करती है इसीलिये उसके विरहपर्युत्सुक मन के लिये पद्मावती को विश्रामभूता मानती है। परन्तु सब कुछ होते हुये भी 'आर्यपुत्रोऽपि परकीयः संवृत्तः' का स्मरण उसे रह रह कर खल जाता है। उदयन के द्वारा अपनी प्रशंसा सुनकर वह फूल उठती है।

पद्मावती—यह मगधनरेश की भगिनी है। वह अत्यन्त रूपवती है। उसके रूप की प्रशंसा स्वयं वासवदत्ता प्रथम अंक में करती है। उसकी वाणी भी मधुर है। उदयन भी उसके रूप की प्रशंसा करता। विदूषक के शब्दों में तो वह सर्वसद्गुणों की आकर है। वह तरुणी, दर्शनीया, अकोपना, अनहंकारा, मधुरवाक् और सदाक्षिण्या है (द्र० चतुर्थ अंक—विदूषक की उक्ति)। अपने कर्तव्य के पालन में वह कभी नहीं चूकती। क्योंकि वासवदत्ता परपुरुषदर्शन का वर्जन करती है अतः उसी के लिये वह उदयन के पास नहीं जाती। वह बुद्धिमती नारी है। जब विदूषक उदयन से पूछता है कि वासवदत्ता और पद्मावती में कौन अधिक प्रिय है तो उदयन कहता है कि नहीं बताऊँगा। इस पर जब वसन्तक पुनः पूछता है तो कहती है कि यह इतने से भी नहीं समझा।

वह उदारमना तथा बड़ों का सम्मान करने वाली है। वन में जिस किसी को उसका अभीष्ट पूरा करने की उद्घोषणा करती है। जिस प्रकार वासवदत्ता आदर्श सपत्नी है उसी प्रकार पद्मावती भी। वह वासवदत्ता के पिता-माता का

अपने अभिभावकों जैसा सम्मान करती है। वासवदत्ता का पता चल जाने पर वह उसके पैरों पर गिर जाती है और अविनय के लिये क्षमा-याचना करती है।

संक्षेप में उदयन की दोनों पत्नियाँ आदर्श गुणों से युक्त हैं।

यौगन्धरायण—यौगन्धरायण आदर्श मंत्री है। नाटक सारा घटनाचक्र उसी के बुद्धिकौशल से चल रहा है। कलाप्रिय विलासी तथा राज्य से उदासीन राजा का मगल निर्भाटन सरल कार्य नहीं है। यह उसी के बुद्धिवैभव का प्रसाद है। 'स्वामिभक्ति' उसमें पूर्णतः भरी है। स्वामी के भला के लिये वह सब कुछ सहने के लिये तैयार है। स्वामिभक्ति उसमें इतनी है कि ज्योतिषियों के मुख से उसने सुन रखा है कि पद्मावती उदयन की पत्नी होगी। मात्र इतने से ही वह अपना मानने लगा—भर्तृदाराभिलाषित्वादस्या मे महती स्वता।'

इतना बड़ा बुद्धिकौशल तथा स्वामिभक्ति होने पर भी वह निरभिमानी है और कहता है कि—स्वामिभाग्यस्यानुगन्तारो वयम्। जब उदयन खोयी वत्स-भूमि को पुनः प्राप्त कर लेता है तथा वासवदत्ता भी मिल जाती है उस समय यौगन्धरायण उसके पैरों पर गिर पड़ता है। धन्य है स्वामिभक्ति! वह कहता है कि यह सारा प्रपञ्च उसने इसलिये रचा कि राज्यविस्तार हो तथा पद्मावती से ब्याह हो। वह आदर्श अमात्य है।

विदूषक (वसन्तक)—पेटू ब्राह्मण वसन्तक उदयन का मित्र है। वह नटखट तथा विनोदी है। पेटपूजा का ध्यान उसे सदैव बना रहता है भले ही अधिक खाने से उदरपीडा हो। मगधराज के यहाँ खाने से वह बीमार पड़ गया है। इसका ज्ञान बहुत ही सीमित है। कहानी तो सुनाता है पर इसे पता नहीं कि नगर का ब्रह्मदत्त नाम है या व्यक्ति का। यद्यपि दूसरों के प्रेम में उसे आनन्द आता है पर प्रतीत होता है अपने लिये उसे प्रेम नामक वस्तु का ज्ञान नहीं।

समीक्षण—स्वप्नवासवदत्तम् भास की कला की सर्वोत्तम परिणति है। समीक्षकों ने बहुत पहले ही यह जान लिया था कि इसकी रसवत्ता अग्नि में भी नहीं जल सकी। नाटकीय सविधान, कथोपकथन, चरित्र चित्रण, प्राकृतिक वर्णन और रसोन्मेष सभी इस नाटक में पूर्ण परिपाक को प्राप्त हुये हैं। स्वप्न वाला दृश्य इस नाटक में विशेष महत्त्व रखता है। दर्शक इस दृश्य को देखकर भास के महान् व्यक्तित्व से अभिभूत हुये बिना नहीं रह सकते। धीरललित

नायक उदयन का कलाप्रेम यदि एक ओर सहृदय हृदय का आवर्जन करता है तो दूसरी ओर नीतिज्ञ यौगन्धरायण का बुद्धिविलास मस्तिष्क को चमत्कृत कर देता है।

भास के इस नाटक में एक विचित्र अनूठापन है। लघुविस्तारी वाक्यों में जितना सरस पदविन्यास प्रभावित करता है उतने ही भाव भी रसाप्लावित करते हैं। मानव-हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावदशाओं का चित्रण इस नाटक में सर्वत्र देखा जा सकता है।

भास ने इस नाटक में प्राकृतिक दृश्यों का बड़ा ही व्यापक तथा हृदयहारी वर्णन किया है। ये वर्णन इतने हृदयावर्जक तथा साङ्गोपाङ्ग हैं कि पूरा दृश्य ही सामने नाचने लगता है। तपोवन का यह वर्णन देखिये—

> विश्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
> वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः।
> भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
> निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः॥

(स्थान के विश्वास से हरिण विश्वस्त होकर घूम रहे हैं। तोड़ी न जाने से वृक्षों की शाखायें फूल फलों से लदी हैं। कपिला गायें बहुत दिखायी पड़ रही हैं तथा खेत भी नजर नहीं आ रहे हैं। यज्ञीय धूम चारों ओर से निकल रहा है अतः निश्चय ही यह तपोवन है।)

सन्ध्या का वर्णन देखिये—

> खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
> प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
> परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
> रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्॥१।१६॥

(पक्षिगण नीड़ों में चले गये हैं। मुनिजन स्नानार्थ जल में प्रविष्ट हो चुके हैं। सायंकालीन होम अग्नि जला दी गई है और धूम जंगल में फैल रहा है। दूर से आने के कारण सूर्य की धीरे धीरे किरणें भी संकुचित हो गयी हैं तथा यह रथ को घुमा कर धीरे-धीरे अस्ताचल में प्रविष्ट हो रहा है।)

इस नाटक में सूक्तियाँ भी सर्वत्र दिखायी पड़ती हैं। ये सूक्तियाँ इतनी

मार्मिक तथा सार्वभौम हैं कि पाठक के हृदय में स्थायी निवास बना लेती हैं। कुछ उदाहरण ये हैं :

कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः।—१।४

दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ।१।१०

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः।४।६

प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते।—६।७

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले।६।१० इत्यादि।

इस नाटक का प्रधान रस रसराज शृंगार है। वासवदत्ता और उदयन की दृष्टि से विप्रलम्भ शृंगार का ही प्राधान्य है। शृंगार के अलावे उत्साह का भी वर्णन मिलता है। पद्मावती तथा वासवदत्ता के विनोद में शिष्ट हास्य भी दिखाई पड़ता है। विदूषक के वचनों से भी हास्योद्भावना होती है। चिन्ता, स्मृति, शङ्का, सम्भ्रम आदि मनोदशाओं का भी दर्शन होता है। प्रधान रसकी दृष्टि से कोई उद्दीत रस लक्षित नहीं होता। मान रसों की उद्बुद्धि होती है।

१३—चारुदत्त

महाकवि भास की नाट्य शृंखला में चारुदत्त अन्तिम कड़ी माना जाता है। यह नाटक चार अंकों में विभक्त है। यह नाटक तब रचा गया जब भास की कला चरम प्रौढ़ि को प्राप्त कर चुकी थी। यह नाटक सहसा समाप्त हो जाता है जिससे प्रतीत होता है कि भास की मृत्यु के कारण यह पूरा नहीं हो सका था। इस कथा की पूर्ति शूद्रक ने अपने मृच्छकटिक में की है। नान्दी के अनन्तर स्थापना में नट रङ्गमञ्च पर दिखायी पड़ता है। प्रातःकाल ही उसे भूख लग गयी है अतः कुछ खाने के उद्देश्य से घर लौट आता है। नटी कहती है कि वह अभिरूपपति नामक उपवास का अनुष्ठान कर रही है अतः किसी ब्राह्मण को निमन्त्रण देकर खिलाना है। नट ब्राह्मण को निमंत्रित करने के लिये बाहर निकलता है और उसे चारुदत्त का मित्र मैत्रेय (विदूषक) दिखाई पड़ता है। वह उसे भोजन के लिये निमन्त्रण देता है पर मैत्रेय अस्वीकार कर देता है। प्रस्तावना के अनन्तर विदूषक रङ्गमञ्च पर दिखाई पड़ता है। वह कहता है कि आर्य चारुदत्त उसका स्वागत सत्कार करता है। यद्यपि चारुदत्त

इस समय दारिद्रय से ग्रस्त हो गया है पर वह उसका साथ नहीं छोड़ने को। षष्ठी तिथि के दिन देवबलि करने के लिये वह चारुदत्त के पास पुष्प ले जा रहा है। इसके बाद चारुदत्त विदूषक तथा चेटी रदनिका दिखायी पड़ रहे हैं। चारुदत्त अपनी दरिद्रता पर पश्चात्ताप करता है। उसे इस बात का दुःख नहीं कि वह दरिद्र हो गया है। दुःख इस बात का है कि धन समाप्त हो जाने से सुहृज्जन भी निरादर करने लगे हैं। दुःख के बाद सुख होना अच्छा है पर सुख के बाद दुःख की प्राप्ति जीते ही मृत्यु है। विदूषक उसे सान्त्वना देता है।

तदनन्तर शकार और विट द्वारा पीछा की जा रही गणिका वसन्तसेना दिखायी पड़ती है। गहन अन्धकार से आपूर्ण रात्रि है। अपनी कामपिपासा की परिशान्ति के लिये वे दोनों उसका पीछा कर रहे हैं। उनके वार्तालापों से यह विदित होता है कि वे अत्यन्त क्रूर-प्रकृति के व्यक्ति हैं। उन्हें नरहत्या करने में भी कुछ परेशानी महसूस नहीं होती। शकार अत्यधिक मूर्ख मालूम पड़ता है। पास ही आर्य चारुदत्त का मकान है। उस गहन अन्धकार में गणिका चारुदत्त के दरवाजे से चिपक जाती है। वह अपनी माला को भी फेंक देती है जिससे उसकी सुगन्धि से विट और शकार आहट न पा जायँ। चारुदत्त विदूषक तथा रदनिका को बलि देने के लिये चतुष्पथ पर भेजता है। विदूषक हाथ में दीपक लेकर चलता है। द्वार खोलते ही वसन्तसेना दीपक को बुझा देती है। विदूषक समझता है कि हवा के झोंके से दीपक बुझ गया है और रदनिका को बाहर चलने के लिये कहकर स्वयं दीपक जलाने भीतर चला जाता है। इसी बीच वसन्तसेना भी भीतर चली जाती है। इधर रदनिका को बाहर देख शकार और विट उसे ही वसन्तसेना समझ कर पकड़ लेते हैं। जब दीपक लेकर विदूषक आता है तो वे पहचान कर छोड़ देते हैं। विट क्षमा मांगता है और चारुदत्त से न कहने की प्रार्थना कर चला जाता है। पर शकार विदूषक से यह कहता है कि वह जाकर चारुदत्त से कहे कि चारुदत्त वसन्तसेना को लौटा दे नहीं तो उसका सर तोड़ डालेगा। विदूषक तथा रदनिका उससे छुट्टी पा अपना कार्य समाप्त कर चले जाते हैं। पास खड़ी वसन्तसेना को चारुदत्त रदनिका समझ कर बलिकार्य के बारे में पूछता है पर वह मौन खड़ी

रहती है। इसी समय विदूषक आकर सब वृत्तान्त सुनाता है। वसन्तसेना पहचानी जाती है। वह अपना हार चारुदत्त के यहाँ न्यास रूप में रखकर चली जाती है। उसे पहुँचाने विदूषक जाता है।

द्वितीय अङ्क में गणिका वसन्तसेना और उसकी चेटी परस्पर बातें कर रही हैं। वसन्तसेना वणिक्पुत्र चारुदत्त के प्रति अपनी अनुरक्ति को बताती है। चेटी चारुदत्त को दरिद्र कहती है। पर वसन्तसेना कहती है कि यह भी सौभाग्य की बात है क्योंकि दरिद्र को कामना करने पर यह अपवाद नहीं रहेगा कि वेश्यायें धनिकजनों पर अनुरक्त होती हैं। इसी समय एक व्यक्ति डरा हुआ-सा वसन्तसेना के घर में आता है। वसन्तसेना उसे सान्त्वना देकर उसके बारे में पूछती है। वह बताता है कि 'पाटलिपुत्र का' रहनेवाला है। वह जन्म से वाणिक् है पर भाग्यदशा के फेर से संवाहक (अङ्गमर्दन करनेवाला) बन गया। उज्जयिनी में रईसों को सुनकर वह यहाँ आया और चारुदत्त के यहाँ संवाहक का कार्य करने लगा। चारुदत्त के यहाँ उसे प्रभूत स्नेह मिला। पर उसके निर्धन होने पर भृत्यों का भरणपोषण सम्भव न रहा और उसने उसको दूसरे की सेवा करने को कह भेज दिया। वह भी किसी इतर व्यक्ति की सेवा करना ठीक न समझ कर जुआरी बन गया। बहुत दिन बीतने के बाद एक दिन जुवे में हार गया और आज विजेता की दृष्टि उस पर पड़ गयी। वह उसका पीछा कर रहा है।' वसन्तसेना जीतनेवाले को उसका द्रव्य दे देती है। और संवाहक को पुनः चारुदत्त की सेवा में जाने को कहती है। संवाहक को वैराग्य उत्पन्न हो गया है। उसके जाने के बाद वसन्तसेना के यहाँ चेट आता है और बताता है कि राजमार्ग पर एक हाथी ने परिव्राजक को पकड़ लिया। कोई भी व्यक्ति छुड़ाने को उद्यत नहीं हुआ पर उसने स्वयं हाथी का शुण्डदण्ड पकड़ कर उसे मुक्त कर दिया। इस पर सभी लोग आश्चर्यान्वित होकर वाह वाह करने लगे और किसी ने तो उसे कुछ नहीं दिया पर एक व्यक्ति ने निर्धनतावश और कुछ न देकर अपना प्रावारक दे दिया। वसन्तसेना उस व्यक्ति का नाम पूछती है पर चेट उसको नहीं जानता। इसी समय चारुदत्त उधर से निकलता है और चेट उसे दिखा देता है कि इसी व्यक्ति ने प्रावारक दिया है।

तृतीय अङ्क चारुदत्त के घर के दृश्य से प्रारम्भ होता है। रात्रि का समय है। चारुदत्त विदूषक से वीणा की प्रशंसा करता है। विदूषक कहता है कि सोने का समय हो गया है पर नींद नहीं आ रही है। बातचीत करते-करते नायक कहता है कि अष्टमी का चन्द्रमा अस्त होने जा रहा है। अब अर्धरात्रि हो चली। पैर धुलाकर वह सोने का उपक्रम करता है। इसी समय चेटी वसन्तसेना का दिया हुआ सुवर्णभाण्ड विदूषक को देती है कि वह इस रात उसकी रक्षा करे। विदूषक पहले तो रखने से इनकार करता है पर चारुदत्त के शपथ दिलाने पर रख लेता है। सब लोग सो जाते हैं।

इसी समय सज्जलक नामक चोर चारुदत्त के घर में प्रविष्ट होता है। वह बहुत परिश्रम से सेंध करता है और सेंध नापने के लिये यज्ञोपवीत का उपयोग करता है। अपने इस कुकृत्य पर उसे रह रह कर पश्चात्ताप भी होता है। प्रवेश करने के बाद दीपक के प्रकाश में वह सारे घर को देख जाता है पर कोई मूल्यवान् वस्तु नहीं दिखायी पड़ती। इसी समय विदूषक स्वप्न में बोलने लगता है और चारुदत्त से कहता है कि अपना सुवर्णभाण्ड ले लो। मेरी बाँयी आँख फड़क रही है। सज्जलक उसे ध्यान से देखता है और उसे सोया पाता है। वह सुवर्णभाण्ड को देखता है। तदनन्तर वह एक भ्रमर को छोड़ता है जो जाकर दीपक को बुझा देता है। इसी समय विदूषक फिर स्वप्न में ही बोल उठता है कि चोर सुवर्णभाण्ड ले जा रहा है। इसे ले लो। सज्जलक पटह की ध्वनि सुनकर भोर हुआ समझता है और सुवर्णभाण्ड लेकर भाग जाता है।

जागने पर चेटी उस चौर निर्मित मार्ग को देखती है। धीरे-धीरे सुवर्णभाण्ड की चोरी ज्ञात होती है। विदूषक कहता है कि उसने चारुदत्त को लौटा दिया है। पर पीछे विदूषक को विश्वास होता है कि वस्तुतः चोर ने उठा लिया है। वे चिन्ता में पड़ जाते हैं। इसी समय चारुदत्त की पत्नी वहाँ आती है और जब उसे इस बात का पता लगता है तो अपनी शतसाहस्र-मूल्यवाली माला को देती है। चारुदत्त उसे विदूषक को देकर वसन्तसेना के पास भेजता है कि जाकर यह माला दे दो और कह दो कि तुम्हारे हार को चारुदत्त जुये में हार गया और उसी के बदले तुम्हें यह माला भेजा है।

चतुर्थ अङ्क में एक चेटी आकर वसन्तसेना से कहती है कि यह आभरण तुम्हारी माता ने भेजा है। और इसे पहनकर बाहर खड़ी गाड़ी में बैठकर राजश्यालक के पास जाओ। वसन्तसेना जाने से इनकार कर देती है। इसी समय सज्जलक वहाँ पहुँचता है। वह वसन्तसेना की चेटी मदनिका का प्रेमी है। उसी को मुक्त कराने के लिये उसने आर्यचारुदत्त के घर चोरी की और सुवर्णभाण्ड को प्राप्त किया। वह मदनिका को पास बुलाता है और उससे बातें करता है। वसन्तसेना भी उन्हें देखकर छिप जाती है और उनकी बातें सुनने लगती है। सज्जलक उसे हार दिखाता है और चेटी देखकर तुरन्त पहचान जाती है। सज्जलक अपनी चोरी की बात बताता है। मदनिका कहती है कि वह जाकर वसन्तसेना को दे दे और कहे कि चारुदत्त ने भेजा है। वह स्वीकार लेता है और मदनिका उसे दूर बैठा देती है। इसी समय वहाँ विदूषक आता है और चारुदत्त की आज्ञानुसार शतसाहस्र मूल्यवाली माला को लौटा देता है। वह जुये में चारुदत्त के हारने की झूठी बात भी बताता है। वसन्तसेना चारुदत्त के इस व्यवहार से और अधिक अनुरक्त हो जाती है।

विदूषक के जाने पर मदनिका सज्जलक को गणिका के पास ले जाती है। वह अपने को चारुदत्त द्वारा भेजा गया बताता है और हार को लौटा देता है। गणिका कहती है कि उसे सज्जलक के साहस का पता है कि किस प्रकार उसने हार लाया है। वह गाड़ी मँगाती है। मदनिका का स्वयं अलङ्करण कर सज्जलक के साथ उसे विदा करती है। सज्जलिक तथा मदनिका वसन्तसेना के इस उपकार पर नतमस्तक होते हैं और गाड़ी पर चढ़कर चले जाते हैं।

वसन्तसेना को इन घटनाओं पर आश्चर्य होता है। वह समझ नहीं पाती कि यह सब स्वप्न हुआ है या यथार्थ है। वह चतुरिका नामक चेटी को बुलाती है। गणिका उससे कहती है कि इन अलकार को पहनकर वह चारुदत्त के पास अभिसरण करेगी। चेटी कहती है कि अभिसार के योग्य दुर्दिन भी हो गया है। गणिका कहती है कि 'तू मेरे काम को और उद्दीप्त न कर'। दोनों चली जाती हैं और नाटक समाप्त होता है।

नाटक का नामकरण,—इस नाटक का नायक वणिक्-पुत्र आर्य चारुदत्त है। उसी के नाम पर इस नाटक का नामकरण हुआ है। नाटक की सारी

घटनायें उसी के सुकृत्यों पर केन्द्रित हैं। चारुदत्त की दरिद्रता का वर्णन होने से इसे दरिद्र-चारुदत्त भी कहा जाता है।

नाटक का आधार—संभवतः इस कथानक आधार भी लोककथा रहा हो। पीछे शूद्रक ने इसी कथा को आधार बनाकर अपनी अमर कृति 'मृच्छकटिक' की रचना की। मृच्छकटिक पर इस नाटक की छाया स्पष्टतः देखी जा सकती है।

चरित्र चित्रण—इस नाटक का नायक चारुदत्त वणिक्-पुत्र है। वह अत्यन्त दानी, गुणवान् एवं रूपवान् है। उसके यहाँ याचना व्यर्थ नहीं जाती। उसकी समृद्धि सबकी समृद्धि है वह उस सरोवर की भाँति है जो दूसरों की तृषा का शमन कर स्वयं सूख जाता है। इस दानशीलता के कारण वह दरिद्र हो गया है। दरिद्रता भी इतनी हुई है कि वह अपने भृत्यों का भी भरण-पोषण नहीं कर सकता। इसीलिये अपने संवाहक को अपने पास से हटा दिया है।

चारुदत्त अत्यन्त धीर प्रकृति का आदमी है। इस दारिद्रय में भी वह अपने धर्म से विचलित नहीं होता। उसने अपने दारिद्रय की इसलिये चिन्ता नहीं की कि उसे विपत्तियों का सामना करना पड़ रहा है, अपितु इसलिये कि द्रव्याभाव में आत्मीय जन भी मुँह फेर लेते हैं। उसे इस बात का अभिमान है कि इस विपत्ति की अवस्था में भी उसे विदूषक जैसे मित्र, उसकी पत्नी जैसी सहगामिनी तथा धैर्यवान् मन मिला है—ये दरिद्रता के सहायक हैं।

इस विपत्तिग्रस्त अवस्था में भी उसकी उदारता में कमी नहीं। वसन्तसेना की वह रक्षा करता है और उसके न्यास को सुरक्षित रखता है। वसन्तसेना का चेट जब हाथी से परिव्राजक की रक्षा करता है उस समय वह और कुछ अपने पास न देखकर अपना प्रावारक ही दे देता है। वसन्तसेना का जब न्यास चोर द्वारा चुरा लिया जाता है उस समय वह अपनी स्त्री के हार को उसके पास भेज देता है और झूठा बहाना भी बना लेता है।

चारुदत्त कला का मर्मज्ञ है। तृतीय अंक में वह विदूषक से वीणा की प्रशंसा करता है। वह महान् धार्मिक है और दरिद्रावस्था में भी पूजा और बलि को सम्पन्न करता है। यह सब होते हुये भी वह गणिका के प्रति आकृष्ट हो जाता है।

वसन्तसेना—इस नाटक की नायिका वसन्तसेना है। मातृपरम्परा से वह उज्जयिनी की एक प्रसिद्ध गणिका है। अत्यन्त रूपवती वसन्तसेना बहुतों को अपने कटाक्षों का आखेट बना चुकी है। शकार और विट उसके रूप-जल के पिपासु हैं। परन्तु गणिका होते हुये भी उसका चारित्रिक स्तर ऊँचा है। वह जिस किसी के साथ प्रणय-सम्बन्ध स्थापित करने वाली नहीं। यही कारण है कि वह राजश्यालक से सम्बन्ध स्थापित करने से इनकार करती है।

वसन्तसेना हृदय से अत्यन्त सहृदय है। जब उसे पता लगता है कि सज्जलक ने मदनिका को मुक्त कराने के लिये ही चारुदत्त के घर चोरी की तो न केवल वह मदनिका को मुक्त ही करती है अपितु स्वयं मदनिका का शृङ्गार कर गाडी में बैठा सज्जलक के साथ उसे विदा करती है। वह चारुदत्त के गुणों पर अनुरक्त है। उसके एक एक गुण वसन्तसेना के प्रेम को दृढ करते जाते हैं। जहाँ कहीं वह किसी गुण को सुनती है उसे चारुदत्त का ही समझती है तथा नाटकीय कथावस्तु में वह गुणवान् चारुदत्त ही सिद्ध होता है। शकार से रात्रि में रक्षा और विदूषक के साथ वसन्तसेना को सकुशल घर पहुँचाना; चेट को प्रावारक देना, वसन्तसेना के न्यास की चोरी हो जाने पर उसे अपनी स्त्री का अत्यन्त मूल्यवान् हार देना—ये सभी गुण वसन्तसेना के हृदय में स्थायी प्रभाव डालते हैं और वह स्वयं अभिसार के लिये उसके पास चल देती है।

वसन्तसेना गणिका होने पर भी धनलोभिनी नहीं। वह अत्यन्त उदार मनवाली नायिका है। संवाहक पर आपत्ति देखकर वह स्वयं अपने पास से उसका ऋण चुकाती है और उससे प्रत्युपकार की भी आशा नहीं रखती। इसी भाँति सज्जलक का सारा वृत्त जानकर भी वह मदनिका की निष्कृति का मूल्य बिना लिये ही उसे सज्जलक के साथ विदा कर देती है। वह चारुदत्त के प्रति अपनी आसक्ति को बताती है और चेटी कहती है कि चारुदत्त दरिद्र है तो वह दरिद्र के पास जाने में ही अपना सौभाग्य बताती है। दरिद्र के पास जाने पर कोई यह नहीं कहेगा कि वसन्तसेना व्यक्ति पर नहीं धन पर अनुराग रखती है।

विदूषक—चारुदत्त का विदूषक मित्र मैत्रेय जन्मना ब्राह्मण है। वह

चारुदत्त का विपत्ति सम्पत्ति दोनों समयों में साथ देनेवाला है। चारुदत्त को विदूषक की मित्रता का अभिमान है। विदूषक चारुदत्त के सभी कार्यों को निष्पन्न करता है। एक तरफ वह बलि आदि धार्मिक कार्यों का सम्पादन करता है तो दूसरी तरफ स्वर्णभाण्ड की रखवाली, वसन्तसेना को रात्रि में उसके घर पहुँचाना तथा चारुदत्त की पत्नी के हार को वसन्तसेना के हाथ सौंपना भी उसी के मत्थे पड़ता है। चारुदत्त के लिये वह झूठ भी बोलता है और वसन्तसेना से कहता है कि तुम्हारे हार को चारुदत्त चूत में हार गया। चारुदत्त के दान मान से वह सर्वथा परितुष्ट है और चारुदत्त की अभावावस्था में भी नट के निमन्त्रण को अस्वीकार कर देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि चारुदत्त का विदूषक केवल भोजनभट्ट मूर्ख ब्राह्मणमात्र नहीं है। वह समयानुसार उसके हित सम्पादन के लिए कठिन कार्यों को भी सम्पन्न करता है।

ब्राह्मणी—चारुदत्त की धर्मपत्नी ब्राह्मणी में आदर्श पतिव्रता नारी के गुण विद्यमान हैं। यद्यपि नाटकीय मञ्च पर उसका अल्प कर्तृत्व ही है तथापि उस अल्प हिस्से ने ही उसके चरित्र को इतना समुज्ज्वल तथा उदात्त बना दिया है कि उसका चरित्र दर्शक के हृदय पर स्थायी प्रभाव डाल देता है। वसन्तसेना के अपेक्षाकृत अल्पमूल्यवाले हार के चुराये जाने पर वह अपनी महार्ह माला को बिना किसी ननु नच के वसन्तसेना को देने के लिये देती है। वह वसन्तसेना भी कोई उसके लिये सुखदायिनी नहीं अपितु उसी के सौभाग्य में हिस्सा लेनेवाली है।

सज्जलक—सज्जलक चौर के रूप में प्रदर्शित किया गया है। वह अत्यन्त बलवान् तथा चोरी में निपुण है। चारुदत्त के महल में वह सेंध लगाकर चोरी करता है। यद्यपि उसे चारुदत्त के घर में वसन्तसेना के सुवर्णभाण्ड रखे जाने का पता नहीं है और वह केवल इसीलिये चोरी करने जाता है कि चारुदत्त का महल सुन्दर है पर विदूषक स्वप्न वचन से उसे सुवर्णभाण्ड का पता लग जाता है। वह सुवर्णभाण्ड लेकर चम्पत हो जाता है। सज्जलक की चोरी के पीछे भी नाटककार ने एक सुदृढ़ मनोवैज्ञानिक आधार रख दिया है। वह उदर-पूर्ति या किसी दुर्व्यसन के लिये चोरी नहीं करता। वह चोरी प्रेमपाशमें बंध जाने के कारण करता है वह वसन्तसेना की चेटी

मदनिका से प्रेम करता है। मदनिका वसन्तसेना की क्रीतदासी है और बिना उसका मूल्य चुकाये सज्जलक उसे प्राप्त नहीं कर सकता। इसीलिये वह चोरी करता है। इस मनोवैज्ञानिक आधार के सन्दर्भ में उसका जघन्य अपराध क्षम्य हो जाता है। सेंध करते समय उसके मन में उठ रहे तर्क वितर्कों से यह स्पष्ट पता लगता है कि चोरी करना उसे प्रिय नहीं है। पर, दूसरा कोई उपाय न पाकर उसने चोरी की है।

संवाहक—संवाहक का जन्म पाटलिपुत्र में हुआ था पर उज्जयिनी के आकर्षणों को सुनकर वह उज्जयिनी चला गया। वहाँ चारुदत्त के यहाँ वह गात्र-संवाहक का कार्य करने लगा। चारुदत्त की दरिद्रावस्था का उस पर प्रभाव पड़ा और वह सेवा से हटा दिया गया। पर वैसे गुणज्ञ व्यक्ति की सेवा करने के अनन्तर वह दूसरे व्यक्ति की सेवा नहीं करना चाहता इसलिये उसने द्यूत का आश्रय लिया है। द्यूत में बहुत दिन बीत कर जीवनचर्या चलानेवाला संवाहक एक दिन हार जाता है। पर, देने के लिये उसके पास द्रव्य नहीं। अतः देनदार के डर से वह भागने लगता है। एक दिन इसी भाग-दौड़ में वह वसन्तसेना के

नहीं। हो सकता है इस नाटक की रचना करते समय ही भास की मृत्यु हो गयी हो और इस प्रकार यह नाटक अधूरा रह गया हो।

चारुदत्त सरल होने से सुबोध है। अभिनेय भी यह बड़ी सरलता से हो सकता है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह नाटक बेजोड़ है। नाना प्रकार के सज्जन से सज्जन तथा खल से खल नायक यहाँ वर्तमान हैं। यदि एक ओर चारुदत्त सज्जनता की सीमा है तो दूसरी तरफ शकार दुर्जनता का चूडान्त प्रतीक है। सरस कोमल नायिकायें सभी को अपनी ओर आकृष्ट कर रही हैं। प्रभावोत्पादिका तथा सूक्तिबहुला भासीय भाषा प्रेक्षक के मन में अनुराग की धारा उडेल देती है। कथनोपकथक की दृष्टि में भी यह नाटक उच्चकोटि का है।

इस नाटक में भास का कविहृदय भी पूर्णरूप से अभिव्यक्ति पा गया है। नाना प्रकारकी भावदशाओंका वर्णन भासके क्रान्तदर्शी कवि होने का प्रमाण है। चारुदत्त द्वारा वर्णित दारिद्र्य का वर्णन सूक्ष्म अन्वीक्षण के परिणाम ह। उदाहरण लीजिये—

दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते
सत्त्वं हास्यमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते।
निर्वैरा विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फीता भवन्त्यापदः
पापं कर्म च यत्परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते॥—१।६

दरिद्रताके कारण बन्धुजन आज्ञा में नहीं रहते, बल वा तेज हास्य का विषय बन जाता है और सदाचार क्षीण हो जाता है। बिना शत्रुता के ही मित्र-जन शत्रु हो जाते हैं, आपत्तियाँ प्रकट हो जाती हैं तथा दूसरे के द्वारा किये हुये पापकर्म की भी उसी में सम्भावना की जाने लगती है।" कितना यथार्थ वर्णन है।

प्रकृति चित्रण सुतरां तथ्यानुकारी है। अन्धकारका वर्णन देखिये—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता॥ १।१९

चन्द्रोदय का यह वर्णन देखिये—

उदयति हि शशाङ्कः क्लिन्नखर्जूरपाण्डु-
र्युवतिजनसहायो राजमार्गप्रदीपः।

तिमिरनिचयमध्ये रश्मयो यस्य गौरा
हृतजल इव पङ्के क्षीरधारा' पतन्ति ॥ १।२९

"सिक्त खर्जूर की नाईं पाण्डुवर्ण वाला, युवतियोंका सहायक तथा राज मार्ग का प्रदीप यह चन्द्रमा उदित हो रहा है। अन्धकार समूहमें इसकी गौर रश्मियाँ जलहीन पङ्क में दुग्धधारा की भांति प्रतीत हो रही है।" उपमा बड़ी ही सटीक है।

भास ने रसपरिपाक में भी विशेष बारीकी दिखायी है। शृंगार रस सर्वत्र अनुस्यूत है। बीच बीचमें अन्य रस भी समयानुसार प्रदर्शित किये गये हैं।

इस नाटकमें देश-कालका चित्रण बड़ा ही विस्तृत हुआ है। दास प्रथा का सङ्केत सज्जलक द्वारा वसन्तसेना की चेटी को मुक्त कराने के उद्योगसे लगता है। द्यूत का प्रचलन भी उस समय था। संवाहक द्यूतमें हारने के कारण ही वसन्तसेना के घर में शरण लेता है। चारुदत्त भी वसन्तसेना के पास मिथ्या समाचार भिजवाता है कि उसने द्यूत में वसन्तसेना के हार को गवाँ दिया। चोरी का दृष्टान्त सज्जलक का कृत्य है। वेश्यावृत्ति का पता वसन्तसेना से चलता है जिसके लिए विट 'वहसि हि धनहार्यं पण्यभूत शरीरम्' (१।२७) कहता है।

चारुदत्त तथा मृच्छकटिक—भास के नाटक 'दरिद्र चारुदत्त' तथा शूद्रक के नाटक 'मृच्छकटिक' में एक ही कथानक उपजीव्य है। अत यह बहुत सम्भव है कि शूद्रक ने दरिद्रचारुदत्त के कथानक को ही आधार रूप में ग्रहण किया हो। चारुदत्त का कथानक अपूर्ण है पर मृच्छकटिक अपने में पूर्ण है। भास के नाटक की उपलब्धि होनेसे विद्वानों की यह धारणा हो गया है कि शूद्रक का ध्यान इस नाटकपर अवश्य रहा होगा। परिवर्धित तथा परिवर्तित अंश शूद्रक की कल्पना प्रसूत हो सकते हैं अथवा किसी अन्य स्रोत से ग्रहण किये गये होंगे।

तृतीय परिच्छेद

भास की समीक्षा

भास की शैली

भासीय नाटकों की शैली अपनी विशिष्ट महत्ता रखती है। इनकी शैली में व्यञ्जकता तथा प्रभावोत्पादकता का मणि-काञ्चन संयोग है। लघु वाक्यों में गम्भीर तथा रसपेशल भावों की व्यजना अपना विशेष महत्त्व रखती है। दुरूह तथा दीर्घविस्तारी समस्त पदों की सघटना भले ही काव्य के लिये कोई उपयोगी बताये, पर, नाटक में लघुविस्तारी एव सरल वाक्यों की महत्ता अक्षुण्ण है। इस दृष्टि में भास सफलता के शिखर पर दिखायी पड़ते हैं। इनकी भाषा एव शैली से स्पष्ट लक्षित होता है कि सस्कृत लोकव्यवहार की भाषा रही होगी। छोटे-छोटे वाक्यों को लोकोक्तियों तथा सूक्तियों से अलंकृत करना भास की शैली का गुण है।

अलकारविहीन सरल भाषा यदि भावव्यजना मे सफल रहे तो यह कवि की महती विशेषता होगी। भास के नाटकों में हमें यही विशेषता लक्षित होती है। प्रभावमयी सरल भाषा भावों की अभिव्यक्ति में इतनी समर्थ है कि दर्शक के हृदय को हठात् आकृष्ट कर लेती है। भास की शैली की विशिष्टता उनके कथनोपकथनों में देखी जाती है। कथनोपकथन में इनके पात्र नितान्त विदग्ध हैं। उक्ति प्रयुक्ति की विदग्धता के लिये प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण में यौगन्धरायण तथा भरतरोहक के सवादों में देखी जा सकती है। भरतरोहक जिन आक्षेपों को उदयन पर लगाता है उनको बड़ी बारीकी से यौगन्धरायण उत्तर देता है। उक्ति-प्रत्युक्तियों के बीच कहीं कहीं ऐसी अप्रत्याशित घटनाएँ टपक पड़ती हैं जो नाटकीय रसचर्वणा में अतीव मिठास ला देती हैं। उदाहरण के लिये प्रतिज्ञा नाटक में जब महासेन अपनी स्त्री से वासवदत्ता के वर के विषय में विमर्श कर रहा है उसी समय कञ्चुकी सहसा प्रवेश कर उदयन का नाम लेता है। यह उक्ति पाठकों और दर्शकों के हृदय को सहसा झकझोर देती है।

ऐसी आकस्मिक उक्तियाँ भास की अपनी विशेषताओं के रूप में हैं और अन्य नाटकों में भी इनकी सम्यक् उपलब्धि होती है।

भास अपने वर्ण्य विषयों को बड़ी सूक्ष्मता के साथ पेश करते हैं। विषय या दृश्य का वर्णन करते समय उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश को भी वे उपस्थापित कर देते हैं। दरिद्र-चारुदत्त नाटक में दरिद्रता का वर्णन जितना स्वाभाविक है उतना ही बारीक भी। सुख को दुःख के बाद प्राप्त होना चाहिये यह भास को अच्छी तरह विदित था। सुखावस्था के बाद दुःख का आना मरण-तुल्य ही है। इस वर्णन को देखकर पाठक भास की शैली की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। यदि किसी दृश्य का वे वर्णन करने लगते हैं तो इतनी स्पष्टता के साथ उसे उपस्थित करते हैं कि पाठक को पूर्ण बिम्बग्रहण हो जाता है। यह कवि या नाटककार की चरमसिद्धि है। उदाहरणार्थ सन्ध्या का वर्णन लीजिये—

पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता
सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा।
द्विधा विभक्तान्तरमन्तरिक्षं
यात्यर्धनारीश्वररूपशोभाम् ॥

—अवि० २।१२

और—

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥

—स्वप्न० १।

इसी प्रकार कृष्ण-रात्रि का वर्णन भी हृदयहारी है—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥

—चारुदत्त १।१९

अविमारक में मध्यरात्रि का वर्णन देखिये—

> तिमिरमिव वहन्ति मार्गनद्यः
> पुलिननिभा प्रतिभान्ति हर्म्यमालाः।
> तमसि दशदिशो निमग्नरूपा
> प्लवतरणीय इवायमन्धकारः ॥–अविमारक ३।४

इसी प्रकार वनवर्णन, मध्याह्नवर्णन, तारुण्यवर्णन इत्यादि में भास की सफलता देखी जा सकती है।

भास सरल पद्धति के जनक हैं। शास्त्रीय दृष्टि से इनकी भाषा प्रसादगुण से संयुक्त है। रसपेशलता, भावों की सम्यक् अभिव्यक्ति, मनोरञ्जकता, गाम्भीरता, औदार्य तथा माधुर्य इनकी शैली के गुण हैं। अवस्था तथा पात्र के अनुसार उग्रता एवं संयम का प्रयोग इनके नाटकों की विशेषता है। हास्य की सम्यक् संयोजना भी इनकी शैली की सफलता का एक कारण है। स्वप्नवासवदत्ता का विदूषक यदि यह नहीं जानता कि राजा का नाम ब्रह्मदत्त है या नगर का, तो चारुदत्त का प्रतिनायक शकार उससे भी घोर मूर्ख निकलता है। इनकी उक्तियाँ रससिद्धि में सहायक होती हैं।

वाक्यसंघटना की विशेषता भी भास की निराली ही है। इसकी प्रशंसा महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने खुले मुँह से की थी। उनके अनुसार भास की शैली की तुलना अन्य किसी कवि से नहीं की जा सकती। चरित्र चित्रणों में भास ने इतनी सफलता प्राप्त की है कि पात्रों में काल्पनिकता का भान तक नहीं होता। इनकी भाषा शैल निर्झरिणी की भाँति बिना किसी तड़क-भड़क के स्वाभाविक गति से प्रवाहित होता है। भास भारतीवृत्ति के नाट्य आचार्य हैं। शब्दार्थ-योजना में अभिव्यञ्जना का प्रभाव आकर्षक लगता है। भाव, रस, देश काल एवं पात्रों के अनुसार भाषा में परिवर्तन दिखायी पड़ता है।

भास की शैली में कृत्रिमता नहीं, स्वाभाविकता है। इसमें ऊहा की अपेक्षा नहीं। पाठकों को सामान्य बुद्धि के प्रयत्न से ही चरम आनन्द की अनुभूति होती है। ओज तथा प्रसाद गुण युक्त इनकी भाषा माधुर्य से ओतप्रोत है। साथ ओज तथा समासबाहुल्य को स्थान न मिलने देने पर भास के लिये

समास विहीन भाषा भी गद्य की उच्च कक्षा में विराजमान हो सकता है। इनके गतिशील प्रवाह में कहीं भी गतिरोध नहीं और न तो तोड़ फोड़ ही है। सरल स्वच्छन्द गति है। इनकी शैली की आलङ्कारिकता में आस्था नहीं है अपितु रसाभिव्यक्ति और भावव्यञ्जना को यह प्रधान मानकर चलनेवाली है। भास की सरल शैली को कुछ लोगों ने रामायणीय प्रभाव माना है।

भास की शैली की प्रशंसा महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने बड़े ही प्रशस्त शब्दों में की है। इनके अनुसार इन नाटकों की शैली अद्वितीय है।[1] भास की सरल शैली का कारण उस पर काव्यों की शैली का प्रभाव है। शैली प्रायः शान्त तथा प्रभावयुक्त है। उद्दाम भावनाओं का बड़ा ही सशक्त वर्णन किया गया है। चित्तवृत्तियों के चित्रण में भास सिद्धहस्त हैं। नाटकों की अभिनेयता पर भास की दृष्टि थी इसीलिये कृत्रिमता तथा आलङ्कारिकता का अभाव दिखायी पड़ता है। अलंकरण यद्यपि काव्य के लिये आवश्यक होता है पर नाटक में वह उसकी अभिनेयता का विघातक होता है। इसी कारण भास के नाटकों में अलङ्करण का प्राचुर्य नहीं है।

भास की शैली के तीन गुण हैं—प्रसाद, ओज और माधुर्य। ये तीनों गुण उनके नाटकों में सर्वत्र दृष्टिगत हो सकते हैं। अवस्था तथा समय के अनुसार उनकी शैली में सहसा मोड़ आता है जिससे प्रभावशालिता एवं व्यञ्जकता में वृद्धि होती है। अपने भावों की व्यञ्जकता में भास इतने सिद्ध हैं कि कहीं भी विवक्षित भाव दब नहीं सकता। सीमित शब्दों एवं सरल भाषा के द्वारा विवक्षित अर्थ का उद्बोध यह भास की महती विशेषता है।

भास की शैली का गुण मौन भाषण भी है। अल्प शब्दों के द्वारा अधिकाधिक भावों की व्यञ्जना के अतिरिक्त मौन से भी अर्थबोध कराया गया

---

1 The Superior excellence of Sentences which are not subject to the restriction of versification is everywhere to be observed in these Rupakas It really surpasses in grandeuro, the style of other works is incomparable

है। ये मौन शब्दों से कहीं अधिक प्रभावशाली हुये हैं एवं रस तथा भावों की प्रतीति में सहायक हुये हैं। इसी कारण समीक्षकों ने उन्हें 'मौन के आचार्य' विशेषण से विभूषित किया है।

भास की शैली के अपने विशेष गुण हैं परवर्ती कवियों और नाटककारों पर इसका प्रभाव पड़ा है। फिर भी यह अपना पार्थक्य स्थिर रखे और अपनी महत्ता को सँजोये है।

भास के नाटकों के पात्र

भास की नाट्यकला की सफलता में पात्रों के चरित्र चित्रण का भी महत्वपूर्ण स्थान है। भास ने सभी प्रकार के पात्रों का चरित्र चित्रण बड़ी ही कुशलता के साथ किया है। इन नाटकों में जितने प्रकार के पात्र मिलते हैं संस्कृत नाट्यसाहित्य में कदाचित् ही किसी नाटककार को इतने पात्रों से सरोकार पड़ा हो। मोज्ज्वल चरित्र के धीरोदात्त नायक, धीरोद्धत, धीरललित, खल, दैवी, आसुरी जितने भी प्रकार के नाटकीय पात्रों की सम्भावना की जा सकती है वे सभी यहाँ उपलब्ध हैं। बाण ने भास के नाटकों को 'सूत्रधार कृतारम्भैर्नाटकै बहुभूमिकै' कहा है। इसका आशय यह है कि भास के नाटकों में बहुत से पात्रों का समावेश हुआ है। बाणभट्ट का यह कथन अक्षरशः सत्य है। पर, यह बात विशेष महत्व रखती है कि इतने अधिक पात्रों के होने पर भी एक भी पात्र अधिक नहीं। इन नाटकों के कथानक में ऐसा कहीं भी आभास नहीं होता कि अमुक पात्र की आवश्यकता नहीं है।

इतने अधिक पात्रों का समावेश भास ने केवल एक वर्ग से नहीं किया है। पशु पक्षी तक पात्र कोटि में लाये गये हैं। मानवों में भी केवल एक ही वर्ग या जाति के पात्र नहीं है अपितु सभी स्तरों के पात्र यहाँ दिखायी पड़ते हैं। इन पात्रों का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है :

(१) देवता—राम, कृष्ण, बलराम, इन्द्र, अग्नि आदि
(२) यक्ष आदि—विद्याधर
(३) देवाङ्गनाएं—सीता, कात्यायनी आदि
(४) राक्षस—रावण, शूर्पणखा, कंस, घटोत्कच आदि

(५) राक्षसियाँ—हिडिम्बा

(६) राजा—धृतराष्ट्र, दशरथ, शल्य, शकुनि, दुर्योधन आदि

(७) रानियाँ—कौशल्या, सुमित्रा, कैकयी, गान्धारी, पौरवी आदि

(८) राजकुमार—दुःशासन, दुर्जय आदि

(९) राजकुमारियाँ—दुःशला, कुरङ्गी आदि

(१०) अमात्य—यौगन्धरायण, रुमण्वान्, शालंकायन, भरतरोहक, सुमंत्र आदि

(११) विदूषक—वसन्तक मैत्रेय आदि

(१२) वीर—कर्ण, अभिमारक, लक्ष्मण, भीष्म, द्रोण, अर्जुन आदि

(१३) काञ्चुकीय—बादरायण, बालाकि आदि

(१४) सन्देशवाहक—हंसक

(१५) वानर—हनूमान्, अङ्गद, सुग्रीव, वालि आदि

(१६) धात्री—वसुन्धरा, विजया, आदि

(१७) विद्यार्थी—स्वप्न नाटक के प्रथमाङ्क में लावाणक से नगर आने वाला ब्रह्मचारी

(१८) मल्ल—चाणूर और मुष्टिक ।

(१९) चोर—सज्जलक

(२०) जुआरी—संवाहक

(२१) खल—शकार

(२२) वारवनिता—वसन्तसेना

(२३) नाग—कालिय

(२४) पशु—अरिष्टवृषभ, गरुड, जटायु

इस प्रकार हम देखते हैं कि पात्रों का वर्गीकरण बहुत विस्तृत है । जिस जिस वर्ग के पात्रों की भास ने उद्भावना की है उनमें तत्तद् गुणों का विन्यास भी बड़ी सफलता के साथ किया है और यही कारण है कि बाणभट्ट जैसे महाकवि को भी भास के पात्र-बाहुल्य की प्रशंसा करनी पड़ी । उन्होंने यह भी स्पष्ट कह दिया कि भारतीय नाटकों के प्रथित होने का एक कारण पात्र बाहुल्य भी है । इन पात्रों के चरित्र विन्यास में भास ने बड़ी ही सतर्कता तथा

कुशलता प्रदर्शित की है। यदि देववर्ग का पात्र है तो उसमें देवत्व का पूर्णतः समावेश किया गया है। उसमें कोई भी ऐसी बात नहीं आने दी गई है जो उसके स्वभाव के विपरीत पड़े। प्रयत्न तो यह किया गया है कि उसके असदंश को भी निकालकर उसे नितान्त परिष्कृत रूप में प्रदर्शित किया जाय। इसी भाँति यदि दानव-वर्ग का पात्र है तो उसमें दानवोचित सभी दोष-गुणों को प्रदर्शित किया गया है। कंस, घटोत्कच, हिडिम्बा के चरित्र को उदाहरण रूप में उपन्यस्त किया जा सकता है। भास ने तो यह भी प्रयास किया है कि पात्रों के अशिष्ट आचरण को इस मनोवैज्ञानिक सदर्भ में प्रस्तुत किया जाय कि पाठकों की उसपर सहानुभूति हो जाय। उदाहरण के लिए घटोत्कच के चरित्र को देखिये। माता की आज्ञावश यद्यपि वह ब्राह्मण को पकड़ता है फिर भी उसका मन उसे कोसता है। चारुदत्त में सज्जलक भी यद्यपि चोरी करता है पर उसकी अन्तरात्मा इस कार्य के लिये गवाही नहीं करती।

पात्रों के चरित्र को उत्कृष्ट दिखाने के लिये भास को लोकप्रसिद्ध कथानकों में भी परिवर्तन कर देना पड़ा है। पर इस कार्य में उन्हें जरा भी संकोच नहीं हुआ है। उदाहरण के लिये कैकेयी के चरित्र को ले लीजिये। पाठकों को यह पूर्वविदित है कि कैकेयी ने अपनी अल्पज्ञता और अदूरदर्शिता वश राम का वनवास माँगा। पर भास ने यहाँ दूसरा ही कारण उपस्थित कर कैकेयी के कलङ्क को शमित या कम करने का प्रयास किया है। यहाँ यह दर्शाया गया है कि कैकेयी ने भरत को राज्य देने के लिये नहीं अपितु ब्राह्मण का शाप सत्य करने के लिये राम के लिये वनवास का वर माँगा। वह भरत का भी वनवास माग सकती थी पर उसे यह बात विदित थी कि भरत का वियोग सहते सहते राजा दशरथ उसके अभ्यस्त हो गये थे अत उनके वियोग से वह नहीं मर सकते इसीलिये उसने राम का वनवास मागा। वनवास भी वह चौदह दिनों के लिये मागना चाहती थी पर मानसिक असन्तुलन के कारण १४ वर्ष मुँह से निकल गया (द्र० प्रतिमानाटक)। यहाँ यह कथानक भास की कल्पना द्वारा प्रसूत है। पर सिर्फ अपनी पात्रभूता कैकेयी के चरित्रोत्कर्ष के लिये उन्होंने ऐसा परिवर्तन कर डाला। इसीलिये हम देखते हैं उन्होंने पात्रों के चरित्र विन्यास में बड़ी सहानुभूति तथा कुशलता से काम लिया है।

भास के नाटकों में जिस प्रकार का नाटक है वैसा पात्र मिलेगा। यदि नाटक प्रकार का रूपक है तो उसका नायक धीरोदात्त होगा। पात्रों के चरित्र चित्रण में कवि ने इतनी सच्चाई प्रदर्शित की है कि कहीं भी कृत्रिमता का लेश नहीं दिखायी पड़ता। दर्शक पात्रों को अपने बीच का प्राणी पायेगा और इस प्रकार रसानुभूति में शीघ्रता तथा तीव्रता रहेगी। इस कुशल चित्रण का कोई भी पात्र अपवाद नहीं। चाहे वे राम हों या भरत, कृष्ण हो या बलराम या चारुदत्त सभी का सजीव अंकन हुआ है।

भास के पात्रों में व्यर्थ का आडम्बर नहीं दिखायी पड़ता। कथनोपकथनों में वे इतने कुशल हैं कि कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक व्यञ्जना का प्रयास करते हैं। व्यर्थ का वार्तालाप ढूँढने पर भी कहीं दिखायी नहीं पड़ेगा। सरल भाषा एवं संक्षिप्त शब्दों में मनोगत अभिप्राय को प्रकट करना ही इन पात्रों का स्वभाव है। अन्तर्द्वन्द्व को भी स्पष्ट शब्दों में ही प्रकट किया जाता है। मनोवैज्ञानिक स्थिति का निर्वाह भी बड़ी सफलता के साथ किया गया है। कौन पात्र किस परिस्थिति में कैसी भावदशा के अधीन होगा, कैसी चेष्टा करेगा तथा क्या कहेगा यह भास को भली भाँति विदित है। इस कारण दर्शकों कहीं भी विचित्रता का अनुभव नहीं होगा। सर्वत्र उसे परिचित व्यक्तियों तथा वातावरण में विचरण करना पड़ेगा।

भास के पात्र सामान्य धरातल पर हैं। अति कहीं भी दिखायी नहीं पड़ेगी। यथासाध्य बुरे पात्रों में भी आदर्श गुणों का ही सन्निधान किया गया है। भरत आदर्श भाई हैं, वासवदत्ता और पद्मावती आदर्श सपत्नियाँ हैं, सुमन्त्र, यौगन्धरायण आदर्श अमात्य हैं, वसन्तसेना आदर्श गणिका है और उदयन तथा चारुदत्त आदर्श प्रेमी हैं—सर्वत्र आदर्श आदर्श ही हैं। इन पात्रों के चरित्राङ्कन अपनी विशदता एवं उत्कृष्टता के कारण सदैव स्मरण किये जायेंगे।

भास के नाटकों में पात्रों एवं उनके प्रकार की बहुलता होने पर भी अनावश्यक पात्रों का प्रवेश सावधानी से हटाया गया है। यही कारण है कि प्रतिज्ञा नाटक में मुख्य पात्र उदयन और वासवदत्ता ही नहीं आते। अविमारक में काशिराज का अभाव भी इसी कारण है। भास के पात्र अन्य नाटककारों

के पात्रों से अपना स्पष्ट वैभिन्न्य रखते हैं। वे कालिदास के पात्रों की भाँति अति शृंगारिक तथा कल्पनाप्रधान नहीं, भवभूति के पात्रों की भाँति अति भावुक नहीं, भट्टनारायण के पात्रों की भांति अति बलशाली नहीं तथा शूद्रक के पात्रों की भाँति हँसमुख नहीं।

भास की नाट्यकला

नाट्यकला के अन्तर्गत सभी नाटकीय तत्त्वों का समावेश होता है। जहाँ तक कथावस्तु का प्रश्न है भास का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। पुराण इतिहास, महाभारत, आख्यायिका ग्रन्थ और लोक मे प्रचलित कथानकों का भास ने अपने नाटकों मे उपयोग किया है। संस्कृत नाटक साहित्य में किसी भी इतर नाटककार ने इतने बडे क्षेत्र में सञ्चरण नहीं किया है। इन आधारों के साथ ही साथ भास ने अपने कथानकों में मौलिकता को भी पर्याप्त प्रश्रय दिया है। कहीं-कहीं तो मौलिकता इतनी अधिक हो जाती है कि यह पाठकों की स्थिर भावना को झकझोर देती है। उदाहरण के लिये प्रतिमा नाटक में प्रतिमावाला सम्पूर्ण प्रसङ्ग भास की कल्पना की उद्भूति है। इसी प्रकार कैकेयी का यह कहना भी भासीय कल्पना का ही प्रसाद है कि उसने मात्र ऋषि-वचन की सत्यता के लिये राम का वनवास माँगा। परन्तु, इतने बडे क्षेत्र म अपनी मौलिकता के साथ सञ्चरण करने पर भी भास के पैर कहा नहीं लडखडाये हैं। उन्होंने बडी ही कुशलता के साथ इन कथाओं का विन्यास किया है। कथावस्तु का विन्यास सदैव दर्शक की कुतूहल-वृत्ति का विवर्धक रहा है।

विस्तृत क्षेत्र से कथानकों का सकलन करने के कारण निसर्गत पात्रों की संख्या तथा कोटियों में भी वृद्धि हो गई है। जितने प्रकार के पात्र यहाँ हैं उतने प्रकार के पात्रों का अन्य नाटककारों की कृतियों में पाना सुगम नहीं। इतने अधिक पात्र होने पर भी सभी मानव लोक के जीते जागते प्राणी है। दर्शक को यह कभी आभास नहीं होगा कि यह पात्र काल्पनिक है। उनके आचरण में कहीं भी कृत्रिमता नहीं दिखायी पड़ेगी। जैसा हम सर्वत्र देखते सुनते हैं वैसे ही वे भी दिखायी पडेंगे। यह अन्य बात है कि अपने दृढ वैदिक संस्कारों तथा ब्राह्मणीय संस्कृति के प्रवक्ता होने से उन्होंने कहीं-कहीं उसका जान-बूझकर प्रदर्शन कर दिया है। इस प्रकार का वृत्तान्त हमें मध्यम

व्यायोग में मिलता है। इस रूपक में पिता माता अपने मध्यम पुत्र को स्वेच्छया मृत्यु के हवाले करने में जरा भी सकोच नहीं करते। यहाँ दर्शकों को यह सहज अनुमेय है कि यह शुन.शेप के आख्यान का प्रभाव है और उसका नाटककार ने यहाँ प्रदर्शन किया है। ब्राह्मणीय संस्कृति तथा धर्म का प्रभाव अविमारक तथा प्रतिमा नाटक में दिखायी पड़ता है। अविमारक ब्राह्मण के शाप को सत्य करने के लिये स्वेच्छया चाण्डाल बना हुआ है। इसी प्रकार कैकेयी भी ऋषि-शाप को सत्य करने के लिये राम का वनवास माँगती है।

भास ने पात्रों के चरित्राङ्कन में सर्वत्र उदात्त आदर्श रखा है। यथासाध्य उन्होंने यही प्रयास किया है कि पात्रों का चरित्र प्रोज्ज्वल प्रदर्शित किया जाय। इस कार्य के लिये यदि कथानक में परिवर्तन करना अपेक्षित रहा तो उसमें भी वे सकोच नहीं करते। नायक-नायिका, अमात्य, विदूषक, काञ्चुकीय, गणिका, सेवक आदि सभी पात्र इस प्रकार उन्नत चरित्र के ही दिखायी पड़ते हैं। यदि पात्रों के कलुष अंश को हटाना सम्भव न रहा तो उनको कम तो अवश्य ही कर दिया गया है। पर, यदि नाटकों के नायकों पर इसका प्रभाव पड़नेवाला होता है तो उसी हदतक परिष्कार किया गया है जितने तक प्रधान नायक पर कोई प्रभाव न पड़े।

पात्रों के संवादों में भी भास ने विशेष दक्षता प्रदर्शित की है। संवाद प्रायेण लघु विस्तारवाले हैं। वाग्विस्तार का परिहार भास की महती विशेषता है। कोई भी पात्र उतना ही बोलता है जितना आवश्यक है। पाठक को यह कहीं भी भान नहीं होगा कि वार्तालाप का अमुक अंश फालतू है। ये संवाद सर्वत्र विवक्षित भाव के द्योतक हैं। अभीष्ट अर्थ के द्योतन में अशक्ति कहीं भी लक्षित नहीं होती। वार्तालापों के आश्रय से ही सारे दृश्य को उपस्थित करने में नाटककार सफल रहा है। वार्तालापों को सुनकर दर्शकों को यदि सूच्य विषय है तो भी उसका पूरा दृश्य सामने आ जायेगा। संवादों में भास की सरल तथा असमस्त भाषा ने श्रीवृद्धि की है। भास सरल शब्दावली के आचार्य हैं। यह बात नितान्त अपेक्षित है कि नाटक की भाषा यथासाध्य सरल तथा भावव्यञ्जन में समर्थ हो। तभी नाटक सार्ववर्णिक और सार्वजनीन होगा। नाटक के दर्शक परिष्कृत और अपरिष्कृत दोनों प्रकार के होते हैं।

इसीलिये नाटककार का यह प्रधान कर्तव्य है कि भाषा को सरल तथा भावव्यञ्जन में समर्थ बनाये। जब इस दृष्टि से हम विचार करते हैं तो भास सफल दिखायी पड़ते हैं। वस्तुत: भास की इतनी प्रसिद्धि का एक कारण यह भी है।[1]

भास ने अपने नाटकों के अलङ्करण का भी पर्याप्त प्रयास किया है। यथा सन्ध्या, रात्रि, तपोवन, मध्याह्न इत्यादि का वर्णन भी किया गया है। ये वर्णन सूक्ष्म अन्वीक्षण के परिणाम हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भास ने इन प्राकृतिक दृश्यों को बड़ी ही बारीकी तथा सहानुभूति के साथ देखा है। ये वर्णन बड़े ही सजीव हुये हैं तथा पूरे दृश्य का बिम्बग्रहण कराते हैं। नाटकीय कथानक में इनका उपन्यास भी प्रसङ्गोपात्त होने पर ही किया गया है। कहीं भी यह प्रतीत नहीं होता कि मात्र आकारवृद्धि तथा पाण्डित्य प्रदर्शन के लिये ही इन्हें इकट्ठा किया गया है।

रसपरिपाक की दृष्टि से भी भास के नाटक पर्याप्त ऊँचे हैं। इनके नाटकों में नवों रसों का अस्तित्व दिखायी पड़ता है। इन रसों की सिद्धि बड़ी ही दक्षता के साथ की गयी है रसाभास से इन्हें बचाया गया है। वीर, शृङ्गार तथा करुण ये तीन रस प्रायेण इनके नाटकों में अङ्गी बनकर आये हैं। शृंगार में सयोग और विप्रलम्भ दोनों का अस्तित्व दिखायी पड़ता है। वीरकोटिक नायकों में भी दानवीर, युद्धवीर इत्यादि वीरों के दर्शन होते हैं। हास्य रस की स्थिति तो विदूषक प्रायेण सर्वत्र बनाये रहते हैं। अन्य रसों की भी स्थिति यथावसर दिखायी पड़ती है। जयदेव ने भास को कविता कामिनी का हास कहा है—'भासो हास.'। इससे यह ध्वनित होता है कि भास शृङ्गार कवि न होकर हास्य के ही प्रमुख प्रवर्तक हैं। यद्यपि इन नाटकों में हास्यरस की सर्वातिशायिता तो नहीं है और न तो भास के जिस प्रकार के नाटक हैं उसमें

---

१. महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्री ने भास की वाक्य रचना की प्रशसा इस प्रकार की है :—

'The Sentences are everywhere replete with a wealth of idcas beautifnlly expressed, which cultured minds appreciate.'—critical study, P. 27.

यह सम्भव ही है कि हास्य रस अङ्गी बनकर आवे, पर, हाँ इतना अवश्य है कि भास ने हास्यरस का बड़ा ही उदात्त वर्णन किया है। हास्य के इतने मात्रा और विस्तार में सीमित भले ही हों पर सुन्दरता में अपनी विशिष्टता बनाये रखते हैं। यदि प्रतिज्ञा का विदूषक उद्धत हास्य का प्रदर्शन करता है तो स्वप्नवासवदत्तम् सुकुमार हास की सृष्टि करता है।

भास के नाटकों में काव्यकौशल भी पूर्णरूपेण प्रस्फुटित हुआ है। भास का कवि हृदय मौका पाते ही अपनी कला का प्रदर्शन कर देता है। नाना प्रकार की छन्दयोजना इन नाटकों में दर्शनीय है। अलङ्कारों का विधान भी काव्यकर्म की सफलता में सहायक होता है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलङ्कार अपूर्व छटा को उत्पन्न करते हैं। सुन्दर से सुन्दर उपमायें यहाँ मिल सकती हैं। उपमा की छटा इस पद्य में भली भाँति दिखायी पड़ती है :

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥–प्रतिमा० ३।१०

अलङ्कारशास्त्र का यह सुप्रसिद्ध उदाहरण भी भासीय कला का ही परिणाम है :

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥–बालचरित १।१५

भास के नाटकों की अभिनेयता—यहाँ यह प्रश्न भी प्रसङ्गोपात्त है कि भास के नाटक रङ्गमञ्च की दृष्टि से अभिनेय हैं या नहीं? इसका उत्तर बड़ा ही स्पष्ट है। भास के समस्त नाटक अभिनय कला की दृष्टि से सफल हैं। भले ही संस्कृत के अन्य नाटकों में अभिनेयता की दृष्टि से आंशिक कठिनाई का सामना करना पड़े पर भास के नाटकों में ऐसी स्थिति नहीं। ये नाटक सभी दृष्टियों से अभिनेय हैं। कथानक, पात्र, भाषा शैली, देशकाल, संवाद आदि सभी तत्त्व इनकी अभिनेयता के अनुकूल हैं। जिन लोगों ने इन्हें चाक्यारों की सृष्टि माना है वे भी कहते हैं कि ये चाक्यार नाटकों का प्रदर्शन करते थे और इन्होंने रङ्गमञ्च के अनुरूप इन नाटकों की सृष्टि की। उनके इस मत से इतना तो स्पष्टतः सिद्ध हो जाता है कि भास के नाटक अभिनय की दृष्टि से सुतरां सफल हैं।

भास के नाटकों की रचना उस समय में हुई थी जब नाट्य सिद्धान्त तथा नाट्यकला पूर्णतः विकसित न हुई थी। अतः ऐसे प्रसङ्ग यहाँ सुलभ हैं जो नाट्यनियमों के विरुद्ध पड़ते हैं। यथा वध, अभिषेक आदि। पर, इन वर्ज्य दृश्यों का अस्तित्व होने पर भी इनकी अभिनेयता में कोई व्याघात नहीं पड़ता और स्थिति तो यह है कि सिद्धान्तों के विकसित होने तथा उनके बाद निर्मित होनेवाले नाटकों की अपेक्षा भास के नाटक अधिक अभिनेय हैं।

रंगमञ्च—लगे हाथ भासकालीन रङ्गमञ्च का भी संकेत कर देना उचित है। भास के समय में बड़े-बड़े प्रेक्षागृहों के अस्तित्व की सूचना इन नाटकों से नहीं मिलती। यह भी स्पष्ट नहीं है कि रङ्गमञ्च का पूर्ण निर्देश करनेवाला भरत का नाट्यशास्त्र उस समय था या नहीं। पर, इतना स्पष्ट है कि रङ्गमञ्च की भावना भास के समय में वर्तमान थी। नाटकों का अभिनय बड़े बड़े उत्सवों या पर्वों के अवसर पर मन्दिरों, सड़कों या मैदानों में होता था। प्राचीन भारतीय लोग बड़े बड़े थियेटरों में विश्वास नहीं रखते थे जैसा कि ग्रीक लोग रखते थे। क्योंकि दृश्य तथा दर्शक में दूरी पर्याप्त होने से रस में बाधा होगी और नाट्यप्रदर्शन का प्रधान लक्ष्य ही नष्ट हो जायेगा। हो सकता है मन्दिरों में नाट्यप्रदर्शन के लिये ही स्थान बने हों। रंगमञ्च को सजाने का प्रयास अवश्य किया जाता था और इसमें नाना रंगों का उपयोग होता था। पशुओं को कभी कभी कृत्रिम रूप में दिखाया जाता था और कभी कभी जीवित पशुओं को ही रंगमंच पर पकड़ लाया जाता था।[1]

भास के नाटकों में नवरस

संस्कृत नाटकों का प्रधान लक्ष्य है रसों की सम्यक् उद्बुद्धि तथा परिपाक। 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' की परिभाषा देने वालों ने स्पष्टतः रस की सत्ता सर्वोपरि मानी है और 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' कहने वालों ने इसे स्पष्ट कर दिया है कि नाटकों का जीवित रसवत्ता ही है। किसी विशिष्ट रस का उद्बोधन करा नाटककार नैतिक आदर्श की सिद्धि करता है। इस प्रकार हम देखते हैं

१. भास के रंगमञ्च के विस्तृत विवेचन के लिये द्रष्टव्य, ए० एस० पी० अय्यरकृत 'भास' नामक ग्रन्थ पृ० ५३५—५४१

कि नाटक में पात्र, चरित्राकन, कथोपकथन आदि साधन हैं, साध्य नहीं। साध्य तो एकमात्र रसोद्बोध ही है। भास इस लक्ष्य से सुपरिचित थे और उन्होंने बड़ी सतर्कता से रसों का परिपाक किया है। इन नाटकों में रसों का परिपाक बड़े ही समीचीन ढंग से किया गया है।

संस्कृत-साहित्यशास्त्र में रसों की संख्या के विषय में ऐकमत्य नहीं। पर, यहाँ विश्वनाथ के ग्रन्थ साहित्यदर्पण को आदर्श मानकर रसो की संख्या नव स्वीकार की जाती है। भास के प्रत्येक नाटक में एक या दो रस प्रधान बनकर आये हैं और अन्य रस उसके उपस्कारक रूप में दिखायी पडते हैं। इन नाटकों में प्रमुख रसों की स्थिति इस प्रकार मानी जा सकती है :

(१) दूतवाक्य—वीर तथा अद्भुत
(२) कर्णभार—करुण और वीर
(३) दूतघटोत्कच—वीर तथा करुण
(४) ऊरुभङ्ग—वीर, करुण तथा शान्त
(५) मध्यमव्यायोग—वीर, भयानक, करुण तथा रौद्र
(६) पञ्चरात्र—वीर, हास्य, वात्सल्य
(७) अभिषेक—वीर, करुण तथा भयानक
(८) बालचरित—वीर, अद्भुत तथा हास्य
(९) अविमारक—शृङ्गार, वीर, हास्य तथा करुण
(१०) प्रतिमा—करुण तथा वीर
(११) प्रतिज्ञा—वीर, शृंगार, अद्भुत तथा हास्य
(१२) स्वप्नवासवदत्तम्—शृङ्गार एव करुण
(१३) चारुदत्त—करुण, शृङ्गार तथा हास्य

अब संक्षेप में इन रसों का दिग्दर्शन कराया जायेगा।

(१) शृंगार—शृङ्गार को रसराजपद पर अधिष्ठित किया गया है। इससे इसकी महत्ता का सहज अनुमान हो जाता है। शृङ्गार के पाँच प्रकार हैं : १ धर्म शृङ्गार २. काम-शृङ्गार, ३ अर्थ शृगार, ४. मुग्ध शृङ्गार और ५. मूढ शृंगार। भास के नाटकों में शृङ्गार के ये पाचों प्रकार उपलब्ध होते हैं। प्रतिमा तथा अभिषेक नाटकों में वर्णित राम तथा सीता का प्रेम धर्म-

शृङ्गार के अन्तर्गत आता है। उनका प्रेम शुद्ध प्रेम है जो वासना से असम्पृक्त है। वह धार्मिक कृत्यों के निष्पादन के लिये है। धर्म शृङ्गार का परिपाक इन नाटकों में बड़े ही कौशल के साथ कराया गया है।

शृङ्गार का दूसरा प्रकार है काम-शृंगार। इसमें विवाहजन्य प्रेम का वर्णन रहता है। यहाँ पर कायिक वियोग दु:खावह होता है। इस प्रकार का शृङ्गार वासवदत्ता तथा उदयन के प्रेम एवं अविमारक तथा कुरंगी के प्रणय व्यापार में दिखायी पड़ता है।

शृङ्गार की तीसरी कोटि अर्थ शृङ्गार की होती है। राजनीतिक, आर्थिक या अन्य लाभों के निमित्त किया गया विवाह तथा तज्जन्य शृङ्गार इस कोटि में आते हैं। स्वप्नवासवदत्तम् में उदयन तथा पद्मावती का विवाह इसी प्रकार का है। इस शृंगार में भौतिक तत्त्वों की प्रधानता रहती है।

मुग्ध शृङ्गार की चौथी कोटि है। इसमें प्रेम के शारीरिक सम्बन्ध की प्रधानता रहती है। भीम तथा हिडिम्बा का प्रेम इसी कोटि में आता है।

शृङ्गार का पञ्चम प्रकार मूढ शृङ्गार है। यहाँ एक मात्र वासना का प्राधान्य रहता है। यह मांसल प्रेम का उदाहरण है। यह कभी कभी एक पक्षीय ही होता है और दोनों पक्ष यदि इसमें भाग लेते भी हैं तो भी एक निष्ठता का अभाव रहता है। इसमें भय, तर्जना, आदि का आश्रय लिया जाता है। दरिद्र चारुदत्त में शकार और वसन्तसेना का प्रेम इस शृङ्गार का सर्वोत्तम निदर्शक है। यहाँ विट वसन्तसेना को हाट का सामान बताता है जिसे जो ही मूल्य दे प्राप्त कर सकता है।

(२) हास्यरस जयदेव ने भास को कविताकामिनी का हास कहा था। इससे यह स्पष्ट है कि जयदेव को भासीय नाटकों के हास्य प्रशंसनीय लगे थे। भास के नाटकों में हास्य के प्रचुर उदाहरण उपलब्ध होते हैं। दरिद्र चारुदत्त में शकार की मूर्खता स्मित हास्य को उत्पन्न करती है। स्वप्न नाटक में विदूषक कहता है कि कोकिला के अक्षि परिवर्त की भांति उसका पेट उलट पुलट गया है। प्रतिज्ञा में विदूषक यौगन्धरायण और रुमण्वान् से कहता है कि उन दोनों की योजनायें असफल होंगी और वे पूछते हैं कि यह कैसे? उस समय वह उत्तर देता है 'मैं अपने विचारों को पहले जानता हूँ और आपलोगों के विचारों

को बाद में।' चारुदत्त मे सूत्रधार तथा नटी के संवाद भी हास्य के उत्कृष्ट उदाहरण है। जब नट भोजन माँगता है तो पहले तो वह कहती है कि सब कुछ प्रस्तुत है और जब वह पूछता है कि कहाँ है तो कहती है कि 'बाजार में।' नटी का यह कथन कि वह दूसरे जन्म में सुन्दर पति पाने के लिये उपवास कर रही है हास्य का जनक है। चारुदत्त में सज्जलक का यज्ञोपवीत के विषय में यह विचार कि दिन में तो वह यज्ञोपवीत है तथा रात्रि में सेंध-मापने का तागा हास्योद्बोधक है। व्यग्यात्मक हास्य का भी कहीं-कहीं समाविश है। दूत घटोत्कच में जब दुर्योधन कहता है कि 'हम लोग भी दानवों की भाँति उग्र तथा रौद्र हैं' उस समय घटोत्कच का यह कथन कि तुम लोग तो राक्षसों से भी अधिक क्रूर हो' कठोर किन्तु सत्य व्यग्य है।

(३) करुण—भास के नाटकों में करुणरस की अभिव्यक्ति भी बड़ी सटीक दिखायी पडती है। यद्यपि भास भवभूति की भाँति 'एको रस. करुण एव निमित्तभेदात्' के पुजारी नहीं हैं, पर, करुण रस भी इनके प्रिय रसा में प्रतीत होता है। अविमारक नाटक में कुरगी तथा अविमारक के वियोग में, प्रतिमा नाटक में राम के वन प्रसग में, स्वप्न नाटक में वासवदत्ता दाह की खबर होने पर उदयन के विषय में करुण रस दिखायी पडता है। इसी प्रकार दूतघटोत्कच मे धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा दुश्शला की भावनाओं तथा उक्तियों में करुण का प्रसग है। अभिषेक नाटक में इन्द्रजित् की मृत्यु के अनन्तर रावण की दशा के प्रसङ्ग में भी करुण की समुष्टि दिखायी पडती है।

(४) रौद्ररस—रौद्र रस का अस्तित्व मध्यम व्यायोग में घटोत्कच के साथ भीम के सघर्ष में दिखायी पड़ता है। ऊरुभग में भीम के द्वारा अधर्म पूर्वक दुर्योधन की जाँघ तोड़ी जाने पर बलराम का क्रोध तथा बालचरित म उथलपुथल के अवसर पर कस की दृष्टि भी रौद्र रस का सञ्चार करते हैं। प्रतिमा में भरत का कैकेयी को बुरा भला कहना भी इसी की सीमा में आते हैं।

(५) वीररस—वीररस का प्रदर्शन भास ने प्रधानता से किया है। वीरों के क्रम के अनुसार इस रस की भी तीन कोटियाँ हैं—युद्धवीर, धर्मवीर तथा दयावीर। युद्धवीर का वर्णन इन युद्धों में दिखायी पडता है—राम रावण

युद्ध, भीम-दुर्योधन युद्ध, कुमार उत्तर तथा कौरवों का युद्ध, उदयन तथा महासेन की सेना का युद्ध एवं अभिमन्यु तथा विराट् की सेना में युद्ध। राम का पिता की आज्ञा के अनुसार राज्यत्याग तथा पञ्चरात्र में अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार दुर्योधन का पाण्डवों को आधा राज्य देना धर्मवीर के उदाहरण हैं। द्रोण का कौरव पाण्डवों को युद्धजन्य अनर्थ से बचाने के लिये दुर्योधन से पाण्डवों को आधा हिस्सा दिलाना दयावीर का उदाहरण है।

(६) भयानक—भयानक रस मध्यमव्यायोग के उस दृश्य में दिखायी पड़ता है जब ब्राह्मण-परिवार के सम्मुख सहसा घटोत्कच आ जाता है। राम के द्वारा मायामृग का अनुसरण करने के बाद जब रावण अपने विकराल राक्षसी रूप को सीता के सामने प्रदर्शित करता है उस समय भी भयानक रस की उद्भूति होती है। यह दृश्य प्रतिमा नाटक में है। इन्द्रजित् की मृत्यु के बाद अभिषेक में भी भयानक रस दिखायी पड़ता है जब कि रावण सीता को मारने के लिये उद्यत दिखायी पड़ता है। बालचरित में केश-वर्षण के द्वारा कंस के वध के अवसर पर भी भयानक की सृष्टि हुई है। उरुभङ्ग के युद्ध दृश्य के वर्णन में भी भयानक रस है।

(७) अद्भुत—अद्भुत रस भास के नाटकों में अनेकों स्थलों पर दिखायी पड़ता है। अविमारक में विद्याधर के द्वारा अंगुरीयक प्राप्त कर अविमारक के अदृश्य होने में अद्भुत रस की सृष्टि हुई है। दूतवाक्य में कृष्ण को बाँधने का दुर्योधन प्रयास करता है पर उनके विराट् रूप धारण कर लेने से वह अपने प्रयास में असफल रहता है। कृष्ण का विराट् रूप अद्भुत रस का जनक है। कंस के यहाँ मानव रूप में लक्ष्मी तथा शाप का आना इसी रस के जनक है। यमुना के जल का सङ्कुचित हो जाना, नन्दकन्या का जीवित हो जाना, नन्द द्वारा कन्या को कंस के हाथ सौंपना तथा कंस के द्वारा कंसशिला पर पटकते ही उस कन्या का आधे शरीर से आकाश में उड़ जाना—ये सारे प्रसंग अद्भुत रस की सृष्टि करते हैं। अभिषेक नाटक में राम के लिये समुद्र का जल को दो भागों में विभक्त कर मार्ग देना अद्भुत रस का उदाहरण है।

(८) शान्तरस—भास के नाटकों में शान्तरस भी अनेकों स्थलों पर उपलब्ध होता है। कर्णभार में जिस समय इन्द्र द्वारा कवच कुण्डल माँग लेने

पर शल्य कर्ण से कहते हैं कि वह इन्द्र द्वारा वञ्चित कर लिया गया उस समय कर्ण का यह कथन कि वस्तुतः इन्द्र ही वञ्चित किया गया है शान्त का अच्छा उदाहरण है। अभिषेक नाटक में जब राम सीता की शुद्धता का वर्णन करते हैं तब भी शान्त का दृश्य दिखायी पड़ता है। सीता जिस समय राम से वन्य पदार्थों के द्वारा ही दशरथ का श्राद्ध करने को कहती हैं उस समय भी शान्त का वातावरण दिखायी पड़ता है।

(६) वात्सल्य—कुछ लोगों ने इसे शृङ्गार के अन्तर्गत ही समाविष्ट कर दिया है। पर वस्तुतः इसकी पृथक् सत्ता मानना ही युक्तियुक्त है। मध्यम-व्यायोग में भीम का घटोत्कच के लिये प्रेम, पञ्चरात्र में भीम अर्जुन का अभिमन्यु के प्रति, दशरथ का राम के प्रति प्रेम, तथा रावण का इन्द्रजित् के प्रति प्रेम इसी कोटि में आते हैं। ऊरुभङ्ग में दुर्योधन का अपने पुत्र के प्रति प्रेम भी इसी कोटि में है।

कुछ लोगों ने भक्तिरस को भी पृथक् कोटि में गिना है। अन्य लोगों ने इसे शान्त में समाहित किया है। भक्तिरस का भास के नाटकों में उचित स्थानों पर निवेश है। आरम्भ मङ्गल के श्लोक भक्तिपरक हैं। बालचरित में राम तथा कृष्ण के प्रति भक्ति इसी रस के अधीन है।

इस प्रकार यह स्पष्ट दिखायी पड़ता है कि भास ने नवरसों का बड़ा ही समीचीन परिपाक दर्शाया है। यद्यपि उनका विशेष आग्रह वीर, हास्य, करुण, रौद्र, वत्सल तथा शृंगार के प्रति ही लक्षित होता है पर इससे अन्य रसों के उचित स्थान पर सन्निवेश तथा परिपाक में किञ्चित् भी न्यूनता नहीं आने पायी है। अन्य रसों के प्रसंग मात्रा में कम होने पर भी विशिष्टता में कम नहीं हैं। रसों का सम्यक् परिपाक ही भास की प्रसिद्धि का एक प्रमुख कारण है।

भास का प्रकृति-वर्णन

महाकवि भास प्रकृति के प्रेमी पुजारी हैं। प्राकृतिक दृश्यों को उन्होंने बड़े ही सान्निध्य से देखा था। प्राकृतिक दृश्यों को वर्णित करते समय उनका वे ऐसा सांगोपांग चित्र प्रस्तुत करते हैं कि पाठक की वृत्ति उनमें पूर्णतः तल्लीन हो जाती है। ये वर्णन रोचक, यथार्थ तथा व्यापक हैं। जिस चित्र का वे वर्णन करते हैं उसका पूर्ण बिम्ब ग्रहण कराने का प्रयास करते हैं और

एतदर्थ वे उस दृश्य के विभिन्न अङ्ग-प्रत्यंगों तथा तत्सम्पृक्त अन्य पदार्थों का भी वर्णन करते हैं।

भास के प्रकृति वर्णन का विश्लेषण करते समय इस तथ्य पर हमें सर्वदा ध्यान रखना चाहिये कि वे नाटककार हैं तथा उतना ही वर्णन कर सकते हैं जितना उस नाटक के प्रकृत अंश के लिये आवश्यक हो। उनको काव्यग्रंथों के रचयिताओं जैसी छूट नहीं है कि ऋतु वर्णन आदि पर ही सर्ग का सर्ग रच डालें। पर, इस सीमित परिधि में भास किसी भी कवि से न्यून नहीं ठहरते। *प्रसगोपात्त दृश्यों का वे इतनी सूक्ष्मता तथा मनोहारिता के साथ वर्णन करते हैं कि चित्त वृत्ति उन दृश्यों का अवगाहन करने लगती है। कहीं कहीं तो इन* दृश्यों के वर्णन में अलङ्कार-योजना इतनी सटीक बैठ जाती है कि उनके सौन्दर्य तथा रमणीयता में द्विगुणित वृद्धि हो जाती है।

स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथम अङ्क में वन प्रान्त की सन्ध्या का यह वर्णन सुतरां दर्शनीय है:

> खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
> प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
> परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
> रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्॥—१.१६

(पक्षिगण नीडों में चले गये हैं, मुनिजन जल में स्नान करने के लिये प्रविष्ट हो गये हैं, सायंकालीन अग्नि प्रज्वलित हो गया है, धूम तपोवन में चारों तरफ प्रसृत हो गया है, और सूर्यदेव दूर से आकर किरणों को समेट अस्ताचल की ओर प्रविष्ट हो रहे हैं।)

अभिषेक-नाटक का सूर्यास्त का वर्णन देखिये—

> अस्ताद्रिमस्तकगतः प्रतिसंहृतांशुः
> सन्ध्यानुरञ्जितवपुः प्रतिभाति सूर्यः।
> रक्तोज्ज्वलांशुकवृते द्विरदस्य कुम्भे
> जाम्बूनदेन रचितः पुलको यथैव॥ ४।२३

इसी प्रकार अविमारक (२।१२) में भी सन्ध्या तथा रात्र्यागमन का वर्णन बड़े ही मनोहर रूप में किया गया है।

रात्रि तथा अन्धकार का वर्णन भास के बहुत प्रिय विषय प्रतीत होते हैं। रात्रि के सघन अन्धकार के वर्णन के लिये चारुदत्त के निम्न पद्य देखिये :—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता ॥–१।१९

सुखशरणमाश्रयो भयानां वनगहनं तिमिरं च तुल्यमेव।
उभयमपि हि रक्षतेऽन्धकारो जनयति यश्च भयानि यश्च भीतः ॥–१।२०

चारुदत्त में चन्द्रोदय का वर्णन भी बड़ा सुन्दर हुआ है :

उदयति हि शशाङ्कः क्लिन्नखर्जूरपाण्डु-
र्युवतिजनसहायो राजमार्गप्रदीपः।
तिमिरनिचयमध्ये रश्मयो यस्य गौराः
हृतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति ॥–१।२९

(सिक्तखर्जूर की भाँति पाण्डुर वर्ण का चन्द्रमा उदित हो रहा है। वह युवतियों का सहायक तथा राजमार्ग का दीपक है। अन्धकारसमूह में इसकी गौर किरणें जलहीन पंक में दुग्धधारा की भाँति बरस रही हैं।)

समुद्र का वर्णन भी भास ने सूक्ष्म दृष्टि के साथ किया है। अभिषेक-नाटक में समुद्र का यह वर्णन देखिये :

क्वचित् फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजलः
क्वचिच्छङ्खाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः।
क्वचिद्वीचीमालः क्वचिदपि च नक्रप्रतिभयः
क्वचिद् भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ॥–४।१७

स्वप्न नाटक में तपोवन का यह वर्णन देखिये :

विश्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्ययाः
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥–१।१२

(अपने देश के विश्वास से यहाँ हरिण निश्शङ्क होकर विचरण कर रहे हैं, वृक्षों की शाखायें फूल-फलों से समृद्ध हैं। कपिला गायें बहुत सी दिखायी पड़ रही हैं तथा कृषि भूमि दिखायी नहीं पड़ रही है। अतः यह निस्सन्देह

तपोवन है क्योंकि यज्ञीय धूम भी बहुत से आश्रमों में दिखाई पड़ रहा है।)

स्वप्न नाटक में उदयन उड रही बकपंक्ति का वर्णन करते हुये कह रहा है :

> ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च
> सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु।
> निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य
> सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम् ॥–४।२

अविमारक में वर्षा ऋतु का वर्णन बड़े ही सजीव रूप में किया गया है। इसी प्रकार यहाँ ग्रीष्मऋतु का वर्णन भी सुन्दर बन पड़ा है।

> अत्युष्णा ज्वरितेव भास्करकरैरापीतसारा मही
> यक्ष्मार्ता इव पादपाः प्रमुषितच्छाया दवाग्न्याश्रयात्।
> विक्रोशन्त्यवशादिवोच्छ्रितगुहा व्यात्ताननाः पर्वताः
> लोकोऽयं रविपाकनष्टहृदयः संयाति मूर्च्छामिव ॥–४।४

रथ के वेग से सामने की वस्तुयें कितनी तेजी से भाग रही हैं इसका वर्णन प्रतिमा नाटक में दिखायी पड़ता है।

> द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया
> नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।
> अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं
> रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥–३।२

इस वर्णन को देखने पर शाकुन्तल के रथवर्णन (प्रथम अङ्क) वाले प्रसङ्ग की स्मृति हो जाती है और यह कोई असंभव नहीं है कि कालिदास ने इसे देखा हो।

ऊरुभङ्ग नाटक में युद्ध भूमि की यज्ञ से तुलना की गई है। इसमें युद्धभूमि का चित्र उपस्थित किया गया है।

> करिवरकरयूपो बाणविन्यस्तदर्भो
> हतगजचयनोच्चो वैरवह्निप्रदीप्तः।
> ध्वजविततवितानः सिंहनादोच्चमंत्र
> पतितपतिमनुष्यः संस्थितो युद्धयज्ञः ॥–श्लोक ६

युद्धभूमि में उडने वाले गृध्रों का यह वर्णन देखिये।

गृध्रा मधूकमुकुलोज्ज्वलपिङ्गलाक्षा
दैत्येन्द्रकुञ्जरनखांकुशतीक्ष्णतुण्डाः।
भ्रान्त्यम्बरे विततलम्बविकीर्णपक्षा
मांसैः प्रनालरचिता इव तालवृन्ताः॥-श्लोक ११

अभिषेक नाटक में लङ्का की सुन्दरता का वर्णन देखिये :—

कनकरचितचित्रतोरणाढ्या
मणिवरविद्रुमशोभितप्रदेशा
विमलविकृतसञ्चितैर्विमानै
र्वियति महेन्द्रपुरीव भाति लङ्का॥-२।२

इसी प्रकार अन्य अनेकों प्रकृति-वर्णनपरक पद्य भास के नाटकों में व्याप्त है। यह तो निर्देशमात्र है। इन वर्णनों को देखकर यह सहज ही पता लग जाता है कि नाटककार का जीवन प्राकृतिक दृश्यों से घनिष्ठता के साथ संयुक्त था। कवि ने प्रकृति के नाना दृश्यों को सावधानी और सहृदयता के साथ देखा था। इनके वर्णनों में प्रकृति के सभी अंश सम्मिलित हैं। सुन्दर के प्रति न तो कोई इनका विशेष आग्रह है और न असुन्दर का विरूप से घृणा। प्रकृति का कोई भी अंश चाहे वह सुन्दर हो या कुरूप, भास के लिये समान है प्रसङ्गोपात्त होने पर वे सभी का समानाभिनिवेश से चित्रण करेंगे।

चतुर्थ परिच्छेद

भास का समय तथा परिचय

जिस प्रकार भास की कीर्ति संस्कृत साहित्य में प्रथित है उस प्रकार उनके समय के विषय में ज्ञान नहीं। भास का अस्तित्व आज भी एक समस्या बना हुआ है। संस्कृत का कोई भी ऐसा कवि नहीं जिसके समय के विषय में इतनी विषमतायें हों। यदि एक पक्ष भास को ई० पू० ४ थी सदी में मानता है तो अपर पक्ष ईसा की १० वीं सदी में। इस प्रकार १४०० वर्षों का अन्तर पड़ता है। जहाँ तक दसवीं सदी में माननेवालों का प्रश्न है, वे भासनाटकचक्र को उस भास की कृति नहीं मानते जिसका कालिदास, बाणभट्ट आदिने उल्लेख किया है। इस नाटकचक्र को वे किसी केरलीय कवि या चाक्यारों की सृष्टि मानते हैं।

विभिन्न मतों का सारांश इस प्रकार है :

(१) डाक्टर बार्नेट इस नाटकचक्र के कल्पित भास को सातवीं सदी का केरलीय कवि कहते हैं। उसी समय महेन्द्रवीरविक्रम रचित 'मत्तविलास' प्रहसन (७ वीं सदी) से इन नाटकों की भाषा मिलती-जुलती है। पारिभाषिक शब्दों में भी पूर्ण साम्य है। अधिकांश भरतवाक्यों में प्रयुक्त 'राजसिंह' शब्द केरलीय राजा का वाचक है।

इस तर्क का निरास बड़ा ही सरल है। जब बाण तथा कालिदास ने भास का सातवीं सदी से पूर्व ही उल्लेख कर दिया था तो फिर सातवीं सदी में भास का समय निश्चित करना हास्यास्पद है। यह प्रश्न इससे सम्बन्ध नहीं रखता कि इन नाटकों में प्रक्षेप हैं। यह सही है कि इन नाटकों में यत्र-तत्र प्रक्षेप की पुष्टि होती है पर इन प्रक्षेपों से भास की प्राचीनता में कोई बाधा नहीं पड़ती।

(२) डा० ए० पी० बैनर्जी शास्त्री ने भास का समय ईसा की दूसरी सदी के बाद और तीसरी सदी के पूर्व माना है।[1] उनके मत का सारांश इस प्रकार है:

---

१. द्र०, 'दि जर्नल आफ दि बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी', जल्द १, भाग १, मार्च १९२३ पृ० ४९-११३

१. विभिन्न अन्तःसाक्ष्यों से उन्होंने वात्स्यायन का समय ईसा की तीसरी सदी का अन्त माना है। वात्स्यायन का भास को पता नहीं क्योंकि रावण जब प्रतिमा नाटक में अन्य शास्त्रों की गणना करता है उस समय वात्स्यायन के कामसूत्र का उल्लेख नहीं है अतः भास वात्स्यायन से पूर्ववर्ती हुये। वात्स्यायन का समय उन्होंने दूसरी सदी का अन्त माना है अतः भास इससे किञ्चित् पूर्व रहे होंगे।

२. भरत का समय उन्होंने दूसरी सदी के बाद तथा तीसरी सदी के पूर्व माना है। भास भरत से पूर्ववर्ती हैं अतः इनका समय तीसरी सदी के मध्य के बाद नहीं हो सकता।

३. कौटिल्य का समय ३०० ई० पू० माना जाता है। भास के उदाहरणों के आधार पर उन्होंने कौटिल्य से परवर्ता सिद्ध किया है अतः भास ३०० ई० पू० से पूर्व न थे।

४. पाणिनि, कात्यायन तथा पतञ्जलि को वे भास से पूर्ववर्ती मानते हैं। उनका यह भी कहना है कि कुछ अपाणिनीय प्रयोगों को देखकर भास को इन महान् वैयाकरणों से पूर्ववर्ती नहीं कहा जा सकता। वे पाणिनि का समय चौथी सदी ई० पू०, कात्यायन का समय तीसरी सदी ई० पू० तथा पतञ्जलि का समय दूसरी सदी ई० पूर्व मानकर भास को इनसे बहुत बाद का बताते हैं।

५. मनु का समय वे ईसा की दूसरी सदी बताकर प्रतिमा में मानव-धर्मशास्त्र का उल्लेख दिखाते हुए भास को ईसा की दूसरी सदी के बाद का बताते हैं—

इस प्रकार वे भास का समय ईसा की दूसरी और तीसरी सदी के बीच निश्चित करते हैं।

डा० गैनजा शास्त्री का यह महत् प्रयास भी सत्य के समीप दिखायी नहीं पड़ता। कालिदास का समय ईसा पूर्व पहली सदी में मानना युक्तिगत है अतः भास उससे ऊर्ध्वतर काल के ठहरते हैं। अपाणिनीय प्रयोगों को देखकर भी भास की प्राचीनता में सन्देह नहीं रहता। अतः भास को ईसा के बाद निश्चित करना यौक्तिक प्रतीत नहीं होता।

(३) डा० लेस्नी, प्रिन्ट्ज तथा सुकथनकर जैसे विद्वानों ने प्राकृत-भाषा की समीक्षा कर इन्हें कालिदास से प्राचीन तथा अश्वघोष से नवीन सिद्ध किया है। भास की प्राकृत भाषा कालिदास से प्राचीन ठहरती है पर अश्वघोष की भाषा का समय इससे भी पूर्वतर है। ये विद्वान् कालिदास को ईसा की पाँचवीं सदी में मानते हैं। इस आधार पर वे भास का समय तीसरी सदी में निश्चित करते हैं। एक तो भाषा का आधार ही लचर है क्योंकि लिपिक को भाषा लिखते समय पर्याप्त सावधानी नहीं बरतते। दूसरे भाषा एक तरलपदार्थ है जो बहुत समय तक प्रवाहित होती रहती है। यदि कोई शब्द इस समय प्रचलित है तो वह पहले प्रचलित न रहा होगा यह नहीं कहा जा सकता।

अब कतिपय अन्तरंग तत्वों का समीक्षण कर भास का समय निश्चित करने का प्रयास किया जाता है :

(१) भास के नाटकों का आधार रामायण, महाभारत तथा लोककथायें हैं। उदयन का आख्यान ऐतिहासिक है। उदयन, प्रद्योत तथा दर्शक ६वीं सदी ई० पू० के ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। ई० पू० ६वीं सदी मे रामायण तथा महाभारत भी मूलरूप में विद्यमान थे अतः भास की उपरितम समय सीमा ई० पू० ६ठी सदी ठहरती है।

(२) प्रतिज्ञा, अविमारक तथा स्वप्ननाटक हमें ऐतिहासिक तथ्य दर्शाते हैं। प्रतिज्ञा तथा अविमारक में दो राजाओं की स्मृतियाँ अभी नवीन है अत. उस काल के समीप ही लेखक रहा होगा। राजगृह का राजधानी के रूप में वर्णन तथा पाटलिपुत्र का साधारण नगर के रूप में उल्लेख इसे ५ वीं सदी के समीप स्थिर करता है।

(३) प्रतिमा नाटक में वर्णित विद्यायें ई० पू० षष्ठ शतक से प्राचीन हैं। मानवीय धर्मशास्त्र (मनुस्मृति का मूलरूप) गौतम धर्मसूत्र से प्राचीन है क्योंकि गौतम धर्मसूत्र में इसका उल्लेख हुआ है। गौतम धर्मसूत्र प्राचीनतम धर्मसूत्र है तथा इसका समय छठी ई० पू० है।[1] बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र का महाभारत में उल्लेख है तथा कौटिल्य ने भी इसे उद्धृत किया है। मेधातिथि या

१. द्र० गौतमधर्मसूत्र, स्टेन्जलर द्वारा सम्पादित, लण्दन १८७८

न्यायशास्त्र मनुस्मृति पर मेधातिथि की टीका नहीं है अपितु प्राचीन न्यायग्रन्थ है। माहेश्वरयोगशास्त्र भी पातञ्जल-योग से प्राचीन है। ये सभी उल्लेख भास को प्राचीन सिद्ध करते हैं।

(४) इन नाटकों में वर्णित सामाजिक दशायें अर्थशास्त्र तथा नाटकों से सम्बद्ध प्रतीत होती हैं। प्रतिमा में मन्दिर के परिवेश में बालुका डालने का विधान केवल आपस्तम्ब सूत्रों में ही मिलती है। मरे हुये व्यक्तियों की प्रतिमाओं की स्थापना भी शिशुनाग-राजाओं के युग की स्मृति दिलाती है। मथुरा में शिशुनाग राजाओं की प्रस्तर मूर्तियाँ खोज में मिली हैं।

(५) भरतवाक्यों में उल्लिखित राजसिंह शब्द व्यक्तिवाचक नहीं है। हिमालय से लेकर विंध्य तक शासन करनेवाले राजा का संकेत सम्भवतः नन्दवंश की ओर है।

(६) भास की भाषा भी प्राचीन हो प्रतीति होती है और भाषा की दृष्टि से भी इसी समय इनको मानना अयुक्तिक नहीं है।

इन सब बातों का परीक्षण करने पर यही ज्ञात होता है कि भास चतुर्थ तथा पञ्चम सदी ई० पूर्व में हुये थे।

बहिरङ्ग परीक्षण

अन्तरङ्ग परीक्षण से जिन बातों की सिद्धि होती है, बहिरङ्ग परीक्षण उन्हें पुष्ट करता है। बहिरङ्ग परीक्षण से भी भास का समय चौथी-पाँचवीं सदी ई० पू० के भीतर ही प्रतीत होता है। बहिःसाक्ष्य निम्न है—

(१) महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र नाटक में सूत्रधार के मुख से भास आदि की कृतियों का इस प्रकार उल्लेख कराया है :

'प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासकृतौ बहुमानः।'

कालिदास के इस उल्लेखसे भास निश्चितरूपेण उनसे पूर्ववर्ती ठहरते हैं। कालिदास का समय ई० पू० विक्रम की पहली सदी है अतः भास निश्चित-रूपेण इससे पूर्व हुये थे।

(२) बाण ने (७ वीं सदी) भास के नाटकों का स्पष्ट उल्लेख किया है। अतः बाण से इनकी पूर्ववर्तिता सिद्ध है।

(३) बौद्ध आचार्य दिङ्नाग अपनी कुन्दमाला में दशरथ को पडिमागदो महाराश्रो (प्रतिमागतो महाराजः) कहते हैं। दशरथ की प्रतिमा का उल्लेख ज्ञात साहित्य में केवल प्रतिमा नाटक में ही है। स्वयं रामायण में यह तथ्य नहीं है। अतः दिङ्नाग को भास का यह नाटक ज्ञात रहा होगा।

(४) कौटिल्य के अर्थशास्त्र (१०।३) में 'तदीह श्लोको भवता' कह कर दो श्लोक उद्धृत हैं। इनमें दूसरा श्लोक प्रतिज्ञा (४।२) में भी मिलता है। वह श्लोक इस प्रकार है :

नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं
सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद्
यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युद्ध्येत्॥

कौटिल्य ने यह ग्रन्थ अवश्य ही भास से लिया होगा। यदि किसी स्मृति का होता तो अवश्य ही 'इति स्मृतौ' लिखते।

(५) शूद्रक के मृच्छकटिक का आधार भास का चारुदत्त नाटक ही प्रतीत होता है। दोनों में अन्तर होने पर भी आश्चर्यजनक समानतायें हैं।

(६) वामन (८ वीं सदी) अपने ग्रन्थ काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति (४।३।२५) में एक पद्य उद्धृत करते हैं जो भास के नाटक स्वप्नवासवदत्तम् (४।३) में मिलता है। पद्य इस प्रकार है :

शरच्चन्द्रांशुगौरेण वाताविद्धेन भामिनि।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं कृतम्॥

स्वप्न नाटक में केवल 'चन्द्रांशु' के स्थान पर 'शशाङ्क' तथा 'कृत' के स्थान पर 'मम' पाठ है। वामन ने चारुदत्त (१।२) तथा प्रतिज्ञा (४।२) के पद्यों को भी अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है।

(७) अश्वघोष के बुद्धचरित (१३।६०) में निम्न पद्य है :

काष्ठं हि मन्थन् लभते हुताशं
भूमिं खनन् विन्दति चापि तोयम्।
निर्बन्धिनः किञ्चन नाप्यसाध्यं
न्यायेन युक्तं च कृतं च सर्वम्॥

इसकी भास के निम्न पद्य से तुलना कीजिये—

काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्
भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥–प्रतिज्ञा १।१८

अश्वघोष पर भास का प्रभाव स्पष्ट है।

इस प्रकार बाह्य साक्ष्यों से भास का समय ४ थी सदी ई० पू० मानने में कोई विप्रतिपत्ति नहीं पड़ती तथा ये बाह्य साक्ष्य अन्य समयों के मानने का विरोध करते हैं। अतः ई० पू० चतुर्थ शतक तथा पञ्चम शतक के बीच भास का समय मानना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

भास ब्राह्मण थे ?—भास के नाटकों से यह स्पष्ट आभास मिलता है कि वे ब्राह्मण थे।[1] ब्राह्मणोय धर्म तथा समाज व्यवस्था के प्रति उनका महान् आग्रह; अकुलीनों का सुरूप न होना (अविमारक) आदि तथ्य उन्हें ब्राह्मण सिद्ध करते हैं। परम्परा से भी विद्या का क्षेत्र ब्राह्मणों के आधिपत्य में ही मुख्यतः था अतः यही सही प्रतीत होता है कि भास ब्राह्मण थे।

भास का जीवनवृत्त—भास का जीवनवृत्त भी ज्ञात नहीं। कहा जाता है कि एक बार इनके ग्रन्थों की अग्नि परीक्षा हुई थी। भास के सभी नाटक अग्नि में डाल दिये गये। अग्नि ने सब नाटकों को तो जला दिया पर स्वप्न नाटक बच गया। इससे यही सिद्ध होता है कि स्वप्न नाटक भास के नाटकों में सर्वश्रेष्ठ है।

भास उत्तरी भारत के निवासी प्रतीत होते हैं। इनके नाटकों में उत्तरी भारत के नगर, नदी, पर्वत तथा रीति-रिवाजों का बड़ा ही व्यापक वर्णन है। उज्जैनी, अयोध्या तथा मथुरा में इनकी वृत्ति विशेष रमी है। अतः यह मालूम पड़ता है कि भास ने इन स्थानों का आँखों देखा वर्णन किया है। 'हिमवद्-विन्ध्यकुण्डलाम्' स्पष्ट संकेत करता है कि वे उत्तरी भारत के निवासी थे। उत्तरी भारत की तुलना में भास का दक्षिणी भारत का ज्ञान बहुत ही सीमित

---

१. ए० एस० पी० अय्यरकृत 'भास' पृ० ७, यही मत डा० पुसालकर का भी है।

प्रतीत होता है। अतः उनका दक्षिणी भारत का ज्ञान रामायण तथा महाभारत तक सीमित प्रतीत होता है। रामकथा वर्णित करने पर भी रामेश्वरम् जैसे तीर्थ का अनुल्लेख इस अनुमान की पुष्टि करता है।

भास का राजकुलों से गहरा सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। राजप्रासादों, अन्तःपुरों आदि के वर्णन में इन्होंने विशेष रुचि प्रदर्शित की है। अतः हो सकता है किसी राजसभा से इनका सम्बन्ध रहा हो। 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' की उक्ति इसी का समर्थन करती दिखायी पड़ती है। अमात्यों, सेना, द्वन्द्व आदि का वर्णन इनके नाटकों में सर्वत्र दिखाई पड़ता है। राजकुल के अतिरिक्त धनी मानी नागरजनों से भी इनका सम्पर्क रहा होगा। चारुदत्त नाटक नागरजनों के जीवन का सच्चा प्रतिनिधि है।

भास के नाटकों के अध्ययन से उनका अनेकों शास्त्रों में निष्णात होना लक्षित होता है। वेद, इतिहास-पुराण, लोककथाएँ, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि नाना शास्त्रों का इन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था। साहित्यशास्त्र में उनकी निपुणता असन्दिग्ध है। वे स्वभाव से नम्र तथा विनोदप्रिय प्रतीत होते हैं। उनका कौटुम्बिक जीवन भी सुखमय रहा होगा।

भास का धर्म—भास वैष्णव धर्म के अनुयायी हैं। राम तथा कृष्ण के चरित्रों में उनकी अनुरक्ति इस विषय में प्रमाण है। भक्त वैष्णव होने के साथ ही साथ भास वैदिक कर्मकाण्ड में पूर्ण विश्वास रखते थे। गो-ब्राह्मणों में भी उनकी परम अनुरक्ति थी।

भास का देश-काल

भास के नाटकों के अध्ययन से उस समय की देश की परिस्थितियों का सम्यक् पता चल जाता है। भास के नाटकों में बहुत से देशों का उल्लेख है जिनमें अवन्ती, वत्स, काशी, मत्स्य, शूरसेन, कुरु, कुरुजाङ्गल, उत्तर कुरु, कोशल, विराट, सौवीर, काम्बोज, गांधार, मद्र, मगध, मिथिला (विदेह, अंग, वंग, जनस्थान, दक्षिणापथ तथा लङ्का प्रमुख हैं। इन नामों के उल्लेख से यह स्पष्ट पता चलता है कि भास को दक्षिण भारत के स्थानों का विशेष ज्ञान न था। जो जनस्थान, दक्षिणापथ तथा सिंहल का वर्णन है वह भी रामायण आदि

ग्रन्थों के अध्ययन से ही भास को ज्ञात था। अन्य नामों से यही ज्ञात होता है कि भास उत्तरी भारत के क्षेत्रों में ही अधिक रमे थे। पर्वतों में हिमालय, विन्ध्य, महेन्द्र, मलय, त्रिकूट, मेरु, मन्दर, क्रौञ्च, कैलास आदि का उल्लेख है।

भास के नाटकों से उस समय की सामाजिक परिस्थितियों का भी ज्ञान होता है।

वर्ण-व्यवस्था—भास के समय में चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था दृढ़ दिखायी पड़ रही है। बौद्धों के प्रबल प्रहार के बाद भी ब्राह्मण वर्ण सर्वोच्च स्थान का अधिकारी था। वे विद्वान्, धार्मिक तथा सत्यवादी माने जाते थे। राजा लोग विशिष्ट ब्राह्मणों का सत्कार करने के लिये आसन से उठ जाया करते थे। ब्राह्मणों के वचनों को लोग सत्य करने का प्रयास करते थे। ब्राह्मणों को विशिष्ट अवसरों पर भोजन कराया जाता था और उन्हें दक्षिणा दी जाती थी। ब्राह्मणों में पुरोहित, तपस्वी तथा विद्वान् हुआ करते थे। कुछ ब्राह्मण अन्य प्रकार की वृत्तियों का आश्रय लेते थे। ब्राह्मणों में कुछ लोग दुष्ट प्रकृति के होते थे और चोरी आदि जैसे कुकृत्य भी करते थे (सज्जलक का चरित्र)।

ब्राह्मणों के बाद श्रेष्ठता क्रम में क्षत्रियों का दूसरा स्थान था। वे युद्धविद्या में कुशल हुआ करते थे। राज्यपद के भी वे ही अधिकारी हुआ करते थे। दान करने में वे संकोच नहीं करते थे। युद्ध से भागना अक्षम्य अपराध था। दुर्बल की बलिष्ठ से रक्षा उनका प्रधान कर्त्तव्य था। ब्राह्मणों का क्षत्रिय सम्मान करते थे। वैश्य व्यापार में संलग्न रहते थे। शूद्रों का कर्म सेवा था और छोटे पैमाने पर कृषि आदि में भी वे संलग्न रहते थे।

चारों वर्णों के अतिरिक्त वर्णबाह्य चाण्डाल हुआ करते थे। ये जन्मना होते थे तथा कुछ दूसरी जातियों से बहिष्कृत लोग भी इस कोटि में आते थे। ये लोगों की दृष्टि से ओझल रहने का प्रयास करते थे। साधारणतया ये लोग नगर के बाहर रहते थे। अनुक्रोश तथा दया का इनमें अभाव माना जाता था। वर्ण में ये काले होते थे और सुन्दरता का इनमें अभाव होता था।

आश्रम व्यवस्था—भास के समय में चारों आश्रमों की भी व्यवस्था स्थिर मालूम पड़ती है। प्रारम्भिक आश्रम ब्रह्मचर्य था। लोग ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्याध्ययन किया करते थे। उपयुक्त गुरु की खोज में वे दूर तक चले जाते

थे। उनका जीवन सयमित तथा कठोर होता था। ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थाश्रम में लोग दारपरिग्रह कर सासारिक जीवन में व्यस्त रहते थे। सन्यासियों के दो वर्ग प्रतीत होते हैं—एक तपस्वी जो तपोवन में रहकर तपस्या करते थे और दूसरे परिव्राजक जो घूमा करते थे। स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथम अङ्क में यह भी ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ भी तपस्विनी होकर जगलों में रहती थीं। मगधराजमाता इसका उदाहरण हैं।

संयुक्त परिवार-प्रथा—भारत में संयुक्त परिवार की प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। भास के समय में भी परिवार सयुक्त ही दिखायी पडता है। इसमें कुटुम्ब का ज्येष्ठ व्यक्ति प्रधान होता था। उसकी आज्ञा सर्वोपरि होती थी। पिता यदि पुत्र को मृत्यु के गाल में भी भेज दे तो वह सहर्ष जाने के लिये उद्यत दिखायी पड़ता है। राम का वनवास तथा मध्यम-व्यायोग में मध्यम पुत्र का राक्षसी का आहार बनने के लिये उद्यत होना इसी बात का प्रमाण है।

विवाह-विधि—मनु ने विवाह की आठ विधियाँ बताई हैं :

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यास्तथासुरः
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमो मतः ॥—३।२१

भास के नाटकों में इनमें से कई का उल्लेख मिलता है। पद्मावती तथा उदयन का विवाह ब्राह्मकोटि में आता है। अविमारक में काशिराज अपने पुत्र जयवर्मा के लिये कुन्तिभोज की कन्या मागने के लिये दूत भेजते हैं। अविमारक में कुरगी तथा अविमारक का विवाह गान्धर्व कोटि में आता है। उदयन तथा वासवदत्ता का विवाह भी इसी कोटि में आता है। यह विवाह राक्षस कोटि में भी आ सकता है क्योंकि वासवदत्ता को उदयन ने उसके माता-पिता के यहाँ से भगाया था। सज्जलक तथा मदनिका का परिणय अनुलोम विवाह के अन्तर्गत आता है।

स्त्रियों का महत्त्व—भास के नाटकों से स्त्रियों के विभिन्न रूपों का पता लगता है। कन्यायें पितृगृह में स्वच्छन्दता से घूम फिर सकती थीं। वे गीत-वाद्य आदि नाना कलाओं को सीखती थीं। वे सखियों के साथ कन्दुक-क्रीडन भी करती थीं। विवाह के बाद उनका जीवन संकुचित हो जाता था। पर्दा

प्रथा का अस्तित्व भी दिखाई पड़ता है। स्त्रियाँ पतियों की अर्धांगिनी होती थीं तथा पति को उनके भरण और संरक्षण का दायित्व था। स्त्री का कर्तव्य सभी अवस्थाओं में पति का अनुकरण करना था। राजपरिवार की स्त्रियां पर्दा प्रथा का अनुकरण करती थीं।

जन विश्वास—लोगों का जादू-टोने में विश्वास था। अभिचार के आश्रय से लोग अन्तर्धान या प्रकट हो जाते थे। मन्त्रों के बल से कपाट खुल या बन्द हो जाते थे। ऋषियों का शाप अक्षरशः सत्य माना जाता था। कभी कभी शाप साक्षात् विग्रह धारण कर लेता था। विपत्तियों को दूर करने के लिये यन्त्र मन्त्र का उपयोग होता था। ज्योतिर्विद्या में लोगों का पूर्ण विश्वास था। यौगन्धरायण दैवज्ञों के वचन के अनुसार ही कार्य करता दिखायी पड़ता है। मानव जीवन के साफल्य या असाफल्य में दैव का प्रधान हाथ माना जाता था। शान्ति-सम्पन्न करना तथा ब्राह्मणों का भोजन करना प्रचलित था।

मनोरंजन—लोग नाच-गान से मनोरंजन किया करते थे। पर्वों के अतिरिक्त विशिष्ट अवसरों पर साज सज्जा के साथ महोत्सव मनाये जाते थे। कामदेव महोत्सव या कामदेवानुयान इसी प्रकार का महोत्सव था। यह कामदेव से सम्बद्ध उत्सव था और युवक-युवतियाँ इसमें भाग लेते थे। प्रायेण यह वसन्त ऋतु में मनाया जाता था जब कि प्रकृति अपने पूर्ण यौवन पर रहती है। मल्लविद्या का भी समय-समय पर प्रदर्शन किया जाता था और इसमें दूर दूर के लोग भाग लेते थे।

नैतिकता—द्यूत तथा गणिकावृत्ति, जिसका आगे उल्लेख किया जायगा, के विपरीत भी नैतिकता का मानदण्ड बहुत ऊँचा था। सत्य के सभी लोग पुजारी प्रतीत होते हैं। कोई भी व्यक्ति अपने वचन से मुकरना उचित नहीं समझता। दूसरे की गोपनीय बातों का सुनना भी लोग उचित नहीं समझते थे। हास्य में भी लोग असत्य बोलना उचित नहीं समझते थे।[1] दूसरे की रक्षा

---

१. हास्य इत्यादि में असत्य भाषण प्राचीन युग में क्षम्य माना जाता था—
न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति स्त्रीषु राजन्न विवाहकाले।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि॥

हुई वस्तु (न्यास) की लोग पूर्णतः रक्षा करते थे। दान देने में लोग अपने प्राणों की भी परवाह नहीं करते थे। चारित्रिक स्तर लोगों का बहुत ऊँचा था।

द्यूत—भास के समय द्यूत कोई अनुचित व्यवहार नहीं माना जाता था या कम से कम शिष्टजनानुमोदित था। चारुदत्त में इस विद्या का विशेष महत्त्व दिखायी पडता है। संवाहक द्यूत में ही हारकर वसन्तसेना के घर में प्रविष्ट होता है। चारुदत्त भी वसन्तसेना का आभूषण चोरी जाने पर यही कहकर विदूषक को वसन्तसेना के पास भेजता है कि वह जाकर कहे कि उसका आभूषण वह द्यूत में हार गया। इससे यही व्यञ्जित होता है कि चारुदत्त द्यूत खेलता था।

वेश्यावृत्ति—समाज में वेश्यावृत्ति का भी अस्तित्व दिखायी पड़ता है। यद्यपि उनमें कुछ शिष्ट भी होती थीं पर सामान्यतया लोग उन्हें बाजारू वस्तु समझते थे जिसे जो चाहे पैसा देकर खरीद ले।[1] सामान्य स्त्रियों की अपेक्षा परस्त्रियाँ कलाओं में दक्ष हुआ करती थीं। कलाओं की उन्हें विशेष रूप से शिक्षा दी जाती थी। वेश्याओं में कुछ ऊँचे चरित्र की भी हुआ करती थीं और केवल गुणियों पर ही रीझा करती थीं। वसन्तसेना इसी का उदाहरण है। वह राजश्यालक के आमन्त्रण को ठुकरा देती है और दरिद्र किंतु गुणी चारुदत्त को अंगीकार करती है।

चौर्य—भास के समय में चौर्यवृत्ति का भी पता चलता है। चोरी करने की कला में चोर निष्णात हुआ करते थे। वे रात में घर की दीवाल को काटकर घर में प्रविष्ट होते थे। जल रहे दीपक को बुझाने के लिये भ्रमरों का उपयोग करते थे। भ्रमर पेटिका से निकाले जाने पर सीधे दीपक की लपट पर जाकर बैठता था और अपने प्राण गवाँ कर दीपक को बुझा देता था। चोरी करनेवाले बलिष्ठ शरीर के होते थे।

दासप्रथा—दासप्रथा के भी संकेत मिलते हैं। मूल्य देकर आदमी खरीद लिये जाते थे और वे तब तक सेवा करते थे जब तक मूल्य लौटा न दिया जाय। वसन्तसेना की दासी मदनिका क्रीत ही थी। उसी को मुक्त कराने के लिये उसका प्रेमी सज्जलक चोरी करता है।

---

१. द्र० चारुदत्त अंक २।

बहु विवाह—भास के समय में बहु विवाह की प्रथा प्रचलित थी। लोग एक से अधिक विवाह करते थे। बहु विवाह की प्रथा प्रायः धनिकों या राजाओं में थी।

गुप्तचर—राजा लोग दूसरे राजाओं तथा कवियोंके क्रियाकलापों का अवलोकन किया करते थे। इस काम के लिये वे गुप्तचरों का उपयोग करते थे। विशेष आशङ्का होने पर या आवश्यकता पड़ने पर गुप्तचरों के जाल बिछ जाते थे। गुप्तचरों को राजाओं की आँख कहा जाता था। गुप्तचर नाना वेशों को धारण कर घूमते थे और शत्रु के नगर में नाना प्रकार की नौकरियों में लग जाते थे। उदयन के महासेन प्रद्योत के यहाँ बन्दी बनाये जाने पर यौगन्धरायण ने अवन्ती में गुप्तचरों का जाल बिछा दिया। अविमारक में कुन्तिभोज चरों के द्वारा ही सौवीरराज के राज्य का समाचार ज्ञात करता है। कभी-कभी गुप्तचर विभाग असफल भी हो जाया करता था। उदयन को जब छल से प्रद्योत ने बन्दी बनाया तब यही अवस्था थी।

राजसैन्य और युद्ध—सेनाओं को विभिन्न प्रकार से सज्जित रखा जाता था। युद्ध की सेना में गज, अश्व, रथ तथा पैदल सिपाही सम्मिलित थे। राजा, अमात्य तथा सहायक सभी युद्ध में सम्मिलित होते थे।

प्राचीन काल में हाथियों का युद्ध में प्राधान्य रहता था। एक विशिष्ट प्रकार का हस्ती चक्रवर्ती चिन्ह से युक्त होता था जिसको प्राप्त कर राजा चक्रवर्ती बनने की आशा करते थे। हाथियों का नाना प्रकार से शृङ्गार किया जाता था तथा उसे प्राप्त करने के लिए भी प्रयत्न किये जाते थे। राजा उदयन वीणा बजाकर हाथियों को वश में करने की कला का आचार्य था। हाथियों के बाद रथों का महत्व है। रथ का सारथी रथ-कला में विशेष निपुण होता था जो आवश्यकता पड़ने पर रथ को रोक तथा घुमा सकता था। रथों पर विशिष्ट व्यक्तियों के विशेष ध्वज हुआ करते थे। घोड़ों का रथों के बाद महत्व आता है। कम्बोज देश के घोड़े विशेष प्रसिद्ध थे। पैदल सेना भी युद्ध में काम आती थी। सभी सैनिक कवचों तथा अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित रहते थे। अस्त्र शस्त्रों में धनुष-बाण का विशेष प्राधान्य था। मुशल, मुद्गर, गदा, त्रिशूल, चक्र, शक्ति, रिष्टि, खड्ग, इत्यादि का भी इन नाटकों में निर्देश है।

युद्धोद्धत सैनिक प्राण छूटने तक स्वामी के नमक का प्रतिफल चुकाने का प्रयास करते थे। एक ओर तो वे स्वामी के अनुराग में अनुरक्त होने के कारण प्राणों का मोह छोड़ कर युद्ध करते थे दूसरी ओर धर्मभावना भी उन्हें युद्ध से पराङ्मुख होने से रोकती थी। धर्मभावना का प्रतिज्ञायौगन्धरायण में बड़ा ही सुन्दर उल्लेख है—

नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥—४।२

यही प्रमुख मनोवृत्ति थी जिसके कारण सैनिक कभी पराङ्मुख नहीं होते थे।

वास्तु कला—भास के समय में वास्तु कला भी बड़े ऊँचे दर्जे की थी। महलों का निर्माण बड़े ठाट-बाट से होता था। ये महल समृद्धि के द्योतक थे। चारुदत्त के प्रासाद को देखकर ही सज्जलक उसमें प्रविष्ट हुआ था। राजमहल का निर्माण विशेष प्रकार से होता था। महल के अन्दर ही उद्यान, वापी तथा क्रीडास्थल बने होते थे। प्रासाद के भीतर ही राजकुमारियाँ अपना मनोविनोद किया करती थीं। प्रासादों की वापिकाओं में कमल का पुञ्ज खिला रहता था। राजकुमारियाँ कमलिनी पत्र का उपयोग दाह-शान्ति के लिये किया करती थीं।

देव-मन्दिरों का निर्माण भी पर्याप्त संख्या में होता था। समय समय पर राजा आदि देव-मन्दिरों में दर्शन के लिये जाया करते थे। इस समय के मूर्तिकार विशेष कुशल प्रतीत होते थे। वे व्यक्तियों की प्रतिमा का निर्माण करते थे। प्रतिमा नाटक में रघुवंशी राजाओं की प्रतिमा का उल्लेख इसी तथ्य को दर्शाता है। विशिष्ट अवसरों पर इन मूर्तियों का शृङ्गार किया जाता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भास के नाटकों में तत्कालीन समाज का सम्यक् चित्रण किया गया है। यहाँ संक्षेप में इसका उल्लेख किया गया है। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी दशाओं का इन नाटकों के अध्ययन से पता चल जाता है।

भास का परवर्ती कवियों पर प्रभाव

भास अपने युग के महान् साहित्यकार थे जिनकी अमर कृतियों की छाया परवर्ती कवियों पर पड़ी। संस्कृत के परवर्ती नाटककार जाने अनजाने भास की

कृतियों से प्रभावित होते रहे। यह बात इसकी कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है।

कालिदास पर भास का प्रभाव दिखाई पड़ता है। विक्रमोर्वशी की उनकी प्रस्तावना से यह स्पष्ट है कि भास के नाटक उस समय बहुत ही प्रसिद्ध थे। उनका व्यापक प्रचलन था। अतः यह स्वाभाविक है कि भास की कृतियों का उन पर प्रभाव पड़े। इसी प्रभाववश कालिदास के ग्रंथों में समान भाव वाले पद्य मिलते हैं। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिये कि कालिदास की काव्य-प्रतिभा इतनी समुन्नत थी कि वे दूसरे के भावों को परिवर्तित कर देते थे या उनमें और परिष्कार कर देते थे। अतः स्पष्ट साम्य दिखाना सम्भव नहीं। पर घटनाओं, विचारों, परिस्थितियों आदि के मूलतत्त्व दोनों में समानरूप से मिल सकते हैं।

शाकुन्तल में दुष्यन्त आश्रमवासी तपस्वियों को किसी प्रकार कष्ट न देने का आदेश देते हैं। इसी प्रकार की बात स्वप्न नाटक के प्रथम अङ्क में पद्मावती का काञ्चुकीय भी कहता है। दोनों नाटकों में आश्रम का वर्णन भी समान है। शकुन्तला में जहाँ दुर्वासा का शाप है वहाँ अविमारक में चण्ड-भार्गव का। क्रोधी दोनों समानरूप से हैं।

शूद्रक पर भास का प्रभाव स्पष्ट है। उन्होंने अपने मृच्छकटिक नाटक की योजना भास के चारुदत्त के आधार पर की है। उन्होंने न केवल पात्र, कथा-नक और घटनाओं को ही लिया है अपितु उचित परिष्कार तथा दोषों के परिहार के साथ वाक्यों को भी लिया है। भास का भवभूति पर भी प्रभाव दिखायी पड़ता है। मालतीमाधव नाटक में उन्होंने अविमारक से प्रेरणा ग्रहण की है। दोनों नाटकों का आधार लोककथा है। प्रकृति-वर्णन दोनों में समान शैली में हुआ है। जहाँ अविमारक में हाथी का उत्पात है वहाँ मालती माधव में व्याघ्र का। अविमारक में उसका जीवन विद्याधार के द्वारा रक्षित हुआ है। और मालती माधव में योगिनी के द्वारा। दण्डक छन्द का प्रयोग भी दोनों में हुआ है।

विशाखदत्त का मुद्राराक्षस नाटक ऐतिहासिक तथा राजनीतिक नाटक है। इस नाटक पर प्रतिज्ञायौगन्धरायण का प्रभाव लक्षित होता है। मुद्राराक्षस के

चाणक्य में प्रतिज्ञा के यौगन्धरायण जैसे गुण हैं। हर्ष के नागानन्द, रत्नावली और प्रियदर्शिका पर भी भास का प्रभाव देखा जा सकता है। प्रियदर्शिका (अङ्क २) में अगस्त्यपूजा अविमारक (अङ्क ४) के आधार पर है। वेणीसंहार तथा पञ्चरात्र के पात्रों के स्वभाव में साम्य है। प्रबोधचन्द्रोदय में सूक्ष्म मनोभाव पात्र रूप में आये हैं जो बालचरित के शापादि के पात्रत्व-कल्पना से साम्य रखता है। केरल के नाटकों पर भी भास का प्रभाव दिखायी पड़ता है। भास के उदयन आख्यान ने वीणावासवदत्ता, उन्मादवासवदत्ता, तापस-वत्सराजचरित आदि के माध्यम से व्यापक प्रचार पाया है।

पंचम परिच्छेद

भास के दोष

परन्तु इन गुणों के विपरीत भास में कुछ दोष भी हैं जो दर्शक का ध्यान बरबस आकृष्ट कर लेते हैं। कुछ लोगों ने विचार प्रकट किया है कि बहु-विवाह का समर्थन, ब्राह्मणीय महत्ता का प्रतिपादन तथा वर्णाश्रम धर्म का गुणगान अनुचित है। परन्तु इस आलोचना में कोई सार नहीं प्रतीत होता। भास उस सभ्यता तथा संस्कृति की उद्भूति थे जो ब्राह्मणीय धर्म व्यवस्था में पूर्ण विश्वास करती थी। उस सभ्यता तथा संस्कृति के लिये ये सर्वोच्च आदर्श थे। इस कारण भास को इनके लिये उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। उस वैदिक संस्कृति का ही यह प्रभाव है कि मध्यमव्यायोग में भास पिता-माता के द्वारा मध्यम पुत्र के त्याग का संकेत करते हैं। स्पष्टतः यह वैदिकी कथा (शुनःशेप) का प्रभाव है। अतः भास को इनके लिये दोषी ठहराना ऐतिहासिक भूल होगी।

इन सामाजिक चित्रणों को छोड़कर कुछ नाटकीय त्रुटियाँ हैं जिनका परिहार कठिन है। ये त्रुटियां ऐसी हैं जिनकी जिम्मेदारी भास पर ठहरती है। सबसे प्रमुख दोष यह है कि भास काल की अन्विति पर ध्यान नहीं देते। घटनाओं में दीर्घकालीन समय बिखरा रहता है। कालान्विति का अभाव स्वप्न नाटक, चारुदत्त, बालचरित, अभिषेक आदि नाटकों में देखा जा सकता है। बालचरित नाटक में जब वसुदेव नन्दगोप को बालक देकर लौटने का उद्योग करते हैं उस समय प्रभात समीप रहता है (वयस्य प्रभाता रजनी-अङ्क १) पर जब वे गोकुल से मथुरा लौटते हैं तो भी घना अन्धकार ही रहता है और लोग सोये रहते हैं। यदि वहाँ प्रभात का उल्लेख नहीं होता तो नाटकीय व्यवस्था में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

नाटकों में कञ्चुकीय, धात्री और चेटी आदि का प्रवेश बड़ी शीघ्रता से

होता है। यद्यपि नाटककार कथानक में तीव्रता लाने के लिये ही ऐसा करता है पर इनका आधिक्य इनकी वास्तविकता में सन्देह उत्पन्न कर देता है।

आकाशभाषित का अस्तित्व भी निरापद नहीं। यद्यपि आकाशभाषित रङ्गमञ्च की दृष्टि से निरर्थक विस्तार को कम करने वाले तथा इस रूपमें उपयोगी भी होते हैं पर वास्तविकता से इनका सम्बंध छूट जाता है और इस रूप में अपनी प्रभावशालिता खो बैठते हैं।

ऐसे पात्रों का बोलना जो रङ्गमञ्च पर नहीं हैं पर बोल रहे हैं अस्वाभाविक लगता है। उदाहरण के लिए प्रतिज्ञा नाटिका में भट को पता लगता है कि उदयन वासवदत्ता को लेकर भाग गया। यह सूचना उसे ऐसे व्यक्ति से मिलती है जो रङ्गमञ्च पर नहीं है। वही उसे युद्ध प्रारम्भ होने की भी सूचना देता है। भास के नाटकों ऐसे स्थल कई मिलते हैं।

भास के नाटकों में कुछ उपमायें तथा रूपक परम्परागत प्रतीत होते हैं और कई बार उनका पिष्टपेषण मात्र हुआ है। उपमायें भी प्रसिद्ध ही दिखायी पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत के प्रदेशों के चित्रण में भास अत्यन्त संकुचित दिखायी पड़ते हैं। यही प्रतीत होता है कि दक्षिण भारत का उनका ज्ञान प्रसिद्ध ग्रंथों पर ही आधृत है।

परन्तु ये दोष बहुत ही साधारण हैं तथा भास के महत्व में किसी प्रकार की कमी नहीं करते भास संस्कृत-नाट्य-साहित्य के ऐसे जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं जिनकी ज्योति काल तथा देश से परे है। ये दोष तो मात्र उनके महत्त्व को दर्शाते हैं—एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः॥

(१)

भासनाटक-सुभाषितानि

(१) दूतवाक्यगतम्—

१. राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते।
तल्लोके न तु याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते ॥-१।२४

(२) कर्णभारगतानि—

१. हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वा तु लभते यशः।
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ॥-१।१२

२. धर्मो हि यत्नैः पुरुषेण साध्यो
भुजङ्गजिह्वा चपला नृपश्रियः।
तस्मात् प्रजापालनमात्रबुद्धया
हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते ॥-१।१७

३ शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ॥-१।२२

(३) दूतघटोत्कचगतम्—

१. को हि संनिहितशार्दूलां गुहां धर्षयितुं समर्थः।
(पृ० ११, चौखम्बा प्रकाशन)

(४) मध्यमव्यायोगगतानि—

१. जानामि सर्वत्र सदा च नाम द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम्
-१।६

२. वनं निवासाभिमतं मनस्विनाम् ॥-१।१०

३. ज्येष्ठो भ्राता पितृसमः कथितो ब्रह्मवादिभिः ॥-१।१८

४. आपदं हि पिता प्राप्तो ज्येष्ठपुत्रेण तार्यते ॥-१।१६

५. माता किल मनुष्याणां देवतानां च दैवतम् ॥-१।३७

(५) पञ्चरात्रगतानि—

१. एतदग्नेर्बलं नष्टमिन्धनानां परिक्षयात् ।
दानशक्तेरिवार्यस्य विभवानां परिक्षयात् ॥-१।१७

२. अतीत्य बन्धूनवलंघ्य मित्रा-
ण्याचार्यमागच्छति शिष्यदोषः ।
बालं ह्यपत्यं गुरवे प्रदातु-
र्नैवापराधोऽस्ति पितुर्न मातुः ॥-१।२१

३. बाणाधीना क्षत्रियाणां समृद्धिः
पुत्रापेक्षी वञ्च्यते सन्निधाता ।
विप्रोत्सङ्गे वित्तमावर्ज्य सर्वं,
राज्ञा देयं चापमात्रं सुतेभ्यः ॥-१।२४

४. भेदाः परस्परगता हि महाकुलानां
धर्माधिकारवचनेषु शमीभवन्ति ॥-१।४१

५. रणशिरसि गवार्थे नास्ति मोघः प्रयत्नो
निधनमपि यशः स्यान्मोक्षयित्वा तु धर्मः ॥-२।५

६. एकोदकत्वं खलु नाम लोके मनस्विनां कम्पयते मनांसि ॥-२।६

७. अकारणं रूपमकारणं कुलं
महत्सु नीचेषु च कर्म शोभते ॥-२।३३

८. मिथ्या प्रशंसा खलु नाम कष्टा ।–२।६०
९. सति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः ॥–३।४
१०. मृतेऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति ॥–३।२५

(६) ऊरुभङ्गगतानि—

१. नमस्कृत्य वदामि त्वां यदि पुण्यं मया कृतम् ।
अन्यस्यामपि जात्यां मे त्वमेव जननी भव ॥–१।५६
२. मानशरीरा राजानः । (पृ० ५४ : चौखम्भा प्रकाशन)
३. सज्जनधनानि तपोवनानि ।–१।६६

(७) अभिषेकनाटकगतानि—

१. मज्जमानमकार्येषु पुरुषं विषयेषु वै ।
निवारयति यो राजन् ! स मित्रं रिपुरन्यथा ॥–६।२२

(८) बालचरितगतानि

१. स्मरताऽपि भयं राजा भयं न स्मरताऽपि वा ।
उभाभ्यामपि गन्तव्यो भयादप्यभयादपि ॥–२।१३
२. दारिकासु स्त्रीणामधिकतरः स्नेहो भवति ॥
(पृ० ४४ चौखम्भा प्रकाशन)

(९) अविमारकगतानि—

१. कन्या पितुर्हि सततं बहु चिन्तनीयम् ॥–१।२
२. विवाहा नाम बहुशः परीक्ष्य कर्तव्या भवन्ति—
जामातृसम्पत्तिमचिन्तयित्वा
पित्रा तु दत्ता स्वमनोऽभिलाषात् ।
कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी
कूलद्वयं क्षुब्धजला नदीव ॥–१।३
३. दुःखा भवन्ति भुवि सत्पुरुषाः कथञ्चित्
स्वैः कारणैर्गुरुजनैश्च नियम्यमानाः ।

भूयः परव्यसनमेत्य विमोक्तुकामा
　　विस्मृत्य पूर्वनियमं विवृता भवन्ति ॥-२।६

४. न तत्र कर्त्तव्यमिहास्ति लोके
　　कन्यापितृत्वं बहु वन्दनीयम्।
　सर्वे नरेन्द्रा हि नरेन्द्रकन्यां
　　मल्लाः पताकामिव तर्कयन्ति ॥-२।६

५. महद्भारो राज्यं नाम—
धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवमतिगतिः प्रेक्षितव्या स्वबुद्ध्या
प्रच्छाद्यौ रागरोषौ मृदुपरुषगुणौ कालयोगेन कार्यौ।
ज्ञेयं लोकानुवृत्तं परचरनयनैर्मण्डलं प्रेक्षितव्यं
रक्ष्यो यत्नादिहात्मा रणशिरसि पुनः सोऽपि नावेक्षितव्यः ॥-१।१२

६. मनश्च तावदस्मदिच्छया न प्रवर्तते। इह हि—
　प्रतिपिद्धं प्रयत्नेन क्षणमात्रं न यीच्यते।
　चिराभ्यस्तपथं याति शास्त्रं दुर्गुणितं यथा।-२।४

७. हस्तिहस्तचञ्चलानि पुरुषभाग्यानि भवन्ति।
　　　　(पृ० ४७ : चौखम्भा प्रकाशन)

८. एकः परगृहं गच्छेद् द्वितीयेन तु मंत्रयेत्।
　बहुभिः समरं कुर्यादित्ययं शास्त्रनिर्णयः ॥-२।१०

९. यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः
　　को वा न सिध्यति ममेति करोति कार्यम्।
　यत्नैः शुभैः पुरुषता भवतीह नृणां
　　दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः ॥-३।१२

(१०) प्रतिमानाटकगतानि—

१. शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा ॥-१।१२

२. अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा
　　पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।

त्यजति न च करेणु पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥-२।७५

३ निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ॥ -२।७६

४ बहुदोषाण्यरण्यानि ।-२।७५

५ गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः ।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः ॥-३।३

६ सुपुष्पपुष्पाणां मातृदोषो न दोषो ॥-४।२१

७ कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् ॥-६।

(११) प्रतिज्ञायौगन्धरायणगतानि—

१ सर्वं हि सैन्यमनुरागमृते कलत्रम् ॥-१।४

२ परचक्रैरनाक्रान्ता धर्मसङ्करवर्जिता ।
भूमिभर्तारमापन्ना रक्षिता परिरक्षति ॥-१।८

३ काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानाद्
भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति ।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥-१।१८

४, कन्याया वरसम्पत्तिः पितुः प्रायः प्रयत्नतः ।
भाग्येषु शेषमायत्तं दृष्टपूर्वं न चान्यथा ॥-२।५

५ अदत्तेत्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः ।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः ॥-२।७

६ व्यवहारेष्वसाध्यानां लोके वा प्रतिरभ्यताम् ।
प्रभाते दृष्टदोषाणां वैरिणां रजनी भयम् ॥-३।३

७ नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं
सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम् ।

तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद्
यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ॥–४।२

(१२) स्वप्नवासवदत्तगतानि—

१. कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना
चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः ।–१।४

२. प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते ।–१।७

३. सुखमर्थो भवेद् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः ।
सुखमन्यद् भवेत् सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥–१।१०

४. तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनं नराधिपः ।–१।१५

५. दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं
प्राप्ताऽऽनृण्यं याति बुद्धिः प्रसादम् ॥–४।६

६. श्यामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ।–४।८

७. गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥–४।६

८. कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ॥–६।७

९. कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां
काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥–६।१०

१०. परस्परगतालोके दृश्यते तुल्य

(१३) चारुदत्तगतानि—

१. सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते
यथान्धकारादिव दीपदर्शनम् ।
सुखात्तु यो याति दशां दरिद्रतां
स्थितः शरीरेण मृतः स जीवति ॥–१।१३

२. दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते
सत्त्वं हास्यमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते ।
निर्वैरा विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फीता भवन्त्यापदः
पापं कर्म च यत्परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते ॥–१।६

३. जनयति खलु शेषं प्रश्रयो भिद्यमानः ॥–१।१४

४. स्वैर्दोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्यः ॥–४।६

(२)

नाटकीयवस्तुलक्षणानि

प्रकरणम्—

भवेत् प्रकरणं वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम् ।
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक् ॥

नान्दी—

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥
माङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्जकोककैरवशंसिनी ।
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत ॥

सूत्रधारः—

आसूत्रयन् गुणान् नेतुः कवेरपि च वस्तुनः ।
रङ्गप्रसाधनप्रौढः सूत्रधार इहोदितः ॥

प्रयोगातिशयः—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ॥

नेपथ्यम्—

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते ।

प्रस्तावना—

सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं वा विदूषकम् ।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत् तदामुखम् ॥

अङ्कः—

(क) अङ्क इति रूढशब्दो भावैश्च रसैश्च रोहयत्यर्थान् ।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः ॥

(ख) यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः।
किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदावगन्तव्यः॥

विष्कम्भकः—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥

स्वगतम्—

अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।

प्रकाशम्—

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्।

नायकः—

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान् नेता॥

भास की प्रशस्तियाँ

(१)

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

—बाणभट्ट : हर्षचरित, १।१५

(२)

भासनाटकचक्रेऽपि च्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥

—राजशेखर

(३)

सुविभक्तमुखाद्यङ्गैर्व्यक्तलक्षणवृत्तिभिः ।
परेतोऽपि स्थितो भासः शरीरैरिव नाटकैः ॥

—दण्डी : अवन्तिसुन्दरी, ११

(४)

भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अजस्स रहुआरे ।
सो बन्धवे अ बन्धम्मि हारियन्दे अ आणन्दो ॥
[भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौबन्धवे च बन्धे हारिचन्द्रे च आनन्दे ॥]

—गउडवहो

(५)

भासो हासोः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।

—जयदेव : प्रसन्नराघव ।

(६)

प्रथितयशसां भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः ।

—कालिदास : मालविकाग्निमित्र